इकाई-III
कौटिल्य अर्थशास्त्र

आचार्य कौटिल्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ राजनीति और अर्थशास्त्र का ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें ईसा से तीन शताब्दी पूर्व के एतद्विषयक भारतीय चिन्तन की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। हमारे प्राचीन चिन्तन के बारे में पाश्चात्त्य विद्वानों का सामान्यतः यही मानना था कि भारत ने विचार क्षेत्र में तो प्रगति की है, लेकिन क्रिया क्षेत्र में बुरी तरह असफल रहा है, लेकिन कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर सिद्ध हो जाता है कि हम भारतीय प्राचीन काल में विचार क्षेत्र के साथ कार्य क्षेत्र में भी निपुण थे। इस अर्थशास्त्र में राज्य-प्रबन्ध सम्बन्ध समस्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय वर्णित है; जिनका अध्ययन-मनन करके भारतीय राजनीतिज्ञ ही नहीं बल्कि संसार के राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें सिद्धान्त एवं क्रिया का समन्वित रूप मिलता है चाणक्य अर्थशास्त्र में नीति सम्बन्धी अत्यन्त उत्कृष्ट श्लोक सरल भाषा-शैली में निबद्ध हैं। अर्थशास्त्र यद्यपि राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ है, फिर भी इसमें व्यावहारिक सामान्य नीति सम्बन्धी शाश्वत सत्य के द्योतक श्लोक मिलते हैं। इसी कारण आज इस ग्रन्थ का महत्व ग्रीक के अरस्तु अथवा अफलातून के ग्रन्थों से भी अधिक है।

अर्थशास्त्र के कर्त्ता और उनका समय

राजनीति सम्बन्धी ज्ञान के भण्डार अर्थशास्त्र के लेखक सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री विष्णुगुप्त चाणक्य माने जाते हैं। आचार्य कौटिल्य का मूल नाम विष्णुगुप्त था। 'चणक-ऋषि' का पुत्र होने के कारण 'चाणक्य' तथा कुटिल गोत्रीय ब्राह्मण होने से 'कौटिल्य' इनके उपनाम हैं। वैसे 'अभिज्ञान चिन्तामणि' नामक कोश के अनुसार इनके-वात्स्यायन, मल्लनाग, कौटिल्य, चाणक्य, द्रमिल, पक्षिश-स्वामी, विष्णुगुप्त, आंगल आदि आठ नाम भी मिलते हैं। जहां कुटिल गोत्रीय ब्राह्मण होने के कारण कौटिल्य कहा गया है, वहां यह भी मिलता है कि कुटिल नीति के पक्षपाती होने के कारण इन्हें कौटिल्य नाम से जाना जाता है। अर्थशास्त्र के अन्त में स्वयं चाणक्य द्वारा लिखे गये इस वाक्य से-"स्वमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रंच भाष्यं च" सिद्ध होता है स्वयं विष्णुगुप्त ने ही सूत्र और भाष्य की रचना की है। कौटिल्य के जन्मस्थान के बारे में उल्लेख कहीं नहीं मिलता। माना जाता है कि आचार्य कौटिल्य का जन्म गान्धार जनपद के 'तक्षशिला' नामक नगर में हुआ था, उस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय विद्याओं के क्षेत्र में प्रसिद्ध एवं मुख्य केन्द्र था। संस्कृत के प्रथम व्याकरणाचार्य 'पाणिनि' इसी विश्वविद्यालय के आचार्य थे। कौटिल्य ने इसी नगर में शिक्षा प्राप्त करके इसी विश्वविद्यालय में अध्ययन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उनके समय में विश्वविद्यालय की ख्याति के कारण बहुत दूर-दूर से ब्राह्मण कुमार, राजकुमार शिक्षा ग्रहण करने आते थे।

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य संसार के प्रमुख राजनीतिज्ञों में अग्रगण्य हैं। इनका जन्म आज से लगभग २३५० वर्ष पूर्व हुआ था। चाणक्य ने मगध वंश को समूल नष्ट करके चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाया था। इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल ई०पू० ३२४ से ई०पू० ३०० के बीच ठहरता है। तदनुसार आचार्य कौटिल्य का स्थितिकाल निर्विवाद रूप से ई०पू० चतुर्थ शताब्दी मानना चाहिए। क्योंकि कौटिल्य अर्थशास्त्र पर अंग्रेजी अनुवाद करने वाले डॉ० फ्लीट ने अपनी संक्षिप्त भूमिका में अर्थशास्त्र का संभावित रचनाकाल ३२१-२९६ ई०पू० माना है। इस मत से डॉ० जैकोबी तथा डॉ० टॉमस आदि विद्वान भी सहमत हैं।

लेकिन कुछ विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। प्रोफेसर जॉली ने कौटिल्य का समय ईसा की चौथी शताब्दी माना है क्योंकि मैगस्थनीज के यात्रा विवरण में चाणक्य के नाम का उल्लेख नहीं है। उनका यह भी मानना है कि यह ग्रन्थ कामसूत्र, जो ई० चतुर्थ शती की रचना है, से भी मिलता-जुलता है। अन्य विद्वानों ने भी अर्थशास्त्र का समय ई० चतुर्थ शताब्दी माना है जिनमें विण्टरनिट्ज तथा डॉ० कीथ के नाम उल्लेखनीय हैं। उनका कहना है कि अर्थशास्त्र का रचयिता चाणक्य जैसा कोई राजनीतिज्ञ न होकर कोई विद्वान् पण्डित होना चाहिए।

वस्तुतः इतिहास के द्वारा चाणक्य का चन्द्रगुप्त मौर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है। अर्थशास्त्र में 'नरेन्द्रार्थे', 'मौर्यार्थे' इत्यादि पदावली से भी यह निश्चित होता है कि अर्थशास्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य (ई०पू० चतुर्थ शताब्दी) के जीवनकाल में हुई। चाणक्य के अर्थशास्त्र पर अशोक का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अर्थशास्त्र और अशोक के शासन-लेखों में कुछ एक जैसे विधान पाये जाते हैं जैसे चक्रवाक, शुक और सारिका आदि पक्षियों की हत्या का वर्जित होना। युता, राजुका, समाज, महामाता आदि पारिभाषिक पदावली का दोनों में समान रूप से प्रयोग मिलता है। बाह्य प्रमाणों के आधार पर यदि विचार करें तो पता चलेगा कि सर्वप्रथम कामन्दक ने अपने 'नीतिसार' नामक ग्रन्थ का प्रयोजन एकमात्र कौटिल्य अर्थशास्त्र का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करना बतलाया है, साथ ही ग्रन्थारम्भ में विष्णुगुप्त को नमस्कार किया है। दण्डीकृत दशकुमारचरित में राजा के दैनिक कर्त्तव्यों का विवेचन भी अर्थशास्त्र की तरह मिलता है तथा दो स्थलों पर 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को उद्ध त किया है इससे स्पष्ट होता है कि दण्डी को अर्थशास्त्र के ६००० श्लोकों का पर्याप्त ज्ञान भी था।

चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के पारस्परिक सम्बन्ध का पता कितने ही ग्रन्थों से मिल जाता है। सर्वप्रथम विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्राह्मण पुराण में चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन आया है। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में दोनों की मित्रता का वर्णन मिलता है। विशाखादत्त ने भी चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य की घनिष्ठता का चित्रण अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' में किया है। अतः स्पष्ट है कि आचार्य कौटिल्य, जिनका अपर नामक चाणक्य भी है, ही अर्थशास्त्र के कर्ता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का काल ई० पू० त तीय-चतुर्थ शताब्दी ही होना चाहिए।

कौटिल्य का कृतित्व

चन्द्रगुप्त मौर्य (ई०पू० चतुर्थ शताब्दी) के प्रधान अमात्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य तथा भारत के राजाओं को आने वाली पीढ़ी को राजनीति सिखाने के लिए जिन ग्रन्थों की रचना की, उनकी संख्या पांच मानी जाती है :-

(१) कौटिल्य अर्थशास्त्र - जिसमें ६ हजार श्लोक हैं,

(२) चाणक्य सूत्राणि - एक हजार श्लोकों में निबद्ध है,

(३) चाणक्य नीति दर्पण - २४८ श्लोक,

(४) लघु चाणक्य - १०८ श्लोक,

(५) व द्ध चाणक्य - २०५ श्लोक।

चाणक्य का बनाया एक 'नीतिशास्त्र' भी है जिसके कई संस्करण प्रचलित हैं। जिनमें परस्पर पर्याप्त भेद हैं। भोज द्वारा सम्पादित संस्करण में आठ अध्याय और ५७६ श्लोक हैं। एक अन्य संस्करण में १६ अध्यायों में ३५० श्लोक बराबर विभक्त हैं। इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के नीति वचन मिलते हैं।

इसकी रचना-शैली आपस्तम्ब सूत्र, बौधायन-धर्मसूत्र आदि सूत्र ग्रन्थों की शैली के अधिक निकट है। इसमें गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण होने के कारण ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसके अलावा सूत्र तथा भाष्य दोनों एक ही लेखक के लिखे हुए हैं। वैसे कहीं-कहीं उपनिषद् एवं ऊर्ध्वकालीन ब्राह्मणों की भाषा की प्रणाली द ष्टिगोचर होती है। ग्रन्थ में आदि से लेकर अन्त तक

एक ही क्रम अपनाया गया है और समस्त ग्रन्थ पूर्व नियोजित योजना के आधार पर लिखा गया है। इस प्रकार से समस्त ग्रन्थों में एक आश्चर्यजनक एकरूपता के दर्शन होते हैं।

अर्थशास्त्र का प्रतिपाद्य

कौटिल्य का अर्थशास्त्र विश्व के राजशास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में मूर्धन्य माना जाता है। यह नितान्त यथार्थपरक और व्यावहारिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल १५ अधिकरण, १५० अध्याय, १५० विषय हैं। एक व्यक्ति का ग्रन्थ होने के कारण इसमें अनुक्रम तथा व्यवस्था है। इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है-"सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और प्रयोग द्वारा कौटिल्य ने नरेन्द्र चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए शासन की यह विधि बतायी है।

प्रथम अधिकरण में राजा की शिक्षा तथा उसके कर्तव्यों का निर्देशन है। एक राजा के लिए सांख्य, योग, लोकायत के दार्शनिक विचार, वेदांगों में वर्णित चारों वर्णों के कर्तव्य, देश की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक दशा, चरवाहों के कर्तव्य, व्यापार, उद्योग नीति, दण्ड नीति आदि का ज्ञान रखना आवश्यक है। इसके साथ ही राजा के आन्तरिक एवं बाह्य कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मन्त्री तथा गुप्तचरों का वर्णन किया गया है। क्योंकि राजकार्य सहायता के बिना सिद्ध नहीं हो सकता, एक पहिए से राज्य की गाड़ी नहीं चल सकती, इसलिए राजा को परिषद् व सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए। परिषद् में केवल ऐसे ही व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये जो "सर्वोपधाशुद्ध" हों अर्थात् सब प्रकार के दोषों-निर्बलताओं से रहित हों। परिषद् के अमात्य राजा की शासन में सहायता तो करते ही थे, मन्त्री के अतिरिक्त पुरोहित का पद भी शासन में अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इनके अतिरिक्त शासन सत्ता के अन्य महत्वपूर्ण पद ये थे-समाहर्ता, सन्निधाता, सेनापति, युवराज, प्रदेष्टा, नायक, व्यावहारिक, कर्मान्तिक, दण्डपाल, दुर्गपाल आदि। उस समय दूत और चर-व्यवस्था पर अत्यधिक ध्यान था। दूत की आवश्यकता, आचरण एवं व्यवहार, कर्तव्य, विशेषाधिकार तथा दूतों के विविध प्रकारों आदि का विस्त त तथा उपयुक्त विवेचन अर्थशास्त्र के पहले, चौथे और बारहवें अधिकरण में है। चर को राजा की आँख कहा गया है। कौटिल्य ने चरों के नौ प्रकार बताते हुए उनके कर्तव्यों का विवेचन किया है। **दूसरे अधिकरण** में राज्य का कार्यभार संभालने वाले विभिन्न अध्यक्षों और अधिकारियों का विस्तार से वर्णन हुआ है। **तीसरे अधिकरण** में कानूनों का विस्त त विवेचन है। कौटिल्य ने धर्मसंघीय और कण्टकशोधन न्यायालयों के गठन, अधिकार और कर्तव्य का विस्तार से विवेचन किया है। धर्मसंघीय न्यायालयों में व्यक्तियों के आपस के मुकदमे पेश होते थे, इसके विपरीत कण्टकशोधन न्यायालय में वे मुकदमे उपस्थित होते थे जिनका सम्बन्ध राज्य से होता था। **चौथे अधिकरण** में पुलिस द्वारा धोखा-धड़ी करने वालों को पकड़ने तथा समस्त छल-कपट के कार्यों का वर्णन है। **पांचवें अधिकरण** में अपकारी मंत्री से राजा के बचने तथा कर-विधान एवं कोष में धन-संग्रह की विधियों का विवेचन है। **छठे अधिकरण** में राजनीति के सात अंगों का उल्लेख है। प्रायः सभी राजनीतिशास्त्रज्ञों ने राज्य के सात अंग बतलाये हैं-स्वामी, अमात्य, जनपद या राष्ट्र, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र। अंगों को प्रकृति भी कहा जाता है। **सातवें अधिकरण** में शान्ति, युद्ध, तटस्थता, युद्ध की तैयारी, सन्धि, संदेहात्मक व्यवहार आदि के कारणों का उल्लेख है। **आठवें अधिकरण** में शिकार, जुआ, स्त्री, शराब, आग, पानी आदि द्वारा राजा को कैसी-कैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, इन सभी बातों का वर्णन है। **नवें अधिकरण** में युद्ध का वर्णन है। **दसवें अधिकरण** में युद्ध विषयक शकुन आदि का वर्णन है। **ग्यारहवें अधिकरण** में स्त्री द्वारा शत्रु-विनाश का वर्णन है। **बारहवें अधिकरण** में शत्रु पर विजय प्राप्त करने की अनेक युक्तियां बताई गई हैं। **तेरहवें अधिकरण** में राजा को अपने शत्रु के नगर को जीतने के लिए किस प्रकार अपने को सर्वशक्तिशाली घोषित करना चाहिए, इन सभी साधनों का उल्लेख है। **चौदहवें अधिकरण** में कुछ असाधारण बातों का वर्णन है, जैसे-एक व्यक्ति एक माह तक बिना भोजन किए रह सकता है, कैसे वह आग पर चल सकता है। **पन्द्रहवें अधिकरण** में कार्य-योजना का विस्त त वर्णन है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र, राजशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय विषयों का अत्यन्त विशद और व्यावहारिक संहिताबद्ध कोश है। इन विषयों का सैद्धान्तिक और प्रायोगिक निरूपण करने वाला यह ग्रन्थ विलक्षण भारतीय मेधा का निर्विवाद प्रतिष्ठापक है।

अर्थशास्त्र के प्रथम दो अधिकरणों में प्रतिपादित कुछ मुख्य विषय

१. विद्या चतुष्ठय, २. इन्द्रियजय अर्थात् अरिषड्वर्ग त्याग, ३. अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा, ४ गुप्तचर और उनके कर्तव्य, ५. मन्त्रज्ञान और उसकी रक्षा, ६. दूत और उनके कार्य, ७. राजा द्वारा आत्मरक्षा के उपाय, ८. राजा की दिनचर्या और कर्तव्य, ६. जनपद, १०. दुर्ग, ११. नगर, १२. कोष, १३. आय-व्यय का लेखा, १४. शुल्क (चुंगी), १५, अध्यक्ष व उनके कार्य।

१. विद्याचतुष्टय

आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-ये चार विद्यायें हैं। (मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत ही हो जाता है। आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्यायें मानते हैं : वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो संसारी लोगों की आजीविका का साधन मात्र है। शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, और उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है। आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं। धर्म और अर्थ का बोध कराना ही इन विद्याओं का विद्यात्व अर्थात् प्रयोजन है।

अन्वीक्षिकी - सांख्य, योग और लोकायत (चार्वाक दर्शन), ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है। त्रयी आदि विद्याओं की प्रधानता-अप्रधानता (बलाबल) को, भिन्न-भिन्न युक्तियों से, निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है; सुख-दुःख से बुद्धि को स्थिर रखती है; और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है। यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।

त्रयी - साम, ऋक् तथा यजु, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है। अथर्ववेद और इतिहासवेद भी वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं। त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने अपने धर्म (कर्तव्य) में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है। ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान देना तथा दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म, है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे; खेती, पशु-पालन तथा व्यापार करे; और शिल्प (कारीगरी), गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे। ग हस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करे; सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे; ऋतुगामी हो; देव, पितर, अतिथि और भ त्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करे। ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे; अग्निहोत्र करे; नित्य स्नान करे; भिक्षाटन करे; जीवनपर्यन्त गुरु के समीप रहे; गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे। वानप्रस्थी का धर्म है : ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना; भूमि पर शयन करना; जटा, म गचर्म को धारण किये रहना; अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना; देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्दमूल-फल पर निर्वाह करना। संन्यासी का धर्म है : जितेन्द्रिय होना; वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे; निष्किंचन बना रहे; एकाकी रहे; प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार करे; समाज में न रहे; जंगलों में भी एक ही स्थान पर न रहे; मन, वचन, कर्म से अपना भीतर तथा बाहर पवित्र रखे।

प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे; सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान् और क्षमाशील बना रहे। अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है। इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रव त्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है। पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है।

वार्ता - कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि को देने से परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

दण्डनीति - दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है। आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-सम द्धि दण्ड पर निर्भर है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है; प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है; रक्षित वस्तुओं की व द्धि करती है और वही संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इसलिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने की इच्छा रखने वाला राजा सदा ही उद्यतदण्ड दण्ड देने के लिए प्रस्तुत रहे। पुरातन आचार्यों का अभिमत है कि 'दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को सहज ही वश में किया जा सके'। किन्तु आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'कठोर दण्ड देने वाले राजा से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते हैं; किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।' भली भाँति सोच-समझ कर प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रव त्त करता है। काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रीति से प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्प ह व्यक्तियों को भी कुपित कर देता है; फिर ग हस्थ लोगों का तो कहना ही क्या ? इसके विपरीत, यदि दण्ड से व्यवस्था सर्वथा ही तोड़ दी जाए तो उसका कुप्रभाव यह होगा कि जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति, निर्बल व्यक्तियों का जीना मुश्किल कर देंगे। दण्ड-व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान् सताने लगता है; किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान् बना रहता है। राजा की दण्ड-व्यवस्था से पालित चारों वर्ण-आश्रम, सारा लोक, अपने-अपने धर्म कर्मों में प्रव त्त होकर निरन्तर अपनी अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं। यही कारण है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन तीनों विद्याओं का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है। शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के योगक्षेम का साधक होता है।

२. इन्द्रिय-जय अर्थात् अरिषड्वर्गत्याग -

विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इस अरिषड्वर्ग के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका को उनके विषयों : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रव त्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है। अथवा शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों के सम्यक् अनुष्ठान को ही इन्द्रियजय कहते हैं। सारे शास्त्रों का मूल कारण इन्द्रियजय है। शास्त्रविहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाले इन्द्रिय-लोलुप राजा सारी प थिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा कामवश ब्राह्मणकन्या का अपहरण करने के अपराध में, उसके पिता के शाप से, सपरिवार एवं सराष्ट्र विनष्ट हो गया। यही गति विदेह देश के राजा कराल की भी हुई। क्रोधवश राजा जनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और

वह भी उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भ गुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा, चारों वर्णों से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही हाल सौवीर देश के राजा अजबिन्दु का भी हुआ। अभिमानी रावण पर-पत्नी के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा; अन्त में नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार हैहयराज अर्जुन, परशुराम द्वारा मारा गया। हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नाम का असुर, अगस्त्य ऋषि के शापवश म त्युमुख में जा पहुँचे। कामादि छह शत्रुओं के वश में होकर, ऊपर गिनाये गये राजाओं के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से राजा, सबन्धु-बान्धव एवं सराज्य नष्ट हो गये। किन्तु जामदग्न्य परशुराम, अम्बरीष और नाभाग जैसे जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक इस प थिवी का उपभोग किया।

इसलिए, काम-क्रोधादि छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। विद्वान् पुरुषों की संगति में रहकर बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के व त्तान्त को अवगत करे। उद्योग के द्वारा राज्य के योग-क्षेम का सम्पादन करे। राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर द ढ़ बने रहने के लिए प्रजा पर नियन्त्रण रखे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से प्रजा को विनम्र और शिक्षित बनावे। प्रजाजनों को धन-सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखे। दूसरे का हित करने में उत्सुक रहे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह (राजा) पराई स्त्री, पराया धन और हिंसाप्रव त्ति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, च चलता, झूठ बोलना, अविनीत व त्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और इस प्रकार के आचरण वाले लोगों की संगति को वह छोड़ दे। उसको चाहिए कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे। काम का भी वह सेवन करे; किन्तु उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करे। इस त्रिवर्ग का असंतुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता है। आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर है। गुरुजन और अमात्यवर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में प्रमाद करता हुआ अभर्यादित हो जाये तो समय-सूचक यन्त्र द्वारा अथवा घंटा आदि बजाकर उसको सावधान करें।

३. अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा

एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे। आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि 'राजा, अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे; क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है; उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं'।

आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि 'ऐसा उचित नहीं। एक साथ खेलने तथा उठने-बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो कि गुप्त कार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समान शील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से, राजा का अपमान नहीं करते हैं'।

आचार्य पराशर के मत से आचार्य विशालाक्ष की युक्तियाँ दोषपूर्ण हैं। पराशर का कहना है कि यह बात तो दोनों ही पक्षों पर एक समान चरितार्थ होती है। ऐसा करने से यह भी तो सम्भव है कि गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा ही अमात्य की कठपुतली बन जाय !

क्योंकि राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है। इसलिए जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियों में रक्षा करें, उनको अमात्य नियुक्त करना चाहिए। उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है।

आचार्य पिशुन इसको भक्ति कहते हैं। उनका कहना है कि 'प्राणों की चिन्ता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है, सेवाधर्म है; वह बुद्धि का प्रमाण नहीं; जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण है। इसलिए अमात्य पद पर उन्हीं का नियुक्त करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर अपने कार्यों को विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न करके दिखा दें, क्योंकि इस ढंग से उनके बुद्धि-वैशिष्ट्य की परीक्षा हो जाती है'।

आचार्य कौणपदन्त उक्त मत को नहीं मानते। उनका कहना है कि 'ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं। अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध रहा हो, उन्हीं को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं। यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी,परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते। यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है कि गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है'। आचार्य वातव्याधि, आचार्य कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं है। उनकी मान्यता है कि 'इस प्रकार के अमात्य; राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके, राजा के समान स्वतन्त्र व त्ति वाले हो जाते हैं। इसलिए नीतिकुशल राजा नये व्यक्तियों को ही अमात्य नियुक्त करे। नये अमात्य, दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर, उसकी कभी भी अवमानना नहीं करते'।

आचार्य बाहुदन्ती के मत से यह भी ठीक नहीं है। वे कहते हैं 'नीतिशास्त्रपारंगत, किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता है। इसलिए जो लोग कुलीन, बुद्धिमान् विश्वासपात्र, वीर और राजभक्त हों, उनको अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। उनमें गुणों की प्रधानता होती है'। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भारद्वाज से लेकर बहुदन्तीपुत्र तक की विचार-परम्परा, अपने-अपने स्थान पर ठीक है। 'किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कायो ँ की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए वह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे; किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।

सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके, मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा, गुप्त उपायों के द्वारा उनके आचरणों की परीक्षा करे। धर्मोपधा से राजा, पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे। जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करे तो राजा उसको उसके पद से च्युत कर दे। वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराये। वह कहे 'यह राजा बड़ा अधार्मिक है। हमें चाहिए कि उसके स्थान पर, उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीप के किसी सामन्त को, अथवा किसी जंगल के स्वामी को, या जिसको भी एकमत होकर हम निश्चित कर लें, उसको, नियुक्त करें। मेरे इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' पुरोहित की यह बात सुनकर यदि अमात्य उसको स्वीकार न करे तो उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए। गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को 'धर्मोपधा' कहते हैं।

अर्थोपधा से राजा, किसी निन्दनीय या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने के लिए, सेनापति को आदेश दे। राजा की इस बात से जब सेनापति रुष्ट हो जाए तो राजा उसको भी पदच्युत कर दे। वह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्तभेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। वह कहे 'मेरी इस युक्ति को सभी ने स्वीकार कर लिया है।

बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' सेनापति की यह बात सुनकर अमात्य यदि उसका विरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय वाला है। गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'अर्थोपधा' कहते हैं।

कामोपधा से राजा किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत-सत्कार करे और फिर वह एक-एक अमात्य के निकट जाकर कहे 'महामात्य, महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर दी है। इससे आपको यथेष्ट धन भी प्राप्त होगा।' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझना चाहिए। गुप्त कामसम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'कामोपधा' कहते हैं।

भयोपधा से नौका-विहार के लिए एक अमात्य दूसर अमात्यों को बुलाये; इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब को दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ कपट-वेषधारी छात्र उस तिरस्कृत एवं दण्डित अमात्य के निकट जाकर उससे कहे 'यह राजा बहुत ही बुरा है। इसका वध करके हम किसी दूसरे राजा को उसके स्थान पर नियुक्त करें। सभी अमात्यों को यह स्वीकृत है। कहिए, आपकी क्या राय है ?' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसको शुचिचित्त समझना चाहिए। गुप्तभय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही 'भयोपधा' कहते हैं।

जो अमात्य धर्मपरीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी) तथा कण्टकशोधन (फौजदारी कचहरी) सम्बन्धी कार्यों मे नियुक्त करना चाहिए। अर्थपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता (टैक्स कलक्टर) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के पदों पर रखना चाहिए कामोपधा में परीक्षित अमात्यों को बाहरी विलास-स्थानों तथा भीतरी अन्तःपुर-सम्बन्धी रक्षा का भार सौंपना चाहिए। भयपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त जो अमात्य सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हों उन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए; और सभी परीक्षाओं में असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जंगलों आदि की परिश्रम-साध्य व्यवस्था का भार सौंपना चाहिए।

सभी पुरातनअर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यही अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुकूल कार्यभार सौंपना चाहिए।' किन्तु, इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का एक संशोधन यह है कि 'अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाय; पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनाये। क्योंकि कभी-कभी किसी निर्दोष अमात्य को छल-प्रपंचयुक्त इन गुप्त-रीतियों से ठगा जाना, पानी में विष घोल देने के समान हो जाता है। सम्भव हो सकता है कि उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी सुधर न सके। क्योंकि छल-छदम् जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गये चरित्रवान् पुरुष की बुद्धि तब तक चैन नही लेती, जब तक उसने अभीष्ट को प्राप्त न कर लिया हो।

इसलिए सर्वोत्तम यही है कि उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा, किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे।

४. गुप्तचर और उनके कर्त्तव्य

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राज्य की व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए राजा को अपने राज्य में योग्य गुप्तचर नियुक्ति करने चाहिए। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार कापटिक, उदास्थित, ग हपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद ओर भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं। दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ और विद्यार्थी की वेषभूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर का`धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो।'

बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है। वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर, वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है। उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करे, उन्हें सब तरह से अपने वश में कर ले और उनसे कहे 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। जब तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आये, यहाँ उपस्थित हो जाना।' दूसरे संन्यासी भी अपने-अपने संप्रदाय के संन्यासियों को इसी प्रकार समझा-बुझा दें।

बुद्धिमान्, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को 'ग हपतिक' कहते हैं। वह कृषिकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर के ही समान कार्य करे।

बुद्धिमान, पवित्र हृदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'वैदेहक' है। वह व्यापारकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

जीविका के लिए सिर मुँड़ाये या जटा धारण किये हुये, राजा का कार्य करने वाला गुप्तचर ही 'तापस' है। वह कहीं नगर के समीप ही बहुत से मुंड या जटिल विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे। वैदेहक तथा उसके अनुचर उसकी पूजा-अर्चना करें। शिष्यमण्डली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्य-वक्ता और लौकिक शक्तियों से सम्पन्न है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आगे हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बताये। ऐसा भी बताये कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह, आग लगने, चोरी हो जाने, दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातें भी उनको बताये।

इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में 'तापस' गुप्तचर की दूसरे सत्री आदि गुप्तचर सहायता करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि धीर, बुद्धिमान्, चतुर लोग हों तो उनसे वह, राजा की ओर से, धन प्राप्त होने की बात कहे; मन्त्री के साथ भी उनकी मुलाकात का संयोग बताये। जब मंत्री से इन लोगों की मुलाकात हो तो उचित यह होगा कि ऐसे लोगों को मंत्री धन तथा आजीविका आदि देकर, गुप्तचर की भविष्यवाणी को सच्ची सिद्ध कर दे। जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए हों उन्हें धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट किया जाए। जो बिना कारण ही क्रुद्ध हों तथा राजा से द्वेष रखते हों, उनका चुपचाप वध करवा डाले।

इस प्रकार धन और मान से राजा द्वारा सम्मानित गुप्तचर तथा अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषों के सद्व्यवहारों को भली-भाँति जान लें। पाँच प्रकार के गुप्तचर पुरुषों की नियुक्ति और उनके कार्यों के विवरण का यही विधान है।

जो राजा के सम्बन्धी न हों; किन्तु जिनका पालन-पोषण करना राजा के लिए आवश्यक हो; जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण; इन्द्रजाल; धर्मशास्त्र; शकुनशास्त्र; पक्षिशास्त्र; कामशास्त्र तथा तत्संबंधी नाचने-गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' कहलाते हैं।

अपने देश में रहने वाले ऐसे व्यक्ति, जो द्रव्य के लिए अपने प्राणों की परवाह न करके हाथी, बाघ और सांप से भी भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

अपने भाई-बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले, क्रूर प्रकृति और आलसी स्वभाव के व्यक्ति 'रसद' विष देने वाले कहलाते है।

आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ, विधवा, दबंग, ब्राह्मणी, रनिवास में सम्मानित, प्रधान अमात्यों के घर में प्रवेश पानेवाली 'परिव्राजिका' संन्यासिनी के वेश में खुफिया का काम करने वाली नाम

की गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी) और व षली (शूद्रा) आदि नारी गुप्तचरियों को भी जान लेना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

राजा को चाहिए कि वह, इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढिदार, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार नगरमुखिया, खदान-निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेना-रक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और अटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके नियुक्त करे। उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देखरेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने। तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी हुई बातों को सत्र नामक गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बता दे। सूद (रसोइया), आरालिक (मांस पकाने वाला), स्नापक (नहलाने वाला), संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), आस्तरक (विस्तर बिछाने वाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (श्रृंगार करने वाला) और उदक-परिचारक (जल भरने वाला) आदि विभिन्न वेष में रह कर रसद नामक गुप्तचर, मन्त्री आदि उच्च्य अधिकारियों के भेदों का पता लगाये। इसी प्रकार कुबड़े, बौने, किरात (जंगली आदमी), गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले, आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सब रहस्यों का पता ले। भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला को चाहिये कि वह रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे। संस्थाओं के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचावें। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर बिल्कुल न जानने पावें। यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो यह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असंभव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके व द्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता ने मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयंकर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने आग लगाकर या किसी को जहर देकर चुपचाप बाहर निकल आवे। परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचारों को लायें तो उन्हें या तो नौकरी से अलग कर दिया जाये अथवा चुपचाप पिटवाया जाये।

उक्त गुप्तचरों के अतिरिक्त 'कंटकशोधन' प्रकरण में आगे बताये गए गुप्तचरों को भी नियुक्त करना चाहिये। ऐसे गुप्तचर विदेशों में जाकर वहां की सरकार के वेतनभोगी नौकर बनें और उनके गुप्त रहस्यों को समझें। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष दोनों ओर से वेतन लें। उभयवेतनभोगी इस प्रकार के गुप्तचरों से सम्बन्ध में विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह उनके स्त्री-बच्चों को सत्कारपूर्वक अपने आधीन रखे। शत्रु की ओर से नियुक्त इस प्रकार के उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की भी राजा जानकारी रखे और उनके माध्यम से अपने उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की भी परीक्षा करता रहे।

इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिये कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट; सभी स्थानों पर, अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे। इसके अतिरिक्त उन शत्रु, मित्र, मध्यम आदि राजाओं के घरों तथा उनके मन्त्री, पुरोहित आदि के घरों में भी काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियां,

गूंगे तथा दूसरे दूसरे प्रकार के बहानों को लेकर म्लेच्छ जाति के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए। दुर्गों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, राज्य के अन्तर्गत अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों को और राज्य की सीमा पर चरवाहों, को गुप्तचर वेष में नियुक्त करना चाहिये।

जंगल में शत्रु की प्रत्येक गतिविधि का पता लगाने के लिए चतुर, वानप्रस्थी ओर जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए। इस प्रकार, प्रकट रूप से सामान्य स्थिति में रहते हुए, शत्रु की ओर से नियुक्त सभी, तीक्ष्ण, कापटिक, उदास्थित आदि गुप्तचरों को अपने वर्ग के अनुसार ही पहचाने। शत्रु के किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को, शत्रु के गुप्तचरों का पता लगाने के लिए, राज्य की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें शत्रुपक्ष के लोगों को स्ववश करने के उपाय भी बता देने चाहिए। राजा को चाहिए के महामंत्री, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचर नियुक्त करने के पश्चात् वह अपने प्रति प्रजाजनों तथा नगरनिवासियों का अनुराग-द्वेष जानने के लिए वहाँ भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे। पहिले तो गुप्तचर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगें; और बाद में वे तीर्थस्थानों, सभा-सोसाइटियों, खाने-पीने की दूकानों, राजकर्मचारियों के बीच, तथा नाना प्रकार के लोगों में ये कहकर वाद-विवाद करें कि 'यह राजा तो सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है; किन्तु इसमें कोई भी सद्गुण नहीं दिखाई दे रहा है। उल्टा वह नगरवासियों को दण्ड देकर एवं कर वसूली करके पीड़ा पहुँचा रहा है। उसके बाद सुनने वालों की उचित-अनुचित प्रतिक्रिया को ताड़ता हुआ दूसरा गुप्तचर उसके विरोध में यों कहे-'देखो, जैसे छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, पुराकाल में वैसे ही बलवान् लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था। इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा नियुक्त किया; और तभी से खेती की उपज का छठा भाग, व्यापार की आमदनी का दसवां भाग तथा थोड़ा-सा सुवर्ण राजा के लिए, कर रूप में निर्धारित भी कर दिया था। प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को पाकर राजाओं ने प्रजा के योगक्षेम का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया। इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा के उत्पीडनों को दूर करने में सहायक होते हैं और प्रजा की भलाई एवं कल्याण के कारण सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि जंगलों में एकान्त जीवन बिताने वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके बीने हुए अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं; यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उन पर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, निश्चित ही, उस पर दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं।

यही कारण है, जिनको द ष्टि में रख कर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।' इत्यादि बातों को कह कर राजा की निन्दा करने वालों को रोक दें। गुप्तचरों के लिए आवश्यक है कि वे अफवाहों पर भी ध्यान दें। जो लोग धान्य पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं; विपत्ति और अभ्युन्नति के समय उसकी सहायता करते हैं; राजा के प्रति क्रुद्ध भाई तथा कुपित प्रजा को जो शान्त कर देते हैं; उनकी प्रसन्नता और उनक`कोप पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह गुप्तचरों के माध्यम से अपने प्रजाजनों पर ध्यान रखने के साथ ही शत्रु देश की प्रजा के क्रुद्ध, लुब्ध, भीत तथा मानी आदि वर्गों को गुप्तचरों के माध्यम से अपने राजा के विरुद्ध करवाये। इस विषय में इन वर्गों की पहचान तथा उनको वश में करने के उपायों के बारे में वे लिखते हैं - जिसको धन देने की प्रतिज्ञा करके धन न दिया गया हो; किसी शिल्प या उपकार सम्बन्धी कार्यों को समान रूप से करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का तो सम्मान किया गया हो और दूसरे की अवमानना की गई हो; राजा के विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसको राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो; स्वयं बुलाकर जिसका तिरस्कार किया गया हो; राजाज्ञा से प्रवासित होने के कारण दु:खित, व्यय करके भी जिसका अभीष्ट कार्य पूरा न हुआ ओ, जिसको अपने धर्म तथा अधिकार से रोका गया हो; सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण

पद से जिसको च्युत किया गया हो; राजपुरुषों द्वारा जिसको बदनाम किया गया हो; जिसकी स्त्री को जबरदस्ती छीन लिया गया हो; जिसको जेल में ठूंस दिया गया हो; दूसरे के कहने मात्र से जिसको दण्ड दिया गया हो; झूठा इलजाम लगाकर जिस पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया हो; जिसका सर्वस्व अपहरण किया गया हो; अशक्त कार्यों पर नियुक्त करके जिसको पीड़ित किया गया हो और जिसके बन्धु-बान्धवों को देश-निकाला दिया गया हो-इस प्रकार के सभी लोग 'क्रुद्धवर्ग' कहलाते हैं।

किसी लोभ के कारण हिंसा करके जो दूषित हो चुका हो; पाप कर्मो को करने में जो कुख्यात हो; अपने समान अपराधी को दण्डित हुआ देखकर जो घबड़ा गया हो; भूमि का अपहरण करने वाला; जो दण्ड के द्वारा वश में किया गया हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो; अपनी कार्यक्षमता से जिसने प्रभूत धन एकत्र कर लिया हो; जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट कुछ कामना से रहता हो; जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता हो-इस प्रकार से सभी लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया हो; जो कायर, व्यसनी और अपव्ययी हो, वह 'लुब्धवर्ग' कहलाता है।

अपने को महान् समझने वाला; आत्मश्लाघी; शत्रु के सम्मान को सहन न करने वाला; नीच लोगों द्वारा प्रशंसित; तीक्ष्णप्रकृति; साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होने वाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

उक्त क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के लोगों में से जिस मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो-जो भक्त हों उसको वही गुप्तचर अपने वश में करे। गुप्तचर, क्रुद्धवर्ग के लोगों को उनके स्वामी से यह कह कर फोड़े, 'देखो, जैसे उन्मत्त पीलवान से चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जो कुछ भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी आँखों से हीन, अपने अंधे मंत्री के साथ रहता हुआ यह राजा राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। ऐसी अवस्था में इस राजा के प्रति तुम्हें कुपित होना चाहिए।' यह कहकर क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ दे।

भीतवर्ग को अपने वश में करने के लिए गुप्तचर ऐसा कहे-'देखो, जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने वाला है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह कह कर भीतवर्ग का भेदन करे।

लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर यों कहे, 'देखो जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए ही दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार राजा भी बल, बुद्धि और वाक्शक्ति से हीन लोगों के लिए लाभदायक है, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसके विपरीत अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, तुम्हें उसी के आश्रय में रहना चाहिए।' इस प्रकार लुब्धवर्ग को मिलाये।

मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर कहे 'देखो, जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार नीच राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करने वाला है। तुम्हें उसी के आश्रम में जाकर रहना चाहिए।' इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे। इस प्रकार राजा अपने पक्ष में किये गये पुरुषों को शपथ, संधि आदि से विश्वास दिला कर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त करे, जिन पर वे नियुक्त थे; किन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को अवश्य रखे। इस प्रकार राजा, शत्रुदेश में कृत्यपक्ष के पुरुषों को साम तथा दाम के द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु अकृत्यपक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करतेरहें और उनके सामने शत्रु के दोषों की निरन्तर चर्चा करते रहें।

५. मंत्र ज्ञान और उसकी रक्षा

आचार्य कौटिल्य के अनुसार विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह अपने देश में दुर्ग आदि तथा शत्रुदेश के सम्बन्ध में संधि-विग्रह आदि कार्यों पर विचार करे। इस प्रकार के सभी कार्यो ं को गंभीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही आरम्भ करना चाहिए। गंभीर व गोपनीय विचार विमर्श ही मंत्र ज्ञान कहलाता है। मंत्र के पांच भाग होते हैं - (१) कार्यारम्भ करने का उपाय, (२) कार्यसाधक पुरुष तथा द्रव्य, (३) देशकाल विभाग, (४) विघ्न प्रतिकार और (५) कार्यसिद्धि।

किसी कार्य की सिद्धि के लिए मंत्र अर्थात् विचार-विमर्श जितना आवश्यक है उससे अधिक आवश्यक है उस मंत्र की रक्षा। अतः राजा मंत्र ज्ञान और उसकी रक्षा के विषय में सदैव सावधान रहे। जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय वह चारों ओर से इस प्रकार बन्द होना चाहिए जिससे वहां पक्षी तक न झांक सके और कोई शब्द बाहर न सुनाई दे, क्योंकि अनुश्रुति है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसको मरवा देना चाहिए।

कभी-कभी बिना कहे ही दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त भेद प्रकट हो जाते हैं। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएं 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं के प्रकट करने वाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता तब तक अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे। मंत्रियों की असावधानी के कारण या मद्यपान की बेहोशी में अथवा सोते समय आकस्मिक प्रलाप द्वारा या विषय-भोग की लालसा से अथवा अभिमान के भाव से गुप्त मंत्रणाएं समय से पहिले प्रकट हो जाती हैं।

आड़ में छिपकर सुननेवाले अथवा मन्त्रणाकाल में मूर्ख कहकर अपमानित हुआ व्यक्ति भी मन्त्र के भेद को फोड़ देता है। इसलिए इन सभी बातों को द ष्टि में रखकर राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त रहस्यों की सावधानी से रक्षा करे। आचार्य भारद्वाज का सुझाव है कि 'मन्त्र के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे; क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे लोग परामर्शदाता होते हैं इसलिए इस मन्त्रि-परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। 'इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।'

आचार्य विशालाक्ष कुछ संशोधन के साथ अपना विचार प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि 'एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियां की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चितकार्य को द ढ़ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह विचारना इत्यादि सभी बातं मन्त्रियों कें सहयोग से ही पूरी कह जा सकती हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर विचार करना चाहिए। 'राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अवमानित न करे; सबकी बातों को ध्यापनूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे।'

आचार्य पराशर के मतावलम्बी विद्वानों का कहना है कि 'आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो सकता है, मन्त्र की रक्षा नहीं। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह

लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध मे वह मन्त्रियों से पूछे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। इस पर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी।'

आचार्य पिशुन अर्थात् नारद इस मन्तव्य को नहीं मानते। उनकी स्थापना है 'क्योंकि इस तरह प्रकारान्तर से म्रन्त्रियों के सम्मुख किसी बात को रख देने से वे समझने लगते हैं कि राजा हमारी सलाह नहीं मानता और उसका हम पर विश्वास नहीं है। इसलिए वे पूर्वघटित एवं अघिटित विषय पर लापरवाही से उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं। यह तो मन्त्र के लिए बड़ा दोष है। इसलिए राजा को यही उचित है कि जो लोग जिन-जिन कार्यों पर नियुक्त एवं जिन-जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ वैसी सलाह करे। ऐसा करने से मन्त्रणा में अधिक परिमार्जन हो जाता है ओर उसकी सुरक्षा भी हो जाती है।

आचार्य कौटिल्य उक्त मत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'नारदमुनि की बताई हुई युक्तियों के अनुसार मन्त्र व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो कोई असंभव नहीं कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायें तो सारी मंत्रणा ही धूल में मिल जायेगी। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायं तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।' इसलिए देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों के साथ भी राजा मन्त्रणा करे। अपनी विचार-शक्ति के अनुसार वह अकेला बैठकर कुछ कार्यो का स्वयं ही निर्णय करे।

मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-भाँति समझ-बूझ जाने पर अविलंब ही वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर दे। किसी कार्य को अधिक समय तक विचारते रहना उचित नहीं है। जिन लोगों का कभी अपकार किया हो, उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए।

मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए। ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् 'सोलह मन्त्रियों' के पक्ष में हैं। शुक्राचार्य-पक्ष के आचार्य मन्त्रियों की संख्या 'बीस' रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं। आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।' वे निर्धारित मन्त्री विजिगीषु राजा के और उसके शत्रु राजा के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गये हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-संमार्जन करें।

निष्कर्ष यह है कि विभागीय अध्यक्ष अपने-अपने कार्यों को अंत तक अधिकाधिक निपुणता से सम्पन्न करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, जो कि उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला (सहस्राक्ष) कहा गया है।

अत्यावश्यक कार्य के आ जाने पर राजा, मन्त्रि-परिषद् का आयोजन कर उससे परामर्श करे। उनमें से बहुसमर्थित तथा शीघ्र ही कार्यसिद्धि कर देने वाली राय के अनुसार कार्य सम्पादन करे।

इस ढंग से कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जा पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों को भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है। जिस प्रकार वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण किसी श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

६. दूत और उनके कार्य

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार दूत तीन प्रकार के होते हैं १- निस ष्टार्थ, २-परिमितार्थ और ३-शासनहर।

(१) निस ष्टार्थ - कुलीन, बुद्धिमान, वीर, तथा राजभक्ति आदि गुणों से सम्पन्न दूत जिसको कि अमात्य अथवा मन्त्री के समान ही अधिकार प्राप्त होते हैं तथा जिसको अपने राजा के प्रतिनिधि के रूप में शत्रुराजा से सन्धि विग्रह तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में वार्ता करने का अधिकार प्राप्त होता है वह निस ष्टार्थ दूत कहलाता है।

(२) परिमितार्थ -निस ष्टार्थ दूत से गुणों और अधिकारों में एक चौथाई न्यून गुण और अधिकार रखने वाला दूत परिमितार्थ कहलाता है। यह राजा द्वारा किसी कार्य विशेष के लिये नियुक्त किया जाता है। निर्धारित कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों में विचार या निर्णय का अधिकार उसे नहीं होता।

(३) शासनहर- शासनहर सामान्य कोटि का दूत होता है जिसका कार्य शासकीय पत्र अथवा सन्देशों को दूसरे राजा के पास ले जाना होता है।

आचार्य कौटिल्य दूतों के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिये। दूत को पहले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिये कि 'मैं अपने स्वामी का संदेश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-२ विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा।' आदि-आदि।

राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा जनपदवासियों से मित्रता गांठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग बने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएं, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्तव्य है। किसी शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत, उस राजा की आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का संदेश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, द ष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने पर भी दूत सही संदेश ही निवेदित करते हैं। कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो

राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है, उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध से सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। दूसरे की कही हुई बात को ही दुहरा देना मात्र दूत का कार्य होता है।'

जब तक शत्रुराजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। शत्रुराजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे। शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान् न समझे। किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले। स्त्री-प्रसंग और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अपने स्थान में एकाकी ही शयन करे। मद्य पीने तथा दूसरों के साथ शयन करने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। दूत को चाहिए कि वह शत्रु-देश के कृत्यपक्ष को फोड़ देने का कार्य तथा अकृत्यपक्ष को वश में कर देने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि उच्चाधिकारियों का पारस्परिक राग-द्वेष तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा अवगत करे। अथवा तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों, चिकित्सक तथा पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों या उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रुराजा के रहस्यों का पता करता रहे। यदि इन गुप्तचरों से भी काम बनता न देखे तो, भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु के कार्यों का पता लगाता रहे। तीर्थस्थानों, देवालयों, ग हचित्रों तथा लिपिसंकेतों द्वारा भी वह वहाँ के व त्तान्त जाने। ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे। दूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपने मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे। 'आप तो सर्वज्ञ हैं' इतना कहकर बात को टाल दें। यदि इतना बताने पर भी शत्रुराजा को सन्तोष न हो तो उतना मात्र परिचय देना चाहिए, जितने से अपने कार्य की सिद्धि हो जाये।

कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रुराजा दूत को अपने ही यहाँ रोके रखना चाहता है, तो दूत को, राजा की इस अप्रत्याशित नीति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। उसको विचार करना चाहिए कि 'क्या शत्रुराजा को मेरे स्वामी पर आने वाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है। या कि वह मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है। अथवा वह पार्ष्णिग्राह (स्वामीराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र) तथा आसार (शत्रुराजा के मित्र का मित्र) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता। या उसका इरादा मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित करने का तो नहीं है। या कि वह किसी आटविक को भिड़ाने का षड्यंत्र तो नहीं रच रहा है। उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र (स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा) तथा आक्रंद (स्वामिराजा के प ष्ठप्रदेश का मित्र राजा) आदि मित्र राष्ट्र ों के राजाओं को मरवाना चाहता हो। या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है। या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है। अथवा वह युद्ध की तैयारी के लिए धातुसंग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है। या वह सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है। अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है।' इस प्रकार के रहस्यों, कारणों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में दूत अच्छी तरह से छानबीन करे। रोके जाने के कारणों का ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह उचित समझे तो रुके अन्यथा वहाँ से चल दे। अपने स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि के लिये वह चाहे तो उसी नगर में रुककर, गुप्त पुरुषों के द्वारा राजा तक सूचनाएं पहुँचा कर, उनका प्रतीकार करवावे। अपने स्वामी का ऐसा संदेश, जिसको सुनकर शत्रुराजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिये ही वहाँ से कूच कर देना चाहिये अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

शत्रुप्रदेश में अपने स्वामी का संदेश लेकर जाना; शत्रुराजा का संदेश लाने के लिए जाना, सन्धिभाव को बनाये रखना, समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना, अधिक से अधिक मित्र बनाना, शत्रु

के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों को उसके विमुख कर देना, तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बांधवों एवं रत्नों का अपहरण कर लेना, शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत-रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन उच्चाटन आदि का प्रयोग करना, ये सभी दूत के कार्य हैं। राजा को चाहिये कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रुदूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रुदेश में उनकी सूचनायें गुप्त रूप से संग्रह करवाये।

७. राजा द्वारा आत्मरक्षा के उपाय

आचार्य कौटिल्य के अनुसार अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों तथा शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है। राजा को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपनी रानियों और अपने पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे। रानियों से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे बताये जायेंगे।

अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिऐ कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पित भक्ति की भावना न दिखाई दे तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है।'

आचार्य विशालाक्ष इसको पापकर्म कहते हैं। उनका कथन है कि 'निरपराध बच्चों को इस प्रकार मरवा डालना घोर पाप और अतिक्रूरता है, इस प्रकार तो क्षत्रिवंश ही सर्वथा नष्ट हो जायेगा। इसलिए यदि राजकुमारों में पित भक्ति न दिखाई दे तो उन्हें किसी स्थान में कैद करके रखा जाना उचित है।' आचार्य पराशर के अनुयायी इसके भी विरुद्ध हैं। उनका अभिमत है कि 'यह तो सर्पभय के समान है। जैसे घर में घुसा हुआ सांप भयावह होता है, उसी प्रकार पुत्र को कैद में रखना भी भयप्रद है, क्योंकि राजकुमार को जब चाहे पता चल जायेगा कि पिता ने अपने वध के भय से उसे कैद में डाल रखा है, तो वह पिता के घर में रहता हुआ सरलता से उसके वध की योजना तैयार कर सकता है। इसलिए राज्य की सीमा के दूरस्थ दुर्ग में ही राजकुमार को रखना श्रेयस्कर है।'

आचार्य पिशुन इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना उसी प्रकार भयावह है; जैसे आक्रमण करने से पूर्व मेढ़ा कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगने वेग से झपट पड़ता है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जाएगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर, उसकी सहायता से अपने पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को, राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।'

आचार्य कोणपदन्त की कुछ दूसरी ही स्थापना है। उनकी स्थापना है कि 'राजकुमार को परराज्याश्रित करने का परिणाम यह होगा कि जैसे गाय का बछड़ा दूसरे के हाथ में सौंप देने से इच्छानुसार वह कभी भी गाय को दुह सकता है वैसे ही राजकुमार का संरक्षक पड़ोसी राजा, राजकुमार को अपने वश में करके उचित-अनुचित रीति से इच्छानुसार विजिगीषु से धन आदि ले सकता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित जान पड़ता है।'

आचार्य वातव्याधि इस सलाह पर आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका परामर्श है कि 'राजकुमार को उसके मात कुल में रखना एक ध्वजा के समान है; जिसको मात कुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं,जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार, विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में उलझे हुए

राजकुमारों को पिता से द्रोह करने का अवकाश ही नहीं मिलता है।

आचार्य कौटिल्य इस सिद्धान्त को, जीते-जी राजपुत्रों की हत्या कर देने के समान अनर्थकारी बताते हैं। उनका कहना है 'राजकुमारों को इस प्रकार विषय-भोग में फंसाना उन्हें जीते ही म त्यु के मुख में दे देना है। जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो (संतति की) ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक्, इंद्र और बुहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान किया जाये। जब महारानी गर्भवती हो जाये तो कौमारभ त्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाये। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान् पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जाये तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।

आचार्य आंभ के मतानुयायियों का कहना है कि 'सत्रियों (गुप्तचरो) में से कोई एक सत्री राजकुमार को म गया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दें। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस पर दूसरा सत्री कहे ऐसा करना बहुत बुरा है।'

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना बहुत ही अनिष्टदायी है। उनका तर्क एवं सुझाव है कि 'सरलमति बालकों में ऐसी कुबुद्धि पैदा करना महादोष कहा जायेगा। जैसे मिट्टी का नया बर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धिवाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की भाँति अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म, अर्थ का ही उपदेश देना चाहिये, अनर्थ का नहीं।' सत्री लोग हम आपके ही हैं। इस अपनत्व को दर्शित करते हुए, राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिये कि आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घ ण्य स्त्रियों को रात्रि में एकांत में राजकुमार के निकट भेज कर उसके मन में ऐसी घ णा तथा खिन्नता पैदा करायें कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा फिर जाये। यदि वह मद्य पीने की इच्छा करे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसको दिया जाये, जिससे कि मद्य के लिए उसकी अरुचि हो जाये। यदि वह जुआ खेलने की कामना करे तो छली-कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाये कि आगे से वह जुआ खेलने का नाम भी न ले। यदि वह शिकार खेलना चाहता है तो कपटवेश धारण किये हुये राजपुरुष बेचैन करके उधर से उसके मन को खिन्न कर दे। यदि वह पिता पर आक्रमण करने की इच्छा रखता है तो पहिले तो उसे बढ़ावा दिया जाये किन्तु ऐन मौके पर उससे कहें 'देखो राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये। यदि तुम असफल हो गये तो तुम्हारी म त्यु अवश्यंभावी है और जीत भी गये तो पित घातक होने के कारण तुमको घोर नरक भोगना पड़ेगा, सारी प्रजा तुमको लानत देगी और कोई असंभव नहीं कि एकमत होकर प्रजा तुम्हारा प्राणान्त कर दे। इसलिए तुम्हें इस भयंकर पाप-कर्म से बचना चाहिए।' यदि एक ही राजपुत्र हो, और वह पित द्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिये। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिये, जहाँ कि उचित अन्न-वस्त्र प्राप्त न हों और जहाँ की प्रजा की उसके प्रति कोई सहानुभूति न हो। इसके विपरीत जो राजपुत्र आत्मगुणसम्पन्न हों, उसको सेनापति या युवराज के उच्च्य पद पर नियुक्त किया जाये।

राजपुत्रों की तीन श्रेणियां हैं : १- बुद्धिमान्, २- आहार्यबुद्धि और ३- दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ तो लेता है, किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता उसे'आहार्यबुद्धि' कहते हैं। जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है वह 'दुर्बुद्धि' है।

यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा पुत्र पैदा कराने का यत्न करे, जो राजा बनने के योग्य हो। यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी

पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार संभालने के योग्य बनाये। यदि राजा बूढ़ा हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो, तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बंधु से या किसी गुणवान् सामंत से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करवाये। किन्तु अयोग्य अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे। यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे। वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करता रहे। यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे। अथवा वे सभी भाई मिलकर राज्य को संभालें, क्योंकि यदि राज्य का संचालन सामुदायिक ढंग से हुआ तो निश्चित ही वह राज्य दुर्जय होता है। सामुदायिक राज्य-व्यवस्था से एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक व्यक्ति के व्यसनग्रस्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति उसके कार्य को संभाल लेते हैं और इस प्रकार सदैव प्रजा की सुखमय अवस्था बनी रहती है।

राजपुत्रों से अपनी रक्षा करता हुआ राजा रानियों से भी सदैव सावधान रहे। इसके उपाय रूप में राजा अपने आवास ग ह का विशिष्ट प्रबन्ध करे। इसके लिए उसको वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इंजीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतायें, उसी स्थान पर ऐसे अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसके चारों ओर परकोटा एवं खाई और जिसमें अनेक ड्यौढ़ियाँ हों। या कोशागार-निर्माण के विधानानुसार अन्तःपुर के बीच में राजा अपना महल बनवाये, या ऐसा मकान बनवाये, जिसकी दीवारों तथा गलियों का पता न लगे, ऐसे मकान को मोहनग ह (भुलभलैया) कहते हैं, उसके बीच में राजा अपने रहने का मकान बनवाये, या भूमि को खुदवा कर उसमें घर बनवाये, उस भूमिग ह के दरवाजे पर, समीप ही किसी देवता की मूर्ति स्थापित करवाये, उसमें आने जाने के लिए गुप्त सुरंगें हों, या तो फिर ऐसा महल बनवाये, जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, अथवा पोले खम्बों के भीतर आने-आने तथा चढ़ने-उतरने का रास्ता हो, अथवा आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासग ह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे-ऊपर तथा इधर-उधर हटाया जा सके, अथवा आपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर ऐसे भवन का निर्माण करवाये। यदि राजा को इस बात की आशंका हो कि उसके समान ही दूसरा शत्रु राजा भी नीति-निपुण वास्तुकलाविद् है और वह गुप्तभवन-निर्माणसम्बन्धी सभी रहस्यों को जानता है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे। मनुष्य की हड्डी में बांस के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि का स्पर्श, यदि अथर्ववेद के मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ बाईं ओर से तीन परिक्रमा करते हुए, कराया जाये तो उस अंतःपुर को आग नहीं जला सकती; और न दूसरी अग्नि ही वहाँ जल सकती है। बिजली के गिरने से जले हुए पेड़ की राख लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिला दी जाये और दोनों को धतूरे के पानी के साथ गूँथकर यदि उसका दीवारों पर लेपन किया जाये तब भी वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं कर सकती है। गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन (सैजन) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तों के बंदनवार बाँध देने से अंतःपुर में सर्प, बिच्छु आदि विषैले जंतुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और म ग आदि भी सांपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव (चकोर के समान एक पक्षी) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अंतःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन आवास बनवाये जायें और उन्हीं के साथ छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाये। बाहर की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायें। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए।

उसके बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए। कक्ष्याओं के बीच-बीच में क चुकी तथा अंतःपुररक्षकों की उपस्थिति रहे।

रनिवास के अन्दर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले। अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि ऐसा करने से कभी कभी बड़ा धोखा हो जाता है। कहा जाता है कि पहले कभी भद्रसेन नामक राजा के भाई वीरसेन ने उसकी रानी से मिलकर छिपे में भद्रसेन राजा को मार डाला था। इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारूश को मार डाला था। इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खोलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था। इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करघनी की मणि से सौबीर राजा को, शीशे के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी वेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को, उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था। इसलिए रानियों से मिलते समय, राजा को इस प्रकार की अद ष्ट विपत्तियों में सावधान रहना चाहिए।

राजा को चाहिए कि वह मुंडी, जटी इसी प्रकार के अन्य धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का संपर्क न होने दे। रानियों के सगे-सम्बन्धी भी उन्हें प्रसव या बीमारी की अवस्था के अतिरिक्त न देखने पावें।

अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष तथा पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भाँति रानियों के हितचिंतन में रत रहे। अंतःपुर के दूसरे व द्ध तथा नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उनको राजा की हितकामना में लगाये रखें। अंतःपुर के सभी परिचारक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें। इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे। जो भी वस्तु महल के बाहर आवे तथा महल में जावे उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके सम्बन्ध में सारे विवरण रजिस्टर में लिख लेने चाहिएं। राजमहल के बाहर-भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिये।

अपने निकट सम्बन्धियों से आत्मरक्षा में सावधान राजा को बाह्य व्यक्तियों से अपनी रक्षा के लिए अधोलिखित विशिष्ट प्रबन्ध करने चाहिये :-

प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उसे घेर लें। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, सम्बन्धियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए। वंश-परम्परा के अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किन्तु धन-सम्मान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार प थक् होकर पुनः नियुक्त स्वदेशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक कदापि नियुक्त न करे। राजमहल की भीतरी सेना, राजा और रनिवास की रक्षा करे। माहानसिक को चाहिए कि वह किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन के तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे। जिस अन्न मे ंविष मिला हो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपट, दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट-चट शब्द होता है। विषमिश्रित अन्न के खाने पर पक्षियों की भी म त्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाप मयूर ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है; हाथ के स्पर्श या तोड़ने-मोड़ने से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। विष मिली दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाये तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है; उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, उसकी सुगंध आदि सब जाते

रहते हैं। विषयुक्त रसेदार तरकारी विरंगी-विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है और उसके ऊपर रेखा-सी खिंच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएं तैरने लगती हैं, विष-मिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएं दिखाई देती हैं। आम, अनारआदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है, और पकने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। यदि सूखे हुए पदार्थों में विष मिला हो तो वे छूते ही चूर-चूर होकर विवर्ण हो जाते हैं। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तों उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रुआँ उड़ जाती है। सोने, चांदी, स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनकी आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं।

विष देने वाले का मुँह सूख जाता है, उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, बातचीत करते हुए उसकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, उसको पसीना, कंपकपी तथा जंभाई आने लगती है, बेचैन होकर वह गिर पड़ता है, संदेहवश दूसरों की बातें वह ध्यानपूर्वक सुनने लगता है, बात-बात में वह आवेश करने लगता है; अपने कार्य और अपने स्थान पर उसका मन स्थिर नहीं रह पाता है।

विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें। वैद्य को चाहिए कि औषधालय में स्वयं खाकर परीक्षा की हुई औषधि को वह राजा के सामने लाकर उसमें से कुछ को पकाने-पीसने वाले लोगों और कुछ स्वयं भी खाकर पुनः राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य को भी, परीक्षा करने के उपरांत राजा को देना चाहिए।

दाढ़ी-मूँछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्रालंकरण धारण कराने वाले परिचारकों को चाहिए कि वे स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण किये हाथों को अच्छी तरह धोकर राजमहल के अन्दर रहने वाले कंचुकी आदि से मुहर लगे हुए उस्तरा और वस्त्राभूषण को लेकर राजा की परिचर्या करें। राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े धोना और माला बनाना आदि कार्यों को दासियाँ ही करें, अथवा दासियों की देख-रेख में उस कार्य के जानकार लोग करें। दासियों को चाहिए कि अपनी आँखों से देखकर ही वे राजा को वस्त्रालंकरण पहनावें। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे-उबटन, चन्दन, सुगन्धित चूर्ण तथा पटवास आदि को, दासियां पहले अपनी छाती व बाँह पर लगाकर आजमा लें और तदनंतर राजा पर उसका प्रयोग करें। यही बात दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी जान लेनी चाहिए।

खेल दिखाने वाले नट-नर्तक, हथियार, आग, विष आदि के अतिरिक्त दूसरे खेलों को ही राजा के सामने दर्शित करें। नट-नर्तकों के उपयोग में आने वाली सामग्री, जैसे-वादन, वस्त्र, घोड़े, अलंकरण आदि, राजमहल से ही दी जानी चाहिए।

विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बंधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। राजा जब नौका-विहार करे तो, सुरक्षा के लिए, नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिएं मछुओं द्वारा भलीभाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार सपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे। चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाये।

दर्शनार्थ आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय राजा, अपने विश्वस्त सशस्त्र पुरुष को साथ ले ले। अपने मंत्रि-परिषद् के साथ ही वह सामंत राजा के दूत से मिले। घोड़े, हाथी या रथ पर सवार युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित कवच आदि पहिन कर सैनिक

वेश में निरीक्षण करे। बाहर जाते या बाहर से आते समय, राजा हाथ में दण्ड लिये रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित मार्ग पर चले। ऐसा प्रबंध हो कि रास्ते भर में कहीं भी राजा को शस्त्ररहित पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा, अपंग व्यक्ति न दिखाई दे। पुरुषों की भीड़ में भी वह कदापि न घुसे। किसी देवालय, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में वह शामिल होने जाय तो कम से कम दस सिपाही तथा सेनानायक उसके साथ उपस्थित रहें। विजय की इच्छा रखने वाला राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गये कष्टों से भी वह अपनी रक्षा करे।

८. राजा की दिनचर्या और कर्त्तव्य

राजा के उन्नतिशील होने पर ही उसका सारा भ त्यवर्ग उन्नतिशील होता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भ त्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में प्रमादित भ त्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप पी जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने आपको सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात आठ-आठ घड़ियों में बांट दे। अथवा पुरुष की छाया से भी वह समय का विभाजन कर सकता है।

सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लंबी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इस छाया को 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लम्बी रह जाये, तो वह दिन का दूसरा भाग है। उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनंतर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाय तो वह दिन का तीसरा भाग है। इसको 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। दिन का यह चौथा भाग है। मध्याह्न के उपरांत इसके विपरीत क्रम से चतुरंगुला, पौरुषी, त्रिपौरुषी और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जन-पदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के सम्बन्ध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतंत्र होकर स्वेच्छया विहार तथा विचार करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अंतिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। दिनांत के बाद वह संध्योपासन करे।

इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे , पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अन्तिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे। इसी समय वह वैद्य, प्रधान रसोइयां और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातों पर परामर्श करे। इन सब कार्यों से निव त्त हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे। ऊपर का काल-विभाग सामान्य-द ष्टि से निरूपित किया गया है, वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार स्वेच्छया राजा अपनी कार्य-व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है।

राजा जब दरबार में हो तो प्रत्येक कार्यार्थी को वह बिना रोक-टोक प्रवेश करने की अनुमति दे

दे। क्योंकि जो राजा कठिनाई से प्रजा को दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले कर्मचारी उसके कार्यों को उलट'-पलट कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि राजा के अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखंडियों के केन्द्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानों का और बाल, व द्ध, रुग्ण, दुःखित, अनाथ तथा स्त्रियों से सम्बद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे। इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो उसी का निरीक्षण राजा पहिले करे। राजा को चाहिए कि पहिले वह उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद बीत चुकी है। उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे। क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।

राजा को चाहिए कि पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादनवूर्वक देखे। तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा, अकेला न करके वेदविद् विद्वानों के साथ बैठकर करे। अकेले वह उन लोगों के कोप का कारण न बने। उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु ओर मित्रों में-उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं।

प्रजा के सुख में राजा का सुख ओर प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है। इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार-सम्बन्धी तथा राज्य-सम्बन्धी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे। उद्योग ही अर्थ का मूल है, और इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है। राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों, दोनों का ही नाश हो जाता है; किन्तु जो राजा उद्योगी है, वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख-संपदा का उपभोग करता है।

६. जनपद

जनपद का अर्थ है राष्ट्र, देश अथवा स्वजातीय राज्य। दूसरे शब्दों में जनपद जनयुक्त भूमि है। वस्तुतः जनपद राज्य का आधार रूप है। इसलिए श्रेयस्काम राजा को यह आवश्यक है कि वह अपने जपनद के योगक्षेम की सम्पूर्ण व्यवस्था करे।

कौटिल्य लिखते हैं कि राजा को चाहिए कि दूसरे देश के मनुष्य बुलाकर अथवा अपनी देश की आबादी को बढ़ाकर वह पुराने या नये जनपद को बसाये। प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले, ऐसे गाँव बसायें जायें जिसमें प्रायः शूद्र तथा किसान अधिक हों। एक गाँव दूसरे गाँव से कोस भर या दो कोस की दूरी से अधिक नहीं होना चाहिए, जिससे अवसर आने पर वे एक दूसरे की मदद कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, बेर के व क्ष, खाई तालाब, सेंमल के व क्ष, शमी के व क्ष और बरगद आदि के व क्ष लगाकर उन बसाये हुए गाँवों की सीमा निर्धारित करें।

आठ सौ गाँवों के बीच में एक **स्थानीय**; चार सौ गाँवों के समूह में एक **द्रोणमुख**; दो सौ गाँवों के बीच में एक **कार्वटिक** और दस गाँवों के समूह में **संग्रहण** नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करे। राज्य की सीमा पर अंतपाल नामक दुर्गरक्षक के संरक्षण में एक दुर्ग की भी स्थापना करे। जनपद की सीमा पर अंतपाल की अध्यक्षता में ही द्वारभूत स्थानों का भी निर्माण करे। उनके भीतरी भागों की रक्षा व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि वनचर जातियों के लोग करें।

राजा को चाहिए कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों के लिए भूमिदान करे, किन्तु उनसे कर आदि न ले और उस भूमि को वापिस भी न ले। इसी प्रकार विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों, गोपों, स्थानिकों, अनीकस्थों, वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकरिकों आदि अपने अधिकारियों,

कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए भी राजा भूमि-दान करे। किन्तु इस प्रकार पायी हुई जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दे। खेती के उपयोगी जो भूमि लगान पर जिस भी किसान के नाम दर्ज की जाय, उसके मर जाने के बाद राजा को अधिकार है कि वह उस भूमि को म तक किसान के पुत्र आदि को दे या न दे। किन्तु ऐसी ऊसर या बंजर जमीन जिसको किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया है, राजा को चाहिए कि उसे कभी भी वापिस न ले, ऐसी जमीन पर किसानों को पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते-बोये परती ही डाले रहता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीन कर किसी जरूरतमंद दूसरे किसान को दे दे। ऐसे जरूरतमंद किसान के न मिलने पर गाँव का मुखिया या व्यापारी उस जमीन पर खेती करे। खेती करने की शर्त पर यदि कोई जमीन को ले और उसमें खेती न करे तो उससे उसका हर्जाना वसूल करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानों की सहायता करता रहे और किसानों को भी चाहिए कि फसल कट जाने पर सुविधानुसार धीरे-धीरे वे उधार ली हुई वस्तुओं को राजा को वापिस कर दें। किसानों की स्वास्थ्य-व द्धि और रुग्णता-निवारण के लिए राजा उन्हें परिमित धन देता रहे, जिससे कि वे धन-धान्य की व द्धि करके राजकोष को सम द्ध बनावें। किन्तु इस प्रकार की सहायता से यदि राजकोष को कोई हानि पहुंचे, तो राजा उसको बन्द कर दे; क्योंकि कोष के कम हो जाने पर राजा, नगर और जनपद-निवासियों को सताने लगता है। किसी नये कुल को बसाये जाने के लिए प्रतिज्ञात धन राजा को अवश्य देना चाहिए। अथवा राजकोष की आय के अनुसार स्वास्थ्य-सुधार के लिए राजा धन अवश्य खर्च करता रहे। यदि नगर और जनपद-निवासी राजा के द्वारा स्वास्थ्य सुधार के लिए खर्च किए गए धन को चुका दें, तो पिता के समान राजा उन पर अनुग्रह करे।

राजा को चाहिए कि वह आकर (खान) से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की व द्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों या बड़ी-बड़ी मंडियों की भी व्यवस्था कराये। भूमि की सिंचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बँधवाये, अथवा वर्षा ऋतु के जल को भी बड़े-बड़े जलाशयों में भरवा दे। यदि प्रजाजन ऐसा कार्य करना चाहते हैं तो राजा को चाहिए कि उन्हें जलाशय के लिए भूमि, नहर के लिए रास्ता ओर आवश्यकतानुसार लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करें। देवालय और बाग-बगीचे आदि के लिये भी राजा, प्रजा की भूमिदान आदि से सहायता करे। गाँव के जो मनुष्य अन्य आवश्यक कार्यों के आ जाने पर उस सहकारी उद्योग में सम्मिलित न हो सकें तो वे अपने स्थान पर नौकर तथा बैल भेज कर सहयोग दें। यदि वे ऐसा भी न करें तो अनुपात के अनुसार उनसे उनके हिस्से का सारा खर्च लिया जाये और कार्य समाप्त होने पर न तो उन्हें उसका साझीदार समझा जाय और न ही उसका लाभ उठाने दिया जाये। इस प्रकार के बड़े-बड़े जलाशयों में उत्पन्न होने वाली मछली, प्लव पक्षी और कमलदंड आदि व्यापार-योग्य वस्तुओं पर राजा का ही अधिकार रहे।

यदि नौकर-चाकर, भाई, पुत्र आदि अपने मालिक की आज्ञा का उल्लंघन करें तो राजा उन्हें उचित शिक्षा दे। राजा को चाहिए कि वह बालक, व द्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्तिग्रस्त और अनाथ व्यक्तियों का भरण-पोषण करे। संतानहीन और पुत्रवती अनाथ स्त्रियों तथा उनके बच्चों की भी राजा रक्षा करे। नाबालिग बच्चे की सम्पत्ति पर गाँव के व द्ध पुरुषों का अधिकार रहे। उसको वे बढ़ाते रहें और बालिग हो जाने पर उसकी सम्पत्ति को उसे वापिस कर दें। इस प्रकार देव-सम्पत्ति पर भी ग्राम-व द्धों का ही अधिकार हो, जो कि उसकी व द्धि में तत्पर रहें। जब कोई पुरुष समर्थ होने पर भी, अपने लड़के-बच्चों,, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिक भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन आदि का भरण-पोषण न करे तो राजा उसे बारह पणों का दंड दे। किन्तु ये लड़के, स्त्री आदि यदि किसी कारण से पतित हो गए हों तो सम्बन्धी उनका भरण पोषण करने के लिए बाध्य नहीं है। यह निषेध माता के सम्बन्ध में नहीं, माता यदि पतिता भी हो तो उसका भरण-पोषण और उसकी

रक्षा करनी चाहिए। पुत्र तथा स्त्री के जीवन-निर्वाह का उचित प्रबन्ध किये बिना ही यदि कोई पुरुष, संन्यास ग्रहण कर ले तो राजा को उसे प्रथम साहस दंड देना चाहिए। यह दंड उस पुरुष को भी दिया जाना चाहिए जो अपनी स्त्री को संन्यासिनी हो जाने को प्रेरित करे।

जब मनुष्य के मैथुन-सम्बन्धी कामविकार शांत हो जाएं तब उसे धर्माधिकारी पुरुषों की अनुमति लेकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए, इस राज्य-नियम का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कारागार में बंद कर दिया जाये। वानप्रस्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा संन्यासी जनपद में न रहना चाहिए, इसी प्रकार राजभक्त जनसंघ के अतिरिक्त तथा स्थानीय सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त कोई दूसरी संस्था संघ राज्य में न पनपने पावे, जो द्रोह या फूट फैलाने वाला सिद्ध हो।

गाँवों में कोई भी नाट्यग ह, विहार तथा क्रीडा-शालाएँ नहीं होनी चाहिए। नट, नर्तक, गायक, वादक, भाण और कुशलीव आदि गाँवों में अपना खेल दिखा कर कृषि आदि कार्यों में विघ्न उत्पन्न न करें। क्योंकि गाँवों में नाट्यशालाएँ आदि न होने से ग्रामवासी अपने-अपने कृषिकर्म में संलग्न रहते हैं, जिससे कि राजकोष में अभिव द्धि होती है और सारा देश धन-धान्य से सम द्ध होता है।

राजा को चाहिए कि वह शत्रुओं, जंगली लोगों, व्याधियों एवं दुर्भिक्षों से अपने देश को बचावे। वह उन क्रीडाओं का भी बहिष्कार कराये जो धन का अपव्यय और विलासप्रियता को बढ़ाने वाली हों। राजा को चाहिए कि दंड, विष्टि, कर आदि की बाधा से कृषि की रक्षा करे। इसी प्रकार चोर, हिंसक जंतु, विष-प्रयोग तथा अन्य कष्टों से भी किसानों के पशुओं की रक्षा करे। वल्लभ, कार्मिक, चोर, अंतपाल और व्याघ्र आदि, राजपुरुषों लुटेरों एवं हिंसक जंतुओं से ग्रस्त व्यापार-मार्गों को भी राजा परिशोधन करे। अर्थात् अपने देश से इन सब आपत्तियों को दूर करे।

इस प्रकार राजा प्रथम तो लकड़ी के जंगल, हाथियों के जंगल, सेतुबन्ध तथा खानों की रक्षा करे और तदुपरान्त आवश्यकतानुसार नये जंगल, सेतुबंध आदि का निर्माण करवाये। ऊसर भूमि में पशुओं के लिए चरागाहें बनवानी चाहिए। जिस भूमि को व क्ष-लता एवं म ग आदि के लिए छोड़ दिया गया हो, ऐसे दो कोस तक फैले हुए जंगल को वेदाध्यायी ब्राह्मणों को वेदाध्ययन एवं सोमयाग के लिए दे देना चाहिए; इसी प्रकार के तपोवनों को तपस्वियों के लिए दे देना चाहिए। ऐसे ही दो कोस परिमाण के म गवन को राजा अपने विहार के लिए तैयार कराये। उस विहारवन के दो दरवाजे हों, उसके चारों ओ खुदी हुई खाई हो, उसमें स्वादिष्ट फल, लता, गुल्म एवं व क्ष हों, वह काँटेदार पेड़ों से रहित हो, उसमें कम गहरे सरोवर हों, मनुष्यों से परिचित म ग हों, म गया के लिए वहाँ ऐसे व्याघ्र, हाथी, हथिनी तथा उनके बच्चे रखे गये हों, जिनके नख एवं दाँत न हों उसके ही समीप एक दूसरा म गवन ऐसा तैयार कराया जाए, जिसमें देश-देशान्तरों के जानवर लाकर रखे गये हों।

चंदन, पलाश, अशोक आदि लकड़ी के लिए अलग-अलग वन लगाये जायें। लकड़ी के जंगलों की सम्पूर्ण व्यवस्था, जंगलों के अध्यक्ष तथा जंगलों पर जीवन बिताने वाले पुरुष करें। जनपद की सीमा पर जंगल के अध्यक्षों के संरक्षण में एक हस्तिवन भी स्थापित करना चाहिए। हस्तिवन के अध्यक्षों को आवश्यक है कि वह स्वयं तथा अपने सहयोगी वनपालों के सहयोग से पर्वत, नदी, जलाशय तथा किसी जलमय स्थान से होकर हस्तिवनों के अन्दर जाने वाले मार्गों की भली-भाँति देख-रेख रखे। हाथियों को मारने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्राणदण्ड की सजा मिलनी चाहिए। म तक हाथी के दाँतों को उखाड़कर जो स्वयं ही राजपुरुषों के सुपुर्द कर दे, उसे सवा चार पण पुरस्कार स्वरूप दिया जाना चाहिए।

१०. दुर्ग

राजा के लिए आवश्यक है कि जनपद की सीमाओं की चारों दिशाओं में युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के होते हैं-१. औदक २. पार्वत ३. धान्वन और ४. वनदुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आव त स्थल प्रदेश **औदकदुर्ग** कहलाता है। बड़ी-बडी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग **पार्वतदुर्ग** कहलाता है। जल

तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग **धान्वनदुर्ग** है। इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिव त दुर्ग **वनदुर्ग** कहलाता है। इनमें औदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है।

राजा को चाहिए कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्रों पर बड़े-बड़े स्थानीय दुर्गों का निर्माण करवाये। वास्तुविद्या के विद्वान् जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बतायें, वहीं पर नगर बसाना चाहिए, अथवा किसी नदी के संगम पर, बड़े-बड़े तालाबों के किनारे, या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं। दुर्ग का निर्माण संबंधित भूमि के अनुसार गोल, लम्बा अथवा चौकोर, जैसा भी उचित हो, होना चाहिए। उसके चारों ओर छोटी-छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे। उसके इधर-उधर की भूमि में पैदा होने वाली बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए। दुर्ग में आने-जाने के लिए जलमार्ग और स्थल-मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए। दुर्ग के चारों ओर एक-एक दंड की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिएं। वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह और दस दंड चौड़ी होनी चाहिए। अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है। उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बँधी हो। उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईंटों से मजबूत बनी हुई हों। कहीं-कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हों कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके। उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिये। कमल के फूल तथा घड़ियाल आदि जलचर भी उनमें रहें खाई से चार दंड की दूरी पर छह दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नींव वाला एक बड़ा वप्र (प्राकार या फसील) बनवाया जाये। इसके बनवाने में वही मिट्टी काम में लाई जाये, जो खाई से खोदकर बाहर फैंकी गई है। प्राकार तीन प्रकार का होना चाहिए-

१. ऊर्ध्वचय, २. म चप ष्ठ और ३. कुम्भकुक्षिक, अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भाकार। इन प्राकारों को बनवाते समय, इनकी मिट्टी को हाथी और बैलों से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाये। इनके चारों ओर काँटेदार विषैली झाड़ियाँ लगी होनी चाहिएं। प्राकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाये तो उसे उन्हीं गड्ढों में भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से, प्राकार के जो छिद्र रह गए हों, उन्हें भरवा देना चाहिए। वप्र बन जाने पर उसके ऊपर दीवार बनवानी चाहिए। वह दीवार चौड़ाई से दुगूनी ऊँची हो, कम-से-कम बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अठारह सम संख्याओं में, अथवा पन्द्रह, सत्रह आदि विषम संख्याओं में, अधिक-से-अधिक चौबीस हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड़ व क्ष की जड़ के समान, म दंग बाजे के समान, बंदर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईंट-पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े-बड़े शिलाखंडों से प्राकार का निर्माण करवाना चाहिये। लकड़ी का प्राकार कभी भी नहीं बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है।

प्राकार के आगे एक ऐसी अट्टालिका बनवाये जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। ऊँचाई के अनुपात से उस पर सीढ़ियाँ भी बनवानी चाहियें। ये अट्टालिकायें एक-दूसरी से तीस दंड की दूरी पर हों। दो अट्टालिकाओं के बीच, चौड़ाई से डेढ गुना लम्बा **प्रतोली** नाम का एक घर बनवाना चाहिए, जिसकी दूसरी मंजिल में जनानखाना रहे। अट्टालिका और प्रतोली के बीच में इन्द्रकोष नामक एक विशिष्ट स्थान बनवाया जाये। वह इतना ही बड़ा हो जिसमें तीन धनुर्धारी संतरी आसानी से बैठ सकें। उसके आगे छिद्रयुक्त एक ऐसा तख्ता लगा रहना चाहिए, जिससे धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सके और भीतर से ही निशाना बाँध सकें, किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें। प्राकार के साथ ही एक ऐसा देवपथ बनवाना चाहिए जो अट्टालक, प्रतोली तथा

इन्द्रकोष के बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पास आठ हाथ चौड़ा हो। इसी प्रकार एक दंड या दो दंड की दूरी पर चार्या अर्थात् प्राकार आदि पर चढ़ने उतरने का स्थान बनवाना चाहिये। प्राकार के ऊपर ही जिस स्थान को कोई न देख सके, **प्रधावितिका** तथा उसके पास ही **निष्कुहद्वार** भी बनवाने चाहिए। बाहर से छोड़े गये बाण बादि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़ को **प्रधावितिका** कहते हैं। उसमें निशाना मारने के लिए जो छिद्र बनाया जाता है, उसको **निष्कुहद्वार** कहा जाता है। प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओ के घुटनों को तोड़ देने वाले खूँटे, त्रिशूल, अँधेरे गड्ढ़े, लौह-कंटक के ढेर, साँप के काँटे, ताड़पत्रों के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोकवाले नुकीले काँटे, कुत्ते की दाढ़ के समान लोहे की तीक्ष्ण कीलें, बड़े-बड़े लट्ठे, कीचड़ से भरे हुए गढ़े, आग और जहरीले पानी के गढ़े आदि बनाकर दुर्ग के मार्ग को पाट देना चाहिये।

जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्राकार के दोनों भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाया जाये। तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भे खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाये। द्वार का निर्माण पाँच दंड परिधि से करना चाहिए, और तदनन्तर एक-एक दंड बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दंड तक उसकी परिधि होनी चाहिए; अथवा कुछ विद्वानों के मन से दरवाजा दो दंड का हो या नीचे के आधार के परिणाम से छठा तथा आठवां हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाये। दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से लेकर अठारह हाथ तक होनी चाहिए। खम्भों की मोटाई उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होनी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग भूमि में गाड़ दिया जावे और चौथाई भाग खम्भे के ऊपर चूल के लिए छोड़ दिया जावे।

प्रतोलिका के तीन तल्लों में से पहिले तल्ले के पाँच हिस्से किए जायें। उनमें से बीच के हिस्से में बावड़ी बनवाई जाये, उसके दायें बायें शाला और शाला के छोरों पर सीमाग ह बनवाये जायें। शाला के किनारों पर भी आमने-सामने छोटे-छोटे दो चबूतरे बनवायें जायें जिन पर बुर्जे भी हों। शाला और सीमाग ह के बीच में आणि (एक छोटा दरवाजा) होना चाहिए। मकान की दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहिली मंजिल की ऊँचाई से आधी होनी चाहिए, उसकी छत के नीचे सहारे के लिए छोटे-छोटे खंभे भी होने चाहिए। मकान की तीसरी मंजिल को **उत्तमागार** कहते हैं, उसकी ऊँचाई डेढ़ दंड होनी चाहिए। उत्तमागार परिमाण द्वारा का त तीयांश होना चाहिए। उसके पार्श्व भाग पक्की ईंटों से मजबूत होने चाहिएं। उसकी बाईं ओर घुमावदार सीढियाँ और दाहिनी और गुप्त सीढ़ियां होनी चाहिएं।

दुर्ग के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पाँच तख्तों की पर्त के बने हों। किवाड़ों के पीछे दो-दो अर्गलाएं होनी चाहिएं। किवाड़ों को बन्द करने के लिए एक अरत्नी परिमाण (एक हाथ) की इन्द्रकील (चटखनी) होनी चाहिए। फाटक के बीच में पाँच हाथ का एक छोटा सा दरवाजा जुड़ा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें। द्वार की ऊँचाई का आधा, हाथी के नाखून के आकार-प्रकार का, मजबूत लकड़ी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सके। जहाँ जल का अभाव हो वहाँ मिट्टी का ही मार्ग बनवाना चाहिए। प्राकार की ऊँचाई जितना किन्तु उसके त तीयांश जितना, गोह के मुँह के आकार का एक **नगरद्वार** भी बनवाना चाहिए। प्राकार के बीच में एक बावड़ी बनाकर उससे संबद्ध एक द्वार भी बनवाये। उस द्वार को **पुष्करिणी** कहते हैं। जिस दरवाजे के आसपास चार शालाएं बनाई जायें और उस रदवाजे में पुष्करिणी द्वार से ड्योढ़ा दरवाजा लगा हो। उसका नाम **कुमारीपुरद्वार** है। जो दरवाजा दुमंजिला हो एवं जिस पर कंगूरे आदि न लगे हों, उसे **मुण्डकद्वार** कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे, कुछ परिवर्तन करके दरवाजे को बनवाये। दुर्ग के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौड़ी बनवायें, जिनके द्वारा हर प्रकार का सामान अन्दर और बाहर ले जाया-लाया जा सके।

पत्थर, कुदाली, कुल्हाड़ी, बाण, हाथियों का सामान, गदा, मुद्गर, लाठी, चक्र, मशीनें, तोपों, लोहारों के औजार, लोहे का बना सामान, नुकीले भाले, बांस, ऊँट की गर्दन के आकार वाले हथियार, अग्निबाण आदि सामान नहर के द्वारा लाया और ले जाया जाता है।

११. नगर

आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में नगर निर्माण के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। उनका मानना है कि राजा को विशेषज्ञ नगरकारों के मार्गदर्शन में सभी प्रकार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नगर का निर्माण कराना चाहिये।

अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के चतुर्थ अध्याय में कौटिल्य लिखते हैं कि वास्तुविद्याविशेषज्ञों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर-निर्माण के लिए चुना जाये उसमें पूरब से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन-तीन राजमार्ग हों। इन छह राजमार्गों में नगर-निर्माण या ग ह-निर्माण की भूमि का विभाग करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वार हों, जिसमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने हों। नगर में चार दण्ड (२४ फीट) चौड़ी रथ्याएँ (छोटी गलियाँ) हों। राजमार्ग, द्रोणमुख, स्थानीय राष्ट्र, चरागाह, संयानीय (व्यापारी मंडियां), सैनिक छावनियाँ, श्मशान और गाँवों की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड (१६ गज) होनी चाहिए। जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई चार दंड होनी चाहिये। हाथियों के आने जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला रास्ता दो दंड चौड़ा होना चाहिये। रथों के लिए पाँच अरत्नि (ढाई गज) और पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौड़ा होना चाहिए। मनुष्य तथा भेड़-बगरी आदि छोटे पशुओं के लिए एक गज चौड़ा रास्ता होना चाहिये। नगर के सुद ढ़ भूमिभाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिये; साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णों की आजीविका के लिए उपयोगी हो। ग ह-भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में, निशांत-प्रणिधि प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार, अंतःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसका द्वार पूरब या पश्चिम की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय ओर मंत्रियों के भवन बनवाये जायें। अन्तःपुर के पूर्व-दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर), हस्तिशाला और कोष्ठागार हों। उसके आगे पूरब दिशा में द्रव, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवासस्थान होने चाहिए। दक्षिण-पूरब में भंडागार, राजकीय पदार्थों के आय-व्यय का स्थान और सोने-चाँदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम दिशा में शस्त्रागार तथा सोने-चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिये। उससे आगे, दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवासस्थान होने चाहिये। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति-स्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाया जाये। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों को रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे, पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, हथियार और उनके स्थान बनवाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिये। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने-खरीदने का बाजार औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोषग ह और गाय, बैल तथा घोड़ों के स्थान बनवाने चाहिएं। उसके आगे, उत्तर दिशा की ओर नगरदेवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाये जायें। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाये।

दुर्गा, विष्णु, जयंत, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा, इन देवताओं की स्थापना नगर के बीच में करनी चाहिये। कोष्ठागार आदि में भी कुलदेवता या नगरदेवता की स्थापना करनी चाहिये। प्रत्येक दिशा में मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना की जाये। उत्तर का

देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) होता है। नगर की परिखा से बाहर दो-सौ गज की दूरी पर चैत्य, पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबंध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जाये। नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में छोटी जाति वाले लोगों का श्मशान होना चाहिए। जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस-दण्ड दिया जाये। कापालिकों और चाण्डालों का निवास स्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाये। नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय तथा उनके योग्य भूमि की गु जायश देखकर ही, बसाया जाये। उन खेतों में फूल, फल, साग-सब्जी, कमल आदि की क्यारियाँ बनाई जायें। राजा तथा राजपुरुषों की आज्ञा प्राप्त कर उनमें अनाज तथा विक्रय योग्य वस्तुएँ पैदा की जायें। दशकुलीबाड़ (बीस हलों से जोती जाने वाली भूमि) के बीज सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए। घी, तेल,इत्र, क्षार, नमक, दवा, सूखे साक, भूसा, सूखा मांस, घास, लकड़ी, लोहा, चमड़ा, कोयला, ताँत, विष, सींग, बाँस, छाल, चन्दन या देवदार की लकड़ी, हथियार, कवच और पत्थर, इन सभी वस्तुओं को दुर्ग के अन्दर इतनी तादाद में जमा होना चाहिए कि कई वर्षो तक उपयोग में लाने के लिए पर्याप्त हों। उनमें पुरानी वस्तु की जगह नई वस्तु रख देनी चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चारों प्रकार की सेनाओं को अनेक सुयोग्य सेनाध यक्षों के संरक्षण में रखा जाना चाहिये। क्योंकि अनेक सेनाध्यक्षों की नियुक्ति से पहला लाभ तो यह है कि पारस्परिक भय के कारण वे शत्रु में जाकर नहीं मिल पाते और दूसरा लाभ यह है कि एक अध्यक्ष के फूट जाने पर दूसरा अध्यक्ष कार्य संभाल सकता है। इन नगरदुर्गों के निर्माण के नियमों के अनुसार ही जनपद की सीमा के दुर्गों और उनके प्रबन्ध का विधान समझ लेना चाहिये। राजा को चाहिए कि वह नगर में ऐसे लोगों को न बसने दें, जिनके कारण राष्ट्र तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय स्तर गिरता हो। यदि इनको बसाना ही हो तो सीमा-प्रान्त में बसाया जाये और उनसे राज्यकर वसूल किया जाये।

१२. कोष

कोष राज्य का आवश्यक अंग है। अर्थशास्त्रकार आचार्य कौटिल्य का कहना है कि सारे कार्य कोष पर निर्भर हैं। इसलिए राजा को चाहिये कि सबसे पहिले कोष पर ध्यान दे। राष्ट्र की सम्पत्ति को बढाना, राष्ट्र के चरित्र पर ध्यान रखना, चोरों पर निगरानी रखना, राजकीय अधिकारियों को रिश्वत लेने से रोकना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करना, जल-स्थल में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक व्यापार-योग्य वस्तुओं को बढ़ाना, अग्नि आदि के भय से राज्य की रक्षा करना, ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना और हिरण्य आदि की भेंट लेना, ये सब कोषव द्धि के उपाय हैं। राजकोष की व द्धि के लिए राजा समाहर्ता नाम का अधिकारी नियुक्त करे। समाहर्त्ता (कलक्टर जनरल) को चाहिए कि वह १. दुर्ग, २. राष्ट्र, ३. खनि, ४. सेतु, ५. वन, ६. व्रज और ७, व्यापार सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे।

दुर्ग : शुल्क, दण्ड, पौतव, नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (पटवारी, कानूनगो, अमीन), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तेल-घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तुकार, बढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट-नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन **दुर्ग** कहलाता है। **राष्ट्र** : सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपालस्तर, नाव का कर, पट्टन, विंवीत, वर्तनी, रज्जू और चोर रज्जू (चोरों को पकड़ने के लिये ग्रामवासियों से मिला धन) आदि आय के साधन **राष्ट्र** नाम से कहे जाते हैं। **खनि** : सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ **खनि** कहे जाते हैं। **सेतु** : फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेत इन सबको **सेतु** कहा जाता है। **वन** : हरिण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को **वन** कहा जाता है। **व्रज** : गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर और जानवर **व्रज** नाम से कहे जाते हैं, क्योंकि वे अपने गोष्ठ में रहते हैं। **वणिक्पथ** : स्थलमार्ग और जलमार्ग, व्यापार के इन दो मार्गों को **वणिक्पथ** कहा जाता है।

ये सभी आमदनी के साधन हैं। इनके अतिरिक्त मूल (अनाज, साग, सब्जी आदि को बेचकर एकत्र किया गया धन), भाग (पैदावार का षष्ठांश), ब्याजी, परिघ, क्ल प्त, रूपिक, अत्यय आदि भी आमदनी के साधन हैं।

देवपूजा, पित पूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्य, अन्तःपुर, रसोईघर, दूत प्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यग्रह, कुप्यग ह का व्यय कर्मान्त, विष्टि, पैदल, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सेना-संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरों की रक्षा के लिए किया गया व्यय और स्थान, लकड़ी, घास आदि के जंगलों की सुरक्षा के लिए किया गया व्यय, ये सभी व्यय के स्थान कहलाते हैं।

राजा के राज्याभिषेक के बाद, उसके प्रत्येक कार्य में 'व्युष्ट' नाम से कहे जाने वाले वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चारों बातों का उल्लेख होना चाहिये, राजवर्ष के तीन विभाग हैं : १. वर्षा, २. हेमन्त और ३. ग्रीष्म, इन तीनों विभागों में प्रत्येक के आठ-आठ पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष पन्द्रह दिन का होता है, प्रत्येक ऋतु के तीसरे तथा सातवें पक्ष में एक-एक दिन कम माना जाये, शेष छहों पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह दिन के माने जायें, इसके अतिरिक्त एक अधिमास भी माना जाये, यही काल-विभाजन राजकीय कार्यों में प्रयुक्त किया जाना चाहिये। समाहर्त्ता को चाहिए कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करे। करणीय ६ प्रकार का होता है १. संस्थान २. प्रचार ३. शरीरावस्थान ४. आदान ५. सर्वसमुदयपिण्ड और ६. संजात। सिद्ध भी ६ प्रकार का होता है १. कोशार्पित २. राजहार ३. पुरव्यय ४. परसंवत्सरानुव त्त ५. शासनमुक्त और ६. मुखाज्ञप्त। शेष के भी ६ भेद हैं १. सिद्धप्रकर्मयोग २. दण्डशेष ३. बलात्कृत प्रतिस्तब्ध ४. अवस ष्ट ५. असार और ६. अल्पसार।

आय तीन प्रकार की है १. वर्तमान, २. पर्युषित और ३. अन्यजात। प्रतिदिन की आमदनी को **'वर्तमान'** आय कहा जाता है, पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन **'पर्युषित'** आय है, भूले हुए धन की स्म ति, अपराध-स्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, काजी-हाउस से प्राप्त धन, भेटस्परूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन **'अन्यजात'** आय कहलाती है। इसके अतिरिक्त सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन और इमारतों के बनवाने से बचा हुआ धन **'व्ययप्रत्याय'** कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है। बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बाट-तराजू आदि की बेईमानी से तथा खरीदारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

व्यय चार प्रकार का होता है : १. नित्य २. नित्योत्पादिक ३. लाभ और ४. लाभोत्पादिक। प्रतिदिन के नियमित व्यय को **'नित्य'** व्यय कहते हैं। पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय किया गया धन **'लाभ'** कहलाता है। नित्य तथा लाभ नामक व्यय से अधिक खर्च हो जाने वाले धन को क्रमशः **'नित्योत्पादिक'** तथा **'लाभोत्पादिक'** कहा जाता है। सब तरह के आय-व्यय का भली-भाँति हिसाब करके भी बचत रूप में निकलने वाला धन **'नीवी'** कहलाता है, जो दो प्रकार का होता है १. प्राप्त और २. अनुव त्त। **प्राप्त** वह, जो खजाने में जमा हो और **अनुव त्त** वह, जो खजाने में जमा किया जाने वाला हो। समाहर्त्ता को चाहिए कि वह ऊपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करे और आय-व्यय में बचत-हानि का लेखा-जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहिले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये।

राजा के लिये यह आवश्यक है कि समाहर्ता द्वारा संग्रहीत राजकोष की सुरक्षा के लिए गुणवान् सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष को नियुक्त करे। सन्निधाता को चाहिए कि वह कोषग ह, द श्यग ह, कोष्ठागार, पण्यग ह, शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाये। सीलरहित स्थान में बावड़ी के

समान एक चौरस गड्ढा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों से बने हुए पिंजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों; उसमें तीन मंजिलें हों; तीनों मंजिलों में बढ़िया दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हों; ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने के लिए उसमें लिफ्ट लगा हो, उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हों, इस प्रकार का एक भूमिग ह (अण्डरग्राउण्ड) बनवाना चाहिए। उस भूमिग ह के ऊपर एक कोषग ह बनवाना चाहिए, उस पर भीतर-बाहर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएं हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनाया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्यभाग में प्राणदण्ड पाये पुरुषों के द्वारा, आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुवनिधि (गुप्त खजाना) बनवाना चाहिए। पक्की ईंटों से चुना हुआ, चार भवनों से परिव त, एक दरवाजे वाला अनेक कक्षों वाला एवं मंजिलों से युक्त और चारों ओर खुले हुए खम्भों वाले चबूतरे से घिरा हुआ पण्यग ह (विक्रेय वस्तुओं को रखने का घर) तथा कोष्ठागार (कोठार) बनवाना चाहिए। अनेक लम्बे दालानों से युक्त, चारों ओर अनेक कोठरियों से घिरी हुई दीवारों वाला, भीतर की ओर कुप्यग ह बनवाना चाहिए। उसी में एक तहखाना बनवाकर शस्त्रागार बनवाया जाये। धर्मस्थ (न्यायाधीश) और महायाम (समाहर्त्ता आदि) से सजा पाये हुये लोगों को काराग ह में रखना चाहिये। काराग ह में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहिए। उसके बहिर्मार्ग तथा चारों ओर की अच्छी तरह रक्षा होनी चाहिए। उक्त सभी कोशग ह आदि स्थानों में शाला, परिखा और कूओं की तरह स्नानागार भी बनवाने चाहिए। अग्नि और विष से भी उनकी रक्षा की जानी चाहिए। विष की रक्षा के लिए बिल्ली और नेवला आदि को पालना चाहिएं। इन स्थानों की भलीभाँति रक्षा की जानी चाहिए। उनके अधिष्ठित देवताओं जैसे, कोषग ह का कुबेर, पर्ण्यग ह तथा कोष्ठागार की श्री, कुप्यग ह का विश्वकर्मा, शस्त्रागार का यम और बन्दीग ह का वरुण आदि की पूजा करवानी चाहिए। वर्षाजल को मापने के लिए कोष्ठागार में एक ऐसा कुण्ड बनवाया जाना चाहिए जिसके मुँह का घेरा एक अरत्नि (चौबीस अंगुल) हो।

कोष्ठागाराध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु के विशेषज्ञों की सहायता से नये ओर पुराने का भेद समझकर रत्न, चन्दन, वस्त्र, लकड़ी, चमड़ा, बाँस आदि उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करे। यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न दे और छल से असली रत्न का अपहरण कर ले जाये तो अपहरण करने वाले और कराने वाले,दोनों को उत्तम साहसदंड दिया जाये। चन्दन आदि वस्तुओं में कपट करने पर मध्यम साहसदंड दिया जाना चाहिए। वस्त्र, लकड़ी और चमड़ा जैसे पदार्थां में छल करने वाले व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तु ले ली जाये या उसका मूल्य ले लिया जाये और उतना ही उससे दण्डरूप में वसूल कर लिया जाये। सिक्कों के पारखी पुरुषों द्वारा स्वर्णमुद्रा का संग्रह किया जाना चाहिए। सिक्कों में से जो नकली मालूम हो उसको तत्काल ही काट दिया जाये, जिससे उसको व्यवहार में न लाया जा सके। नकली सिक्कों को लाने वाले पुरुष भी प्रथम साहसदण्ड के अपराधी हैं। धान्याधिकारी पुरुष को चाहिए कि वह शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न ले। यदि वह ऐसा न करे तों उससे दुगुना दण्ड वसूल किया जाये।

इसी प्रकार पण्य, कुप्य और आयुध के सम्बन्ध में भी नियम समझने चाहिए। प्रत्येक अधिकारी पुरुष को, उसके सहकारियों को तथा उन दोनों के बीच काम करने वाले पुरुषों को, पहली बार किसी वस्तु का अपहरण करने पर क्रमशः एक पण, दो पण और चार पण का दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि वे फिर भी अपहरण करें तो क्रमानुसार उन्हें प्रथम साहस, मध्यम साहस और उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए। इस पर भी वे न मानें तो उन्हें प्राणदण्ड दिया जाये।

कोषाध्यक्ष यदि सुरंग आदि उपाय से कोष का अपहरण करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाये। इसमें अधीनस्थ लोगों को उसका आधा दण्ड दिया जाये। यदि कोष का अपहरण करने में अधीनस्थ लोगों का हाथ न हो तो उन्हें दण्ड न दिया जाये। केवल उनकी निंदा तथा उपहास कर उनको दुत्कारा जाये। यदि चोर सेंध लगाकर चोरी करे तो चित्रवध का दण्ड दिया जाये। कोषाध्यक्ष को चाहिए

कि विश्वासी पुरुषों के सहयोग से ही वह धन-संग्रह आदि का कार्य करे। कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह जनपद तथा नगर से होने वाली आय को अच्छी तरह से जाने। इस सम्बन्ध में उसे इतनी जानकारी होनी चाहिए कि यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा-जोखा पूछा जाये तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके। बचे हुए धन को वह सदा कोष में दिखाता रहे।

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजकोष के नष्ट होने के कारणों का उल्लेख भी किया है। बुद्धिमान राजा के लिए यह आवश्यक है कि उन कारणों को जानकर कोष को नष्ट होने से बचाये। आचार्य कौटिल्य के अनुसार - कोषक्षय के आठ कारण हैं : १. प्रतिबन्ध, २. प्रयोग, ३. व्यवहार, ४. अवस्तार, ५. परिहापण, ६. उपभोग, ७. परिवर्तन और ८. अपहार। राजकर को वसूल करना, वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना, और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का **प्रतिबंध** है। जो अध्यक्ष इन माध्यमों से कोष का क्षय करे, उस पर क्षत राशि से दशगुना जुर्माना करना चाहिए। कोषधन का स्वयं ही लेन-देन करके व द्धि का यत्न करना **प्रयोग** कहलाता है। ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुर्माना करना चाहिये। कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यापार करना **व्यवहार** कहलाता है। ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए। राजकर वसूल करने वाला अधिकारी, नियत समय से कर-वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा से, मियाद बीत जाने का भय देकर प्रजा को तंग करके जो धन एकत्र करता है उसे **अवस्तार** कहते हैं। ऐसा करने पर उसे नुकसान की राशि से पाँच गुना दण्ड देना चाहिए। जो अध्यक्ष अपने कुप्रबंध के कारण कर की आय को कम कर देता है और व्यय की राशि को बढ़ा देता है, उस क्षय को **परिहापण** कहते हैं। ऐसा करने पर अध्यक्ष को क्षय से चौगुना दण्ड दिया जाये। राजकोष के द्रव्य को स्वयं भोग करना तथा दूसरों को भोग कराना **'उपभोग'** क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष को, यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो प्राणदण्ड, सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थों का उपभोग करता है तो, उससे द्रव्य वापिस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिये। राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों से बदल लेना **परिवर्तन** कहलाता है। इस कार्य को करने वाले अध्यक्ष के लिए भी उपभोग-क्षय के समान ही दण्ड दिया जाये। प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढ़ाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी के सम्बन्ध में मुकर जाना, यह तीन प्रकार का **अपहार** है। अपहार के द्वारा कोषक्षय करने वाले अध्यक्ष को हानि से बारहगुना दण्डित करना चाहिये।

अध्यक्ष, चालीस प्रकार के उपायों से राजद्रव्य का अपहरण कर सकते हैं। पहले फसल में प्राप्त हुए द्रव्य को दूसरी फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना, दूसरी फसल की आदमनी का कुछ हिस्सा पहली फसल के रजिस्टर में चढ़ा देना, राजकर को रिश्वत लेकर छोड़ देना, राजकर से मुक्त देवालय, ब्राह्मण आदि से कर वसूल करना, कर देने पर भी उसको रजिस्टर में न चढ़ाना, कर न देने पर भी उसको रजिस्टर में भर देना, कम प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर पूरा दर्ज कर देना पूरे प्राप्त हुए धन को अधूरा लिख देना, जो द्रव्य प्राप्त हुआ है उसकी जगह दूसरा ही द्रव्य भर देना, एक पुरुष से प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर, दूसरे के नाम दर्ज कर देना, योग्य वस्तु को न देना, जो वस्तु देने योग्य नहीं है, उसका दे देना, समय पर किसी वस्तु को न देना, रिश्वत लेकर असमय में ही उस वस्तु को दे देना, थोड़ा देकर भी बहुत लिख देना, बहुत देकर भी थोड़ा लिख देना, अभीष्ट वस्तु की जगह दूसरी ही वस्तु दे देना, जिस व्यक्ति को देने के लिए कहा गया है, उसके बदलें में किसी दूसरे को ही दे देना, राजधन को वसूल करके उसे खजाने में जमा न करना, राजकर को वसूल न करके, रिश्वत लेकर, उसे जमा-रजिस्टर में चढ़ा देना, राजाज्ञा से वस्त्रादि क्रय करके तत्काल ही उनका मूल्य चुकता न करके एकांत में कुछ रकम देना, अधिक मूल्य से क्रीत वस्तुओं की रकम कम करके रजिस्टर में लिखना, सामूहिक कर वसूली को अलग-अलग व्यक्ति से लेना, अलग-अलग व्यक्ति से लिये जाने वाले कर को सामूहिक रूप में वसूल करना, बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य की वस्तु से बदल देना, अल्पमूल्य की वस्तु को बहुमूल्य वस्तु से बदलना, रिश्वत

लेकर बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना, वस्तुओं का भाव बढ़ा देना, दो दिन का वेतन दिया हो तो चार दिन बढ़ाकर लिख देना, चार दिन का वेतन दिया हो तो दो दिन घटाकर लिख देना, मलमासरहित संवत्सर को मलमास युक्त बना देना, महीने के दिन घटा-बढ़ाकर लिख देना, नौकरों की संख्या बढ़ाकर लिख देना, एक जरिये से हुई आमदनी को दूसरे जरिये से दर्ज कर देना, ब्राह्मणादि को स्वीकृत धन में से कुछ स्वयं ले लेना, कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल करना, सामूहिक वसूली में से न्यूनाधिक्य रूप में धन लेना, वर्णविषमता दिखाकर धन का अपहरण कर लेना, जहाँ मूल्य निर्धारित न हो, वहाँ दाम बढ़ाकर लाभ उठाना, तोल में कमी-बेशी करके उपार्जन करना, नाप में विषमता पैदा करके धन कमाना और घ त से भरे हुए सौ बड़े घड़ों की जगह सौ छोटे घड़े दे देना, राजकीय धन को अपहरण करने के ये चालीस तरीके हैं।

यदि किसी अध्यक्ष के सम्बन्ध में राजा को यह सन्देह हो जाये कि उसने अनुचित उपायों से राजकीय धन का अपहरण किया है तो राजा को चाहिये कि उस विभाग के प्रधान निरीक्षक, कोषाध्यक्ष, लेखक, कर लेने वाले और कर दिलाने वाले सलाहकारों को अलग-अलग बुलाकर यह पूछे कि उनके अध्यक्ष ने गबन किया है या नहीं। यदि उनमें से कोई झूठ बोले तो उसे गबन करने वाले अपराधी के समान ही दण्ड दिया जाये। अपने सारे राज्य में राजा यह घोषणा करा दे कि अपराधी अध्यक्ष ने जिस जिसका गबन किया है, उसकी सूचना राजदरबार को भेज दी जाये। इस प्रकार सूचना मिलने पर राजा, प्रजा की उस हानि को पूरा करे। यदि अध्यक्ष के विरुद्ध एक साथ ही अनेक शिकायतें हों और उनमें से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी अपराध साबित हो जाने पर, सभी शिकायतों का अभियोग उस पर लगाया जाये। यदि अभियुक्त कुछ अपराधों को स्वीकार करता है और कुछ से मुकर जाता हे, तो उससे पूरे सबूत मांगे जायें। गबन किये गये बहुत से धन के सम्बन्ध में पूरे सबूत नहीं मिलते, कुछ ही धन के सम्बन्ध में सबूत मिल पाते हों, तो उस पर पूरे गबन का अभियोग लगाना चाहिये। यदि कोई निष्पक्ष, राजहितेच्छु व्यक्ति किसी अध्यक्ष के गबन की सूचना देता है, तो अपराध सिद्ध हो जाने पर, उस अपहृत धन का छठा भाग सूचना देने वाले को दिया जाना चाहिये। यदि सूचना देने वाला व्यक्ति राजकर्मचारी हो तो उसे बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिये। यदि अभियोग बहुत से धन का सिद्ध हो चुका है, किन्तु मिला कुछ ही धन है तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उस प्राप्त धन में से ही हिस्सा देना चाहिये। यदि अपराध सिद्ध न हो सके तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिये। किसी भी अपराधी को क्षमा न किया जाये। अभियोग साबित हो जाने पर सूचना देने वाला व्यक्ति अदालत से अपने को बरी करा सकता है, किन्तु रिश्वत लेकर यदि वह अपराधी के पक्ष में हो जाता है, और सच्चा बयान नहीं देता है तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

१३. आय-व्यय का लेखा

आचार्य कौटिल्य ने राज्य की अर्थव्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए राजा को यह निर्देश दिया है कि वह अपने राज्य में होने वाली आय और व्यय का विधिवत् हिसाब रखने के लिए अक्षपटल अध्यक्ष अर्थात् आय-व्यय निरीक्षक नियुक्त करे।

आय-व्यय का निरीक्षक, अक्षपटल का निर्माण कराये, उसका दरवाजा पूरब या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए, उसमें लेखकों के बैठने के लिए कक्ष और आय-व्यय की निबन्ध-पुस्तकों को रखने के लिये नियमित व्यवस्था होनी चाहिये। उसमें विभिन्न विभागों की नामावली, जनपद की पैदावार एवं उसकी आमदनी का विवरण, खान तथा कारखानों के आय-व्यय का हिसाब, कर्मचारियों की नियुक्ति, अन्न एवं सुवर्ण आदि का उपयोग, प्रयाम (अनाज के गोदाम), व्याजी (कम तोलने के कारण व्यापारियों व दण्डरूप में हुई आमदनी), योग, स्थान, वेतन, विष्टि आदि का ब्यौरा, रत्नसार एवं कुप्य आदि पदार्थों के मूल्य, उनका गुण, तौल, उनकी लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई एवं असली मूलधन का उल्लेख, देश, ग्राम, जाति, कुल सभा-सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा

परिस्थितियों का उल्लेख, राजकीय सहायता से जीवित रहने वाले प्रग्रह, निवासस्थान, भेंट, परिहार एवं वेतन आदि का उल्लेख, महारानी तथा राजपुत्रों द्वारा रत्न एवं भूमि आदि की प्राप्ति का विवरण, राजा, महारानी तथा राजपुत्रों को नियमित रूप से दिये जाने वाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन, उत्सवों तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारों से प्राप्त धन का उल्लेख और मित्र राजाओं तथा शत्रु राजाओं के साथ संधि-विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त हुआ अथवा खर्च हुए धन का विवरण आदि सभी ऐसे विषय हैं जिनका उल्लेख निबन्धपुस्तक में किया जाना चाहिये।

इसके बाद सभी उत्पत्ति-केन्द्रों एवं विभागों के लिए किए जाने वाले, किए गए तथा बचे हुए आय, व्यय नीवी, कार्यकर्त्ताओं की उपस्थिति, प्रचार, चरित्र और संस्थान आदि सब बातों को रजिस्टर में दर्ज करके राजा को दे देना चाहिये। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट जैसे भी कार्य हों उनके अनुसार ही उनके अध्यक्ष नियुक्त किये जाने चाहिये। एक ही कार्य को करने वाले अनेक व्यक्तियों में उसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो और जिसे दण्ड देने के पश्चात् राजा को पश्चात्ताप न करना पड़े।

यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गबन करके उसको अदा करने में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी स्त्री एवं लड़की अथवा उसके नौकर अदा करें। तीन-सौ-चौवन दिन-रात तक एक कर्मसंवत्सर होता है। उसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को समझनी चाहिये। इसी वर्ष-गणना के हिसाब से प्रत्येक अध्यक्ष का वेतन दिया जाना चाहिये। यदि अध्यक्ष की नियुक्ति वर्ष के मध्य में हुई है तो उसको कम वेतन और यदि उसने पूरे वर्ष कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिये। प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का ब्यौरा उपस्थिति रजिस्टर से देखना चाहिये। अध्यक्ष को चाहिये कि वह जनपद के समस्त कार्यालयों की कार्य-व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों से प्राप्त करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो अपनी अज्ञानता के कारण वह धनोत्पादन में हानिकर सिद्ध होता है। १. अज्ञान २. आलस्य ३. प्रमाद ४. काम ५. क्रोध ६. दर्प, ७. लोभ, ये धनोत्पादन में विघ्न डालने वाले दोष हैं। अधिक परिश्रम से कतराने के कारण आलस्य के द्वारा, गाना-बजाना तथा स्त्रियों में आसक्त रहने के कारण प्रमाद के द्वारा, निन्दा, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भय द्वारा, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम द्वारा, किसी क्रूरता के कारण क्रोध द्वारा, विद्या, धन एवं राजप्रिय होने के कारण दर्प द्वारा और नाप-तौल तर्कना तथा हिसाब में गड़बड़ कर देने के कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी लोग आमदनी में बाधा डाल देते हैं।

आचार्य मनु के अनुयायी विद्वानों का कहना है कि 'जो कर्मचारी ऊपर निर्दिष्ट दोषों के वशीभूत होकर जितना अपराध करे उसको उसी क्रम से दण्ड दिया जाना चाहिये' अर्थात् यदि वह अज्ञान के कारण अपराध करता है तो उसे उतना ही दण्ड दिया जाना चाहिये जितने का कि उसने नुकसान किया है, यदि वह आलस्य के कारण नुकसान करता है तो दुगुना, प्रमाद के कारण नुकसान करता है तो तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिये। आचार्य पराशर के मतानुयायियों का कहना है कि 'अपराध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आठगुना दण्ड देना चाहिये, क्योंकि सभी अपराध एक समान हैं।' आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वानों का मत है कि 'सभी अपराधियों को दसगुना दण्ड दिया जाना चाहिए।' शुक्राचार्य के अनुयायी कहते हैं कि 'सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि जो जितना अपराध करे तदनुसार ही उसे दण्ड दिया जाना चाहिये।'

सभी कार्यालयों के अध्यक्ष आषाढ़ के महीने में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आकर हिसाब का मिलान करें। उन आये हुए लोगों को तब तक एक-दूसरे से बातचीत न करनी दी जाये तथा मिलने न दिया जाये, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे रजिस्टर तथा व्यय से बचा हुआ धन मौजूद हैं। सर्वप्रथम आय-व्यय को सुनकर उसके पास जो बचत शेष हो उसे ले लिया जाये। अध्यक्ष की बताई हुई आय-राशि से यदि रजिस्टर का हिसाब अधिक निकले ओर उसी प्रकार बताए हुए व्यय की अपेक्षा रजिस्टर में उससे कम निकले तो अध्यक्ष पर, उसके द्वारा बताई गई

कम-अधिक रकम का आठगुना जुर्माना किया जाये। यदि आमदनी से अधिक अथवा व्यय से कम रकम रजिस्टर में चढ़ी हो तो ऐसी दशा में अध्यक्ष को दण्ड न दिया जाये, वरन् आय-व्यय की जो कमी-बेसी हुई है उसी को दे दी जाये। जो अध्यक्ष निश्चित समय में अपने रजिस्टर तथा शेष धन आदि को लेकर प्रधान कार्यालय में उपस्थित नहीं होता उसके हिसाब में जितना बाकी निकले उसका दस गुना जुर्माना उस पर किया जाना चाहिये। यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर क्षेत्रीय कार्यालयों में पहुंच जाये और वहां के विभागीय अध्यक्ष कार्यालय का हिसाब-किताब दिखाने में असमर्थ हों तो उन्हें प्रथम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर न पहँच पावे तो उसे दुगुना प्रथम साहस-दण्ड देना चाहिये।

राजा के महामात्र आदि प्रधान कर्मचारी आय-व्यय तथा नीवी सम्बन्धी सारी राजकीय व्यवस्थाएं प्रजाजनों को समझायें-बुझायें। यदि उनमें से कोई झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये। द्रव्य की वसूली करने वाला राजकर्मचारी यदि निर्धारित समय पर द्रव्य-वसूली न कर सके तो उसे एक मास का ओर समय दिया जाये। यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके राजकोष में न पहुँचा सके तो उस पर प्रति मास के हिसाब से दो-सौ रुपया जुर्माना कर देना चाहिये। जिस अध्यक्ष के पास थोड़ा राजदेय धन बाकी हो, निर्धारित समय से केवल पाँच दिन तक उसकी प्रतीक्षा की जाये। तदनन्तर उसे भी दंडनीय समझा जाये। कोषधन ओर कोषरजिस्टर लाने वाले अध्यक्ष की परीक्षा पहिले धर्म के द्वारा ली जाये, अर्थात् उसे देखा जाये कि वह धर्मात्मा है या दम्भी, फिर उसके व्यवहार को देखा जाये, तदनन्तर उसके आचार-विचार, उसकी पूर्वस्थिति, उसके कार्य एवं हिसाब-किताब और अन्त में उसके कार्यो को पारस्परिक मिलान करके उसकी परीक्षा ली जाये, गुप्तचरों द्वारा भी उसके भेद जाने जायें।

अध्यक्ष को चाहिये कि वह प्रतिदिन, प्रति पाँच दिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रति चार मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय-व्यय एवं नीवी का लेखाजोखा साफ-सुथरे ढंग से रखे अर्थात् वर्षारंभ से, पहले एक दिन का हिसाब, फिर एक साथ पाँच दिन का हिसाब, फिर एक साथ पन्द्रह दिन का हिसाब, फिर एक साथ एक मास का हिसाब, और अंत में एक साथ पूरे वर्ष का हिसाब करके रखे।

आय का लेखा निर्दोष और साफ रहे, एतदर्थ रजिस्टर में राजवर्ष (मास, पक्ष, दिन), देश, काल, मुख (आयमुख, आयशरीर), उत्पत्ति, अनुव त्ति प्रमाण, कर देने वाले का नाम, दिलानेवाले अधिकारी का नाम, लेखक का नाम और लेने वाले का नाम, इस प्रकार स्तंभ बने होने चाहिए। व्यय का लेखा तैयार करने के लिए रजिस्टर में इस प्रकार के खाने होने चाहिए : व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ व्यय का कारण, देय वस्तु का नाम, मिलावटी द्रव्य में अच्छाई-बुराई का उल्लेख, तौल, किसकी आज्ञा से व्यय किया गया, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेने वाले का पूरा विवरण। इसी प्रकार नीवी का लेखा; व्युष्ट, देश, काल, मुख, द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य की विशेषता, तौल, जिस पात्र में द्रव्य रखा जाये और द्रव्य का संरक्षक आदि विवरणों के आधार पर तैयार करना चाहिये। यदि क्लर्क अर्थलाभ को रजिस्टर में दर्ज नहीं करता है, राजकीय आज्ञा का उल्लंघन करता है, अथवा आय-व्यय के सम्बन्ध में विपरीत कल्पनाएं भी करता है तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। क्रम के विरुद्ध, उलट-पलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को बिना समझे-बूझे ही लिख देना, एक वस्तु को दुबारा चढ़ा देना, ऐसी गड़बड़ी करने वाले कर्मचारी को बारह पण का दण्ड दिया जायें यदि नीवी के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी गड़बड़ी पायी जाये तो चौबीस पण दण्ड, उसका गबन करे तो साठ पण दण्ड दिया जाना चाहिये। झूठ बोलने वाले को चोर जितना दण्ड देना चाहिये। हिसाब-किताब के सम्बन्ध में पीछे से किसी बात को स्वीकार करने पर चोरी से दुगुना दण्ड और पूछे जाने पर किसी बात का उत्तर न देकर बाद में उसका उत्तर देने पर भी यही दंड देना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने अध्यक्ष के थोड़े अपराध को क्षमा कर दे और यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी भी व द्धि कर लेता है तो उसके प्रति प्रसन्नता एवं संतोष प्रकट करे। महान् उपकार करने वाले अध्यक्ष का कृतज्ञ होकर राजा को सदैव उसका सम्मान करना चाहिये।

१४. शुल्क (चुंगी)

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अन्तर्देशीय व्यापार की व्यवस्था तथा उससे राजकोष की व द्धि के लिए राजा द्वारा शुल्क अर्थात् चुंगी के विधान का निर्देश दिया है। इस कार्य के लिए राजा को शुल्काध्यक्ष की नियुक्ति करनी चाहिये।

यह शुल्काध्यक्ष शुल्कशाला का निर्माण करवावे, उसके पूर्व तथा उत्तर की ओर, प्रधान द्वार के पास, शुल्कशाला की पहिचान के लिए एक पताका लगवा दे। शुल्कशाला में चार-पाँच कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये, जो माल को लाने ले जाने वाले व्यापारियों का नाम, उनकी जाति, उनका निवास स्थान, माल का विवरण और उस पर कहाँ-कहाँ मुहर लगी है, इसका विवरण लिखें जिन व्यापारियों के माल पर मुहर न लगी हो, उनको जितनी चुंगी (शुल्क) देनी चाहिये, उन पर उसका दुगुना जुर्माना किया जाये। जिन व्यापारियों ने अपने माल पर नकली मुहर लगाई है उन पर चुंगी का आठ गुना जुर्माना ठोकना चाहिये। जो व्यापारी मुहर लगाकर उसको मिटा दे, उन्हें तीन घड़ी तक ऐसे स्थान पर बैठाया जाये, जहाँ पर कि आने-जाने वाले सभी व्यापारी उनके अपराध को जान सकें। माल का नाम बदलने वाले व्यापारी पर सवापण दण्ड करना चाहिये। शुल्कशाला की ध्वजा के नीचे एकत्र होकर व्यापारी लोग अपने माल का नाम, उसकी कीमत और उसके वजन आदि की बोली बोलें। तीन बार आवाज लगाने पर जो भी खरीद ले, उसे माल दे देना चाहिये, यदि खरीदने वालों में होड़ लग जाये तो माल का मूल्य बढ़ा कर बोली बोली जाये और निर्धारित आमदनी से अधिक मूल्य एवं उसकी चुंगी राजकीय कोष में जमा कर दी जाये। अधिक चुंगी देने के डर से जो व्यापारी अपने माल और उसके मूल्य को कम करके बताये, उस अतिरिक्त माल को राजा ले ले, अथवा व्यापारी से आठ गुना शुल्क वसूल किया जाये। यही दण्ड उस व्यापारी को भी देना चाहिये जो कि बढ़िया माल की जगह, उसी प्रकार की दूसरी पेटी आदि में घटिया माल रख कर उसका मूल्य कम कर दे अथवा जो व्यापारी नीचे के हिस्से में अच्छा माल भर कर ऊपर से सस्ता माल भर दे और उसी के अनुसार चुंगी दे। प्रतिद्वन्द्विता के कारण जो ग्राहक किसी चीज का मूल्य बढ़ा दे, उस बढ़े हुए मूल्य को राजा ले ले अथवा उस मूल्य बढ़ाने वाले खरीददार से दुगुनी चुँगी वसूल कर ली जाये।

मित्रता या रिश्वत के कारण यदि अध्यक्ष किसी अपराधी व्यापारी को माफ कर दे तो अपराध के अनुपात से आठ गुना दण्ड अध्यक्ष को दिया जाये। इसलिए माल की बिक्री तौल कर अथवा गिन कर भली भाँति करनी चाहिये, जिससे छल-कपट न हो सके। कोयला, नमक आदि कम चुंगी वाली वस्तुओं पर अन्दाज से ही कर लेना चाहिये, उन्हें तौलने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यापारी छिपकर किसी छल से चुँगी दिए बिना ही चुंगीघर को लाँघ कर चले जायें उन्हें नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क देना चाहिये। असली रास्ता छोड़ कर इधर-उधर से निकल जाने वाले लकड़हारे और ग्वाले आदि पर भी निगरानी रखनी चाहिये।

विवाह सम्बन्धी, विवाह में प्राप्त, सदावर्त्त या क्षेत्रों के लिये दिया गया दान, यज्ञकर्म एवं जन्मोत्सव के लिए भेजा हुआ देवपूजा, मुंडन, जनेऊ, गोदान और व्रत आदि धार्मिक कार्यों से सम्बद्ध माल पर चुंगी न ली जानी चाहिये। किन्तु चुंगी के भय से जो व्यक्ति अपने माल का सम्बन्ध उक्त कार्यों से बतायें तो उसे चोरी का दण्ड दिया जाये। यदि कोई व्यापारी चुंगी दिए माल के साथ बिना चुंगी दिए माल को निकाल ले जाये या इसी प्रकार बिना मुहर लगे माल को निकाल ले जाये, अथवा चुंगी दिये माल में बिना चुंगी का माल मिला दे, उस व्यापारी का वह बिना चुंगी का माल जब्त कर दिया जाये और उस पर उतना ही दण्ड निर्धारित किया जाये। जो व्यापारी चुंगी देने के भय से अपने अच्छे माल को घटिया बताकर धोखे से निकाल ले जाने की चेष्टा करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। शस्त्र, कवच, लोहा, रथ, रत्न, अन्न और पशु आदि किसी भी प्रतिबन्ध लगी वस्तु को लाने-ले जाने वाले व्यापारी को पूर्व निर्धारित दण्ड दिया जाये और उसकी उस वस्तु

को जब्त कर लिया जाये। इनमें से कोई वस्तु यदि बाहर लायी जाये तो वह बिना चुंगी दिये भी नगर-सीमाओं के बाहर बेची जा सकती है। सीमा रक्षक अन्तपाल को चाहिये कि वह माल ढोने वाली प्रति गाड़ी से मार्गरक्षा-कर के रूप में सवा पण कर वसूल करे। घोड़े, खच्चर, गधे आदि एक खुर वाले पशुओं की गाड़ी पर एक पण, बैल आदि पशुओं पर आधा पण, बकरी, भेड़ आदि छोटे पशुओं पर चौथाई पण और कंधे पर भार ढोने वाले व्यक्तियों पर एक माष (तांबे का सिक्का) कर लेना चाहिये। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु गुम हो गई या चोरी हो गई हो तो अन्तपाल उसका पता लगाये। नष्ट हुई वस्तु मिल जाये तो दे दे, अन्यथा अपने ही पास से दे। अन्तपाल को चाहिये कि वह विदेशी व्यापारियों के माल की भली-भाँति जाँच कर उस पर मुहर लगाये और रमन्ना (पास) काटकर उन्हें चुंगी के अध्यक्ष के पास भेज दे। उन विदेशी व्यापारियों के साथ गुप्त व्यापारी का भेष धारण किये राजा का खुफिया व्यापारियों के सम्बन्ध की सारी सूचनाएं पहले ही राजा तक पहुँचा दे। इस सूचना को तथा व्यापारियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी राजा, शुल्काध्यक्ष के पास भेज दे, जिससे कि राजा की जानकारी पर विश्वास किया जा सके और राजा की बात को विश्वासपूर्वक कहा जा सके। तदनुसार शुल्काध्यक्ष व्यापारियों से कहे 'आप लोगों में से अमुक-अमुक व्यापारी के पास इतना घटिया और इतना बढ़िया माल है, आप लोगों को कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये। देखिये, राजा का इतना प्रभाव है कि उससे कोई बात छिपी नहीं रह सकती है।' जो व्यापारी घटिया माल को छिपाने का यत्न करे, उस पर चुंगी से आठ गुना जुर्माना और जो बढ़िया माल को छिपाये उसका सारा माल जब्त कर लेना चाहिये। राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाले विष या फल आदि माल को राजा नष्ट कर दे और यदि प्रजा का उपकार करने वाला तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाला धान्य आदि माल हो तो उस पर चुंगी न लगाई जाये, जिससे उस माल का अपने देश में अधिक आयात हो। शुल्कव्यवहार के तीन प्रकार हैं : १. बाह्य, २. आभ्यन्तर, और ३. आतिथ्य। इनके दो भाग हैं : १. निष्क्राम्य और २. प्रवेश्य। बाहर जाने वाले माल पर लगाई गई चुंगी को निष्क्राम्य और बाहर से आने वाले माल पर लगाई चुंगी को प्रवेश्य कहते हैं। आयात माल पर सामान्यतः उसकी लागत का पाँचवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये। फूल, फल, साग, गाजर, मूल, शकरकन्द, धान्य, सूखी मछली और मांस, इन वस्तुओं पर उनकी लागत का छठा हिस्सा चुंगी लेनी चाहिये। शंख, हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल और हार, इन मूल्यवान् वस्तुओं की चुंगी उनके विशेषज्ञों, पारखियों अथवा विशिष्ट रूप से नियत समय के लिए नियत वेतन पर नियुक्त व्यक्तियों द्वारा निर्धारित करनी चाहिये। मोटे तथा महीन रेशमी कपड़ों, कीमखाब, सूती कवच, हरताल, मैनसिल, हिंगुल, लोहा, गेरू, चन्दन, अगर पीपल, मादक बीजों से निकाला गया द्रव्य, शराब, हाथदाँत, म गचर्म, रेशमी तागे, बिछौना, ओढ़ना, अन्य रेशमी वस्त्र और बकरी तथा भेड़ की ऊन के बने कपड़ों आदि पर उनके मूल्य का पन्द्रहवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये।

१५. अध्यक्ष व उनके कार्य

आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण राज्य के प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ के अध्यक्ष प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में विभिन्न कार्यों को देखने वाले अध्यक्षों और अधिकारियों का उल्लेख किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख पदाधिकारियों और उनके कार्यों का सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत है :-

सन्निधाता - कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था में कोषाध्यक्ष को सन्निधाता कहा जाता था। इसका मुख्य कार्य भिन्न भिन्न प्रकार के राज धन को सुरक्षित रखने के लिए कोशग ह, पण्यग ह तथा कोष्ठागार, कुप्यग ह तथा आयुधागार और बन्धनागार आदि का निर्माण कराना था। राजकोष को सुरक्षित रखना उसका मुख्य उत्तरदायित्व था।

समाहर्त्ता - तत्कालीन राज्य व्यवस्था में समाहर्त्ता राजकोष का स चय करता था। राज्य में होने वाली कृषि तथा व्यापार आदि में से राज कर को वसूलने वाला यह मुख्य अधिकारी था। वर्तमान व्यवस्था में इसे कलक्टर (जनरल) कहते हैं।

अक्षपटलाध्यक्ष - राजकीय धन के आय व्यय का लेखा जिस स्थान पर लिखा जाता था उसे अक्षपटल कहा जाता था। अक्षपटल नामक कार्यालय का मुख अधिकारी अक्षपटलाध्यक्ष कहलाता था। इस लेखा कार्यालय के निर्माण से लेकर वहाँ होने वाले लेखा सम्बन्धी समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व अक्षपटलाध्यक्ष का ही होता था।

आकाराध्यक्ष - यह राज्य की विभिन्न प्रकार की खानों का कार्य देखने वाला उच्चाधिकारी था। यह शुल्बशास्त्र, धातुशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा मणिशास्त्र आदि विभिन्न विषयों का ज्ञाता होता था। इसका कार्य विभिन्न धातुओं की खानों का पता लगाना तथा वहाँ से यथाविधि धातु आदि का संग्रह करना होता था। पुनः भिन्न भिन्न धातुओं के उपयोग की व्यवस्था करने वाले भिन्न-भिन्न अध्यक्ष होते थे, यथा - लौह से बनने वाले पदार्थों का व्यवहार देखने वाला लौहाध्यक्ष, सिक्के ढलवाने वाला लक्षणाध्यक्ष, नमक की व्यवस्था देखने वाला लवणाध्यक्ष तथा सुवर्ण और चाँदी का व्यवहार सम्भालने वाला सुवर्णाध्यक्ष आदि।

कोष्ठागाराध्यक्ष - कोष्ठ का मूल अर्थ है धान्य, तेल, घी आदि खाने योग्य पदार्थ है। इन सब पदार्थों के संग्रह की तथा उनके रख-रखाव की व्यवस्था देखने वाला कोष्ठागाराध्यक्ष होता था।

पण्याध्यक्ष - विक्रय के योग्य राज द्रव्य को अर्थशास्त्र में पण्य कहा गया है। उस पण्य द्रव्य के क्रय और विक्रय की व्यवस्था को देखने वाला अधिकारी पण्याध्यक्ष होता था।

कुप्याध्यक्ष - मूल्यवान् व क्षों की लकड़ी, छाल तथा बाँस आदि सब कुप्य कहलाते हैं। इनकी व्यवस्था देखने वाला अधिकारी कुप्याध्यक्ष कहलाता था।

आयुधागाराध्यक्ष - सब प्रकार के आयुधों के निर्माण तथा उन्हें सुरक्षित रखने वाला उत्तरदायी अधिकारी आयुधागाराध्यक्ष होता था।

पौतवाध्यक्ष - सब प्रकार की तौल माप आदि का काम देखने वाले अधिकारी को पौतवाध्यक्ष कहा जाता था।

शुल्काध्यक्ष - राज्य में बाहर से आने वाली तथा राज्य से बाहर जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं पर नियमानुसार शुल्क अर्थात् चुंगी वसूलने वाला मुख्याधिकारी शुल्काध्यक्ष कहलाता था।

सूत्राध्यक्ष - सूत्राध्यक्ष का कार्य सभी प्रकार के सूत तथा उनसे बनने वाले वस्त्र-निर्माण की व्यवस्था देखना होता था।

सीताध्यक्ष - कृषि योग्य भूमि को सीता कहा जाता है। कृषि कर्म के निरीक्षक के लिए नियुक्त मुख्याधिकारी सीताध्यक्ष होता था। सब प्रकार की बीजों का संग्रह करवाना, उन्हें सुरक्षित रखना तथा यथा समय किसानों को देना, वर्षा आदि का पूर्वानुमान, हुई वर्षा का मान, तदनुसार कृषि कर्म की व्यवस्था आदि देखना इसके प्रमुख कार्य होते थे।

नावाध्यक्ष - राज्य के घाटों पर आने जाने वाली नौकाओं से टैक्स लेने वाला राजकीय पुरुष नावाध्यक्ष कहलाता था।

गो ध्यक्ष - दुधारु पालतू पशुओं की व्यवस्थाओं का निरीक्षण करने वाला राजकीय अधिकारी गो ध्यक्ष कहा जाता था।

अश्वाध्यक्ष - राजकीय अश्वों की व्यवस्था देखने वाला मुख्य अधिकारी।

हस्त्यध्यक्ष - राजकीय हस्तियों का प्रबन्ध करने वाला प्रमुख अधिकारी।

रथाध्यक्ष - सेना में काम आने वाले रथों की व्यवस्था देखने वाला प्रमुख अधिकारी।

पत्यध्यक्ष - पैदल सेना का प्रधान अधिकारी।

सेनापति - राजकीय सेना का प्रधान अधिकारी सेनापति होता था। अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, रथाध्यक्ष तथा पत्यध्यक्ष उसी के मार्गदर्शन में कार्य करते थे।

प्रथमं अधिकरणम्

अध्याय-१

विद्यासमुद्देशः आन्वीक्षकीस्थापना

(१) आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।

(२) त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति।

(३) वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः। संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।

(४) दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति।

(५) चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।

(६) साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानथौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम् बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमानाणान्वीक्षकी लोकस्योपकरोति; व्यसने भ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति; प्रज्ञावाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति।

(७) प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे आन्वीक्षकीस्थापना नाम प्रथमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-ये चार विद्यायें हैं।

(२) मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत ही हो जाता है।

(३) आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्यायें मानते हैं : वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो संसारी लोगों की आजीविका का साधन मात्र है।

(४) शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, और उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है।

(५) आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं। धर्म और अर्थ का बोध कराना ही इन विद्याओं का विद्यात्व अर्थात् प्रयोजन है।

(६) सांख्य, योग और लोकायत (चार्वाक दर्शन), ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है। त्रयी आदि विद्याओं की प्रधानता-अप्रधानता (बलाबल) को, भिन्न-भिन्न युक्तियों से, निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है; सुख-दुःख से बुद्धि को स्थिर रखती है; और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है।

(७) यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में आन्वीक्षकी स्थापना नाम का पहला अध्याय समाप्त।

अध्याय २

त्रयीस्थापना

(१) सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि।

(२) एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः।

(३) स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च। वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च। शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च।

(४) ग हस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यम तुगामित्वं देवपित्रतिथिभ त्येषु त्यागः शेषभोजनं च।

(५) ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायो ग्निकार्योभिषेको भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी व त्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा।

(६) वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटा जिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः।

(७) परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्कि चनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्यवासो बाह्याभ्यन्तरं च शौचम्।

(८) सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूया न शंस्यं क्षमा च।

(९) स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत।

(१०) तस्मात्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति।।

(११) व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे त्रयीस्थापना नाम द्वितीयो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) साम, ऋक् तथा यजु, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है। अथर्ववेद और इतिहासवेद भी वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति (विचिति=विचार, विवेक) और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं।

(२) त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने अपने धर्म (कर्तव्य) में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है।

(३) ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान देना तथा दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म, है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे;

खेती, पशु-पालन तथा व्यापार करे; और शिल्प (कारीगरी), गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे।

(४) ग हस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करे; सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे; ऋतुगामी हो; देव, पितर, अतिथि और भ त्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करे।

(५) ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे; अग्निहोत्र करे; नित्य स्नान करे; भिक्षाटन करे; जीवनपर्यन्त गुरु के समीप रहे; गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे।

(६) वानप्रस्थी का धर्म है : ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना; भूमि पर शयन करना; जटा, म गचर्म को धारण किये रहना; अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना; देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्दमूल-फल पर निर्वाह करना।

(७) संन्यासी का धर्म है : जितेन्द्रिय होना; वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे; निष्किंचन बना रहे; एकाकी रहे; प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार करे; समाज में न रहे; जंगलों में भी एक ही स्थान पर न रहे; मन, वचन, कर्म से अपना भीतर तथा बाहर पवित्र रखे।

(८) प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे; सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान् और क्षमाशील बना रहे।

(९) अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है।

(१०) इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रव त्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है।

(११) पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में त्रयी स्थापना नाम का दूसरा अध्याय समाप्त।

अध्याय ३

वार्तादण्डनीतिस्थापना

(१) कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्।

(२) आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः। अलब्धलाभार्था; लब्धपरिरक्षणी; रक्षितविवर्धनी; व द्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।

(३) तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः।

(४) नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः। म दुदण्डः परिभूयते। यथार्हदण्डः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।

(५) दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्ग हस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति।

(६) चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।

स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे वार्त्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च त तीयो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि को देने से परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

(२) आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-सम द्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है; प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है; रक्षित वस्तुओं की व द्धि करती है और वही संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इसलिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने की इच्छा रखने वाला राजा सदा ही उद्यतदण्ड अर्थात् यथायोग्य दण्ड देने के लिए प्रस्तुत रहे।

(३) पुरातन आचार्यों का अभिमत है कि 'दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को सहज ही वश में किया जा सके'।

(४) किन्तु आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'कठोर दण्ड देने वाले राजा से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते हैं; किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।'

(५) भली भाँति सोच-समझ कर प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रव त्त करता है।

काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रीति से प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्प ह व्यक्तियों को भी कुपित कर देता है; फिर ग हस्थ लोगों का तो कहना ही क्या ? इसके विपरीत, यदि दण्ड से व्यवस्था सर्वथा ही तोड़ दी जाए तो उसका कुप्रभाव यह होगा कि जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति, निर्बल व्यक्तियों का जीना मुश्किल कर देंगे। दण्ड-व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान् सताने लगता है; किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान् बना रहता है।

(७) राजा की दण्ड-व्यवस्था से पालित चारों वर्ण-आश्रम, सारा लोक, अपने-अपने धर्म कर्मों में प्रव त्त होकर निरन्तर अपनी अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में वार्तादण्डनीतिस्थापना नाम का तीसरा अध्याय समाप्त।

अध्याय ४

व द्ध-संयोग:

---

(१) तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभ तां योगक्षेमावहः।

(२) कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणाध ाारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्।

(३) विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च।

(४) व त्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयु जीत। व त्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, वार्त्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्त प्रयोक्त भ्यः।

(५) ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च। अस्य नित्यश्च विद्याव द्धसंयोगो विनयव द्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य।

(६) पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिव त्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। शेषमहोरात्रभागमपूर्वं ग्रहणं ग हीतपरिचयं च कुर्यात्। अग हीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च।

(७) श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते; प्रज्ञया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्।

(८) विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।

अनन्यां प थिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे व द्धसंयागनामकः चतुर्थो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) यही कारण है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन तीनों विद्याओं का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है। शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के योगक्षेम का साधक होता है।

(२) विनय अर्थात् शिक्षा दो प्रकार की होती है : १. कृतक (कृत्रिम, बनावटी, नैमित्तिक) और २. स्वाभाविक (स्वतः सिद्ध)। शिक्षा सुपात्र को ही योग्य बना सकती है, अपात्र को नहीं। विद्या से वही योग्य हो सकते हैं, जो कि शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह (तर्क-वितर्क) में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते हैं।

(३) विभिन्न विद्याओं के विभिन्न आचार्यों के मतानुसार ही शिष्य का शिक्षण और नियमन होना चाहिए।

(४) मुण्डन-संस्कार के बाद वर्णमाला और अङ्कमाला का अभ्यास करे। उपनयन के बाद सदाचारशील विद्वान् आचार्यों से त्रयी तथा आन्वीक्षकी, विभागीय अध्यक्षों से वार्ता और वक्ता-प्रयोक्ता विशेषज्ञों से दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करें।

(५) सोलह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे। तदनन्तर गोदानविधि अनुसार समावर्तन संस्कार और विवाह करे। विवाह के बाद अपने विनय की व द्धि के लिए सदा ही विद्याव द्ध पुरुषों का सहवास करे, क्योंकि सारे विनय का मूल वे ही हैं।

(६) दिन का पहिला भाग हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा में बिताये। दिन के दूसरे भाग को को इतिहास सुनने में लगाये। पुराण, इतिव त्त, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा), धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, ये सभी विषय इतिहास हैं। दिन और रात के शेष बचे समय में नये ज्ञान का अर्जन और अर्जित ज्ञान का मनन-चिन्तन करे। जो विषय एक बार सुनने में बुद्धिस्थ न हो सके, उसका बार-बार श्रवण करे।

(७) क्योंकि शास्त्र-श्रवण से बुद्धि का विकास होता है, उससे योगशास्त्रों मं रुचि और योग से आत्मबल प्राप्त होता है। यही विद्या का सुपरिणाम है।

(८) जो विद्वान् राजा प्राणिमात्र की हितकामना में लगा रहता है और प्रजा के शासन तथा शिक्षण में तत्पर रहता है, वह चिरकाल तक प थिवी का निर्बाध शासन करता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में व द्ध संयोग नाम का चौथा अध्याय समाप्त।

अध्याय ५

इन्द्रिय-जयः अरिषड्वर्गत्यागः

(१) विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः; कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्व- विप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः।

(२) शाास्त्रार्थानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। तद्विरुद्धव त्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तो पि राजा सद्यो विनश्यति। यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेहः। कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भ गुषु। लौभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः। मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्। दुर्योधनो राज्यादंशं च। मदाद् डम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः। हर्षाद्वातापिगस्त्यमत्यासादन्व ष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति।

(३) एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।

सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः।।

शत्रुषड्वर्गम त्स ज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः।

अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीमै्

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्गत्यागः प चमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इस अरिषड्वर्ग के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका को उनके विषयों : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रव त्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है।

(२) अथवा शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों के सम्यक् अनुष्ठान को ही इन्द्रियजय कहते हैं। सारे शास्त्रों का मूल कारण इन्द्रियजय है। शास्त्रविहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाले इन्द्रिय-लोलुप राजा सारी प थिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा कामवश ब्राह्मणकन्या का अपहरण करने के अपराध में, उसके पिता के शाप से, सपरिवार एवं सराष्ट्र विनष्ट हो गया। यही गति विदेह देश के राजा कराल की भी हुई। क्रोधवश राजा जनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और वह भी उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भ गुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा, चारों वर्णो से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही हाल सौवीर देश के राजा अजबिन्दु का भी हुआ। अभिमानी रावण पर-पत्नी के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा; अन्त में नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार हैहयराज अर्जुन, परशुराम द्वारा मारा गया। हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नाम का असुर, अगस्त्य ऋषि के शापवश म त्युमुख में जा पहुँचे।

(३) कामादि छह शत्रुओं के वश में होकर, ऊपर गिनाये गये राजाओं के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से राजा, सबन्धु-बान्धव एवं सराज्य नष्ट हो गये। किन्तु जामदग्न्य परशुराम, अम्बरीष और नाभाग जैसे जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक इस प थिवी का उपभोग किया।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में इन्द्रियजय और अरिषड्वर्गत्याग नाम का पांचवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ६

राजर्षिव त्तम्

(१) तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। व द्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, विनयं विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेन व त्तिम्।

(२) एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। स्वप्नं लौल्यमन तमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च; अधर्मसंयुक्तमानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम्।

(३) धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत्। न निःसुखः स्यात्। समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति।

(४) अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः; अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति।

(५) मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा। य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः।

(६) सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च श णुयान्मतम्।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे इन्द्रियजये राजर्षिव त्तं षष्ठो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) इसलिए, काम-क्रोधादि छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। विद्वान् पुरुषों की संगति में रहकर बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के व त्तान्त को अवगत करे। उद्योग के द्वारा राज्य के योग-क्षेम का सम्पादन करे। राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर द ढ़ बने रहने के लिए प्रजा पर नियन्त्रण रखे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से प्रजा को विनम्र और शिक्षित बनावे। प्रजाजनों को धन-सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखे। दूसरे का हित करने में उत्सुक रहे।

(२) इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह (राजा) पराई स्त्री, पराया धन और हिंसाप्रव त्ति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, च चलता, झूठ बोलना, अविनीत व त्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और इस प्रकार के आचरण वाले लोगों की संगति को वह छोड़ दे। उसको चाहिए कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे।

(३) काम का भी वह सेवन करे; किन्तु उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करे। इस त्रिवर्ग का असंतुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता है।

(४) आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर है।

(५) गुरुजन और अमात्यवर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में प्रमाद करता हुआ अभर्यादित हो जाये तो समय-सूचक यन्त्र द्वारा अथवा घंटा आदि बजाकर उसको सावधान करें।

(६) एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजर्षिव त्त नाम का छठां अध्याय समाप्त।

अध्याय ७

अमात्यनियुक्तिः

(१) सहाध्यायिनो मात्यान् कुर्वीत, द ष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः। ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति।

(२) नेति विशालाक्षः। सहक्रीडितत्वात् परिभवन्त्येनम्। ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान् कुर्वीत, समानशीलव्यसनत्वात्। ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति।

(३) साधारण एष दोष इति पराशरः। तेषामपि मर्मज्ञभयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत।

(४) यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम्।।

(५) य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुग हणीयुस्तानमात्यान् कुर्वीत, द ष्टानुरागत्वादिति।

(६) नेति पिशुनः। भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः। संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान् कुर्वीत, द ष्टगुणत्वादिति।

(७) नेति कौणपदन्तः। अन्यैरमात्यगुयैरयुक्ता ह्येते। पित पैतामहानमात्यान् कुर्वीत, द ष्टापदानत्वात्। ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति, सगन्धत्वात्। अमानुणैष्वपि चैतद् द श्यते-गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति।

(८) नेति वातव्याधिः। ते ह्यस्य सर्वमपग ह्य स्वामिवत् प्रचरन्तीति। तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान् कुर्वीत। नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति।

(९) नेति बाहुदन्तीपुत्रः। शास्त्रविदद ष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत्।

(१०) सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः। कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च।

(११) विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे मात्योत्यनियुक्तिनामकः सप्तमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि 'राजा, अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे; क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है; उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं'।

(२) आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि 'ऐसा उचित नहीं। एक साथ खेलने तथा उठने-बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो कि गुप्त कार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समान शील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से, राजा का अपमान नहीं करते हैं'।

(३) आचार्य पराशर के मत से आचार्य विशालाक्ष की युक्तियाँ दोषपूर्ण हैं। पराशर का कहना है कि यह बात तो दोनों ही पक्षों पर एक समान चरितार्थ होती है। ऐसा करने से यह भी तो

सम्भव है कि गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा ही अमात्य की कठपुतली बन जाय ! क्योंकि :

(४) राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है।

(५) इसलिए जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियों में रक्षा करें, उनको अमात्य नियुक्त करना चाहिए। उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है।

(६) आचार्य पिशुन इसको भक्ति कहते हैं। उनका कहना है कि 'प्राणों की चिन्ता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है, सेवाधर्म है; वह बुद्धि का प्रमाण नहीं; जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण है। इसलिए अमात्य पद पर उन्हीं को नियुक्त करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर अपने कार्यों को विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न करके दिखा दें, क्योंकि इस ढंग से उनके बुद्धि-वैशिष्ट्य की परीक्षा हो जाती है'।

(७) आचार्य कौणपदन्त उक्त मत को नहीं मानते। उनका कहना है कि 'ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं। अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध रहा हो, उन्ही को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं। यह कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी,परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते। यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है कि गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है'।

(८) आचार्य वातव्याधि, आचार्य कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं है। उनकी मान्यता है कि 'इस प्रकार के अमात्य; राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके, राजा के समान स्वतन्त्र व त्ति वाले हो जाते हैं। इसलिए नीतिकुशल राजा नये व्यक्तियों को ही अमात्य नियुक्त करे। नये अमात्य, दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर, उसकी कभी भी अवमानना नहीं करते'।

(९) आचार्य बाहुदन्ती के मत से यह भी ठीक नहीं है। वे कहते हैं 'नीतिशास्त्रपारंगत, किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता है। इसलिए जो लोग कुलीन, बुद्धिमान् विश्वासपात्र, वीर और राजभक्त हों, उनको अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। उनमें गुणों की प्रधानता होती है'।

(१०) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भारद्वाज से लेकर बहुदन्तीपुत्र तक की विचार-परम्परा, अपने-अपने स्थान पर ठीक है। 'किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कायो ॅ की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए

(११) राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए वह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे; किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अमात्यनियुक्ति नाम का सातवां अध्याय समाप्त।

अध्याय ८

मन्त्रि-पुरोहितयोर्नियुक्तिः

(१) जानपदो भिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो द ढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः सतम्भचापल्यवर्जितः संप्रत्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत्। अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ।

(२) तेषां जनपदमवग्रहं चाप्यतः परीक्षेत, समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च; कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च; कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं चः आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च; संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां द ढभक्तित्वं च; संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च; प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च।

(३) प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजव त्तिः स्वयंद ष्टं प्रत्यक्षं, परोपदिष्टं परोक्षं, कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम्। यौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म।

(४) पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् अर्थवभिरुपार्यश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्यं शिष्यः, पितरं पुत्रो, भ त्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

(५) ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे मन्त्रीपुरोहितयोर्नियुक्तिर्नामाष्टमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) स्वदेशोत्पन्न, कुलीन, अवगुणशून्य, निपुण सवार एवं ललितकलाओं का ज्ञाता, अर्थशास्त्र का विद्वान्, बुद्धिमान्, स्मरणशक्तिसम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ (दबंग), प्रतिवाद तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, द ढ़ स्वामिभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान, निरभिमानी, स्थिरप्रकृति, प्रियदर्शी और द्वेषव त्तिरहित पुरुष प्रधानमन्त्री पद के योग्य है। जिनमें इसके एक-चौथाई या आधी योग्यताएं हों उन्हें मध्यम या निकृष्ट मन्त्री समझना चाहिए।

(२) मन्त्री नियुक्त करने से पूर्व राजा को चाहिए कि वह प्रामाणिक, सत्यवादी एवं आप्त पुरुषों के द्वारा उनके निवासस्थान तथा उनकी आर्थिक स्थिति का; सहपाठियों के माध्यम से उनकी योग्यता तथा शास्त्रप्रवेश का; नये-नये कार्यों में नियुक्त कर उनकी बुद्धि, स्म ति तथा चतुराई का; व्याख्यानों एवं सभाओं के माध्यम से उनकी वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिभा का; आपत्तियों से उनके उत्साह, प्रभाव तथा सहिष्णुता का; व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता एवं द ढ़ स्वामिभक्ति का; सहवासियों एवं पड़ोसियों के माध्यम से उनके शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिरव त्ति का पता लगाये और उनके मधुरभाषी स्वभाव तथा द्वेषरहित प्रकृति की परीक्षा स्वयं राजा करे।

(३) प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, राजा के व्यवहार की ये तीन विधियाँ हैं। स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष, दूसरों के माध्यम से जाना हुआ परोक्ष और सम्पादित कार्यों से किये जाने वाले कार्यों का

अनुमान करना ही अनुमेय कहलाता है। कार्यों की विधियाँ ओर उनके विधान एक जैसे नहीं हैं। राजा उन कार्यों को अकेला नहीं कर सकता है। जिससे कार्यों के सम्पादन में देश-काल का अतिक्रमण न हो, एतदर्थ, अमात्यों के द्वारा परोक्ष रूप से राजा उन कार्यों को कराये। इसी हेतु अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा के लिए ऊपर वैसा विधान किया गया है।

(४) उच्च्कुलोत्पन्न; शील-गुणसम्पन्न; वेद-वेदांगों का ज्ञाता; ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र, दण्डनीति में पारंगत; अथर्ववेद में निर्दिष्ट उपायों द्वारा दैवी तथा मानुषी विपत्तियों का प्रतिकार करनेवाला; इन योग्यताओं से सम्पन्न पुरोहित को नियुक्त करना चाहिए। जैसे आचार्य के पीछे शिष्य, पिता के पीछे पुत्र और स्वामी के पीछे भ त्य चलता है, वैसे ही राजा को पुरोहित का अनुगामी होना चाहिए।

(५) इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित से संवर्धित, सर्वगुणसम्पन्न योग्य मन्त्रियों के परामर्श से अभिरक्षित और शास्त्रोक्त अनुष्ठानों का आचरण करने वाला राजकुल युद्ध के बिना भी अजेय एवं अलभ्य वस्तुओं को सहज ही में प्राप्त कर लेता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में मन्त्रिपुरोहितनियुक्ति नाम का आठवां अध्याय समाप्त।

अध्याय ६

उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्

(१) मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वा मात्यानुपधाभिः शोधयेत्।

(२) पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तमम ष्यमाणं राजावक्षिपेत्। सत्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत्-अधार्मिको यं राजा, साधु धार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा।

(३) सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय-सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा।

(४) परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत्-राजमहिषी त्वां कामयते। कृतसमागमोपाया महानर्थश्चते भविष्यतीति। प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा।

(५) प्रवहणनिमित्तमेको मात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत्। तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात्। कापटिकच्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थ- मानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत्-असत्प्रव त्तो यं राजा, सहसैनं हत्वा न्यं प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा।

(६) तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्, अर्थोपधाशुद्धान् समाहत ʼसन्निधात निचयकर्मसु, कामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु, भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः। सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात्। सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत्।

(७) त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान् स्वेषु कर्मसु।
अधिकुर्याद् यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः।।

(८) न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः।
शौचहेतोरमात्यानामेतत् कौटिल्यदर्शनम्।।

(९) न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत्।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम्।।

(१०) कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा।
नागत्वा न्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां ध तौ।।

(११) तस्माद् बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानां नवमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके, मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा, गुप्त उपायों के द्वारा उनके आचरणों की परीक्षा करे।

(२) धर्मोपधा से राजा, पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे। जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करे तो राजा उसको उसके पद से च्युत कर दे। वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराये। वह कहे 'यह राजा बड़ा अधार्मिक है। हमें चाहिए कि उसके स्थान पर, उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीप के किसी सामन्त को, अथवा किसी जंगल के स्वामी को, या जिसको भी एकमत होकर हम निश्चित कर लें, उसको, नियुक्त करें। मेरे इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' पुरोहित की यह बात सुनकर यदि अमात्य उसको स्वीकार न करे तो उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए। गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को 'धर्मोपधा' कहते हैं।

(३) अर्थोपधा से राजा, किसी निन्दनीय या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने के लिए, सेनापति को आदेश दे। राजा की इस बात से जब सेनापति रुष्ट हो जाए तो राजा उसको भी पदच्युत कर दे। वह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्तभेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। वह कहे 'मेरी इस युक्ति को सभी ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' सेनापति की यह बात सुनकर अमात्य यदि उसका विरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय वाला है। गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'अर्थोपधा' कहते हैं।

(४) कामोपधा से राजा किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत-सत्कार करे और फिर वह एक-एक अमात्य के निकट जाकर कहे 'महामात्य, महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर दी है। इससे आपको यथेष्ट धन भी प्राप्त होगा।' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझना चाहिए। गुप्त कामसम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'कामोपधा' कहते हैं।

(५) भयोपधा से नौका-विहार के लिए एक अमात्य दूसर अमात्यों को बुलाये; इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब को दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ कपट-वेषधारी छात्र उस तिरस्कृत एवं दण्डित अमात्य के निकट जाकर उससे कहे 'यह राजा बहुत ही बुरा है। इसका वध करके हम किसी दूसरे राजा को उसके स्थान पर नियुक्त करें। सभी अमात्यों को को यह स्वीकृत है। कहिए, आपकी क्या राय है ?' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसको शुचिचित्त समझना चाहिए। गुप्तभय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही 'भयोपधा' कहते हैं

(६) जो अमात्य धर्मपरीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी) तथा कण्टकशोधन (फौजदारी कचहरी) सम्बन्धी कार्यों मे नियुक्त करना चाहिए। अर्थपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता (टैक्स कलक्टर) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के पदों पर रखना चाहिए कामोपधा में परीक्षित अमात्यों को बाहरी विलास-स्थानों तथा भीतरी अन्तःपुर-सम्बन्धी रक्षा का भार सौंपना चाहिए। भयपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त जो अमात्य सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हों उन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए; और सभी परीक्षाओं में असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जंगलों आदि की परिश्रम-साध्य व्यवस्था का भार सौंपना चाहिए।

(७) सभी पुरातनअर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यही अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुकूल कार्यभार सौंपना चाहिए।'

(८) किन्तु, इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का एक संशोधन यह है कि 'अमात्यों की परीक्षा

अवश्य ली जाय; पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनाये।

(९) क्योंकि कभी-कभी किसी निर्दोष अमात्य को छल-प्रपंचयुक्त इन गुप्त-रीतियों से ठगा जाना, पानी में विष घोल देने के समान हो जाता है। सम्भव हो सकता है कि उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी सुधर न सके। क्योंकि :

(१०) छल-छदम् जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गये चरित्रवान् पुरुष की बुद्धि तब तक चैन नही लेती, जब तक उसने अभीष्ट को प्राप्त न कर लिया हो।

(११) इसलिए सर्वोत्तम यही है कि उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा, किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अमात्यों के शौचाशौचज्ञान नाम का नवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १०

गूढपुरुषोत्पत्तिः

(१) उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत्। कापटिकोदास्थितग हपतिवैदेहकतापसव्य जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च।

(२) परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः। तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात्-राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति।

(३) प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः। स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत्। कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात्। व त्तिकामांश्चोपजपेत्-एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति। सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वसं वर्गमुपजपेयुः।

(४) कर्षको व त्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो ग हपकतिकव्य जनः। स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।

(५) वाणिजको व त्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्य जनः। स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।

(६) मुण्डो जटिलो वा व त्तिकामस्तापसव्य जनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात्, गूढमिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुः - असौ सिद्धः सामेधिक इति। समेधाशास्तिभिश्चा-भिगतानमङ्विद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजने वसितान्यादिशेदल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टिदानं विदेशप्रव त्तिज्ञानम् इदमद्य रवो वा भविष्यतीदं वा राजा करिष्यतीति।

(७) तदस्य गूढाः सत्रिणश्च संवादयेयुः। सत्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसम्पन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च। मन्त्री चैषां व त्तिकर्मभ्यां वियतेत।

(८) ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत्, अकारणक्रुद्धान् तूर्ष्णीदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च।

(६) पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राशा राजोपजीविनाम्।

जानीयुः शौचमित्येताः प च संस्थाः प्रकीर्तिताः।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमे धिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तिर्नाम दशमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) धर्मोपधा आदि उपायों के द्वारा अमात्यवर्ग की परीक्षा कर लेने के अनन्तर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करे। कापटिक, उदास्थित, ग हपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद ओर भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं।

(२) दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ और विद्यार्थी की वेषभूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर

तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो।'

(३) बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है। वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर, वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है। उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करे, उन्हें सब तरह से अपने वश में कर ले और उनसे कहे 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। जब तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आये, यहाँ उपस्थित हो जाना।' दूसरे संन्यासी भी अपने-अपने संप्रदाय के संन्यासियों को इसी प्रकार समझा-बुझा दें।

(४) बुद्धिमान्, पवित्र ह्रदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को 'ग हपतिक' कहते हैं। वह कृषिकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर के ही समान कार्य करे।

(५) बुद्धिमान, पवित्र ह्रदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'वैदेहक' है। वह व्यापारकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

(६) जीविका के लिए सिर मुँड़ाये या जटा धारण किये हुये, राजा का कार्य करने वाला गुप्तचर ही 'तापस' है। वह कहीं नगर के समीप ही बहुत से मुंड या जटिल विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे। वैदेहक तथा उसके अनुचर उसकी पूजा-अर्चना करें। शिष्यमण्डली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्य-वक्ता और लौकिक शक्तियों से सम्पन्न है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आगे हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बताये। ऐसा भी बताये कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह, आग लगने, चोरी हो जाने, दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातें भी उनको बताये।

(७) इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में 'तापस' गुप्तचर की दूसरे सत्री आदि गुप्तचर सहायता करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि धीर, बुद्धिमान्, चतुर लोग हों तो उनसे वह, राजा की ओर से, धन प्राप्त होने की बात कहे; मन्त्री के साथ भी उनकी मुलाकात का संयोग बताये। जब मंत्री से इन लोगों की मुलाकात हो तो उचित यह होगा कि ऐसे लोगों को मंत्री धन तथा आजीविका आदि देकर, गुप्तचर की भविष्यवाणी को सच्ची सिद्ध कर दे।

(८) जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए हों उन्हें धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट किया जाए। जो बिना कारण ही क्रुद्ध हों तथा राजा से द्वेष रखते हों, उनका चुपचाप वध करवा डाले।

(९) इस प्रकार धन और मान से राजा द्वारा सम्मानित गुप्तचर तथा अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषों के सद्व्यवहारों को भली-भाँति जान लें। पाँच प्रकार के गुप्तचर पुरुषों की नियुक्ति और उनके कार्यों के विवरण का यही विधान है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में गुढपुरुषोत्पत्ति नाम का दसवां अध्याय समाप्त।

अध्याय ११

गूढपुरुषप्रणिधिः

(१) ये चास्य सम्बन्धिनो वश्यभर्तव्यास्ते लक्षमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः संसर्गविद्या वा।

(२) ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्याले वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः।

(३) ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः।

(४) परिव्राजिका व त्तिकामा दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत्। एतया मुण्डाव षल्यो व्याख्याताः। इति स चाराः।

(५) तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिक-प्रशास्त समाहर्त सन्निधात प्रदेष्ट नायक- पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्ष-दण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत्।

(६) तेषां बाह्यं चारं छत्रभ ङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणस्तीक्ष्णा विद्युः। तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः।

(७) सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः। तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः।

(८) संस्थानामन्तेवासिनः संज्ञालिपिभिश्चारस चारं कुर्यः। न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः।

(६) भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापित व्य जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः। दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम्।

(१०) त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा।

(११) कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थं, त उभयवेतनाः।

(१२) ग हीतपुत्रादारांश्च कुर्यादुभयवेतनान्
तांश्चारिप्रहितान् विद्यात् तेषां शौचं च तद्विधैः।।

(१३) एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान्।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि।।

(१४) अन्तर्ग हचरास्तेषां कुब्जवामनषण्डकाः।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः।।

(१५) दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः।।

(१६) वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः।
परप्रव त्तिज्ञानार्थाः शीघ्राश्चारपरम्पराः।।

(१७) परस्य चैते बोद्धव्यास्ताद शैरेव ताद शाः।

चारस चारिणः संस्था गूढाश्चागूढसंज्ञिताः।।

(१८) अकृत्यान् कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान् कार्यहेतुभिः।

परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वायसेत्।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणे गूढपुरुषप्रणिधिर्नाम एकादशमो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) जो राजा के सम्बन्धी न हों; किन्तु जिनका पालन-पोषण करना राजा के लिए आवश्यक हो; जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण; इन्द्रजाल; धर्मशास्त्र; शकुनशास्त्र; पक्षिशास्त्र; कामशास्त्र तथा तत्संबंधी नाचने-गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' कहलाते हैं।

(२) अपने देश में रहने वाले ऐसे व्यक्ति, जो द्रव्य के लिए अपने प्राणों की परवाह न करके हाथी, बाघ और सांप से भी भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

(३) अपने भाई-बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले, क्रूर प्रकृति और आलसी स्वभाव के व्यक्ति 'रसद' विष देने वाले कहलाते है।

(४) आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ, विधवा, दबंग, ब्राा्ह्मणी, रनिवास में सम्मानित, प्रधान अमात्यों के घर में प्रवेश पानेवाली 'परिव्राजिका' संन्यासिनी के वेश में खुफिया का काम करने वाली नाम की गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी) और व षली (शूद्रा) आदि नारी गुप्तचरियों को भी जान लेना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

(५) राजा को चाहिए कि वह, इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढिदार, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार नगरमुखिया, खदान-निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेना-रक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और अटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके नियुक्त करे।

(६) उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देखरेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने। तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी हुई बातों को सत्र नामग गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बता दे।

(७) सूद (रसोइया), आरालिक (मांस पकाने वाला), स्नापक (नहलाने वाला), संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), आस्तरक (विस्तर बिछाने वाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (श्रृंगार करने वाला) और उदक-परिचारक (जल भरने वाला) आदि विभिन्न वेष में रह कर रसद नामक गुप्तचर, मन्त्री आदि उच्च अधिकारियों के भेदों का पता लगाये। इसी प्रकार कुबड़े, बौने, किरात (जंगली आदमी), गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले, आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सब रहस्यों का पता ले। भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला को चाहिये कि वह रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे।

(८) संस्थाओं के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचावें। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर बिल्कुल न जानने पावें।

(९) यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो यह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असंभव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके व द्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता ने मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयंकर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने आग लगाकर या किसी को जहर देकर चुपचाप बाहर निकल आवे।

(१०) परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचारों को लायें तो उन्हें या तो नौकरी से अलग कर दिया जाये अथवा चुपचाप पिटवाया जाये।

(११) उक्त गुप्तचरों के अतिरिक्त 'कंटकशोधन' प्रकरण में आगे बताये गए गुप्तचरों को भी नियुक्त करना चाहिये। ऐसे गुप्तचर विदेशों में जाकर वहां की सरकार के वेतनभोगी नौकर बनें और उनके गुप्त रहस्यों को समझें। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष दोनों ओर से वेतन लें।

(१२) उभयवेतनभोगी इस प्रकार के गुप्तचरों से सम्बन्ध में विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह उनके स्त्री-बच्चों को सत्कारपूर्वक अपने आधीन रखे। शत्रु की ओर से नियुक्त इस प्रकार के उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की भी राजा जानकारी रखे और उनके माध्यम से अपने उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की भी परीक्षा करता रहे।

(१३) इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिये कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट; सभी स्थानों पर, अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे।

(१४) इसके अतिरिक्त उन शत्रु, मित्र, मध्यम आदि राजाओं के घरों तथा उनके मन्त्री, पुरोहित आदि के घरों में भी काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियां, गूंगे तथा दूसरे दूसरे प्रकार के बहानों को लेकर म्लेच्छ जाति के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए।

(१५) किलों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, राज्य के अन्तर्गत अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों को और राज्य की सीमा पर चरवाहों, को गुप्तचर वेष में नियुक्त करना चाहिये।

(१६) जंगल में शत्रु की प्रत्येक गतिविधि का पता लगाने के लिए चतुर, वानप्रस्थी ओर जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए।

(१७) इस प्रकार, प्रकट रूप से सामान्य स्थिति में रहते हुए, शत्रु की ओर से नियुक्त सभी, तीक्ष्ण, कापटिक, उदास्थित आदि गुप्तचरों को अपने वर्ग के अनुसार ही पहचाने।

(१८) शत्रु के किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को, शत्रु के गुप्तचरों का पता लगाने के लिए, राज्य की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें शत्रुपक्ष के लोगों को स्ववश करने के उपाय भी बता देने चाहिएं।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में गूढ़पुरुषप्रणिधि नाम का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १२

स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम्

(१) कृतमहामात्यापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत्।

(२) सत्त्रिणो द्वन्द्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः - सर्वगुणसम्पन्नश्चायं राजा श्रूयते। न चास्य कश्चिद् गुणो द श्यते यः पौरजानपदान् दण्डकाराभ्यां पीडयति इति।

(३) तत्र ये नुप्रशंसेयुः, तानितरस्तं च प्रतिषेधयेत् - मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः। तेन भ ता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहाः। तेषां किल्विषं दण्डकरा हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च प्रजानाम्। तस्मादु छषड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति - तस्यैतद् भागधेयं यो स्मान् गोपायतीति। इन्द्रयमस्थानमेतद् राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः। तानवमन्यमानं दैवो पि दण्डः स्प शति। तस्माद् राजानो नावमन्तव्या इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत्।

(४) किंवदन्तीं च विद्युः।

(५) ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति, तैरुपकुर्वन्ति व्यसने अभ्युदये वा, कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्ति, अमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति, तेषां मुण्डजटिलव्य जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः।

(६) तुष्टान् भूयः पूजयेत्। अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत्। परस्पराद्वा भेदयेदेनान् सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च। तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत्। विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत्। गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् परेषामास्पदभयात्।

(७) क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। तेषां कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकव्य जनाः परस्पराभिसम्बन्धम् अमित्रप्रतिसम्बन्धं वा विद्युः।

(८) तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेददण्डैः साधयेत्।

(९) एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात् संरक्षेत् प्रधानान् क्षुद्रकानपि।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणे कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं नाम द्वादशो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) राजा को चाहिए कि महामंत्री, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचर नियुक्त करने के पश्चात् वह अपने प्रति प्रजाजनों तथा नगरनिवासियों का अनुराग-द्वेष जानने के लिए वहाँ भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे।

(२) पहले तो गुप्तचर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगें; और बाद में वे तीर्थस्थानों, सभा-सोसाइटियों, खाने-पीने की दूकानों, राजकर्मचारियों के बीच, तथा नाना प्रकार के लोगों में ये कहकर वाद-विवाद करें कि 'यह राजा तो सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है; किन्तु इसमें कोई भी सद्गुण नहीं दिखाई दे रहा है। उल्टा वह नगरवासियों को दण्ड देकर एवं कर वसूली करके पीड़ा पहुँचा रहा है।

(३) उसके बाद सुनने वालों की उचित-अनुचित प्रतिक्रिया को ताड़ता हुआ दूसरा गुप्तचर उसके विरोध में यों कहे-'देखो, जैसे छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, पुराकाल में वैसे ही बलवान् लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था। इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा नियुक्त किया; और तभी से खेती की उपज का छठा भाग, व्यापार की आमदनी का दसवां भाग तथा थोड़ा-सा सुवर्ण राजा के लिए, कर रूप में निर्धारित भी कर दिया था। प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को पाकर राजाओं ने प्रजा के योगक्षेम का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया। इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा के उत्पीडनों को दूर करने में सहायक होते हैं और प्रजा की भलाई एवं कल्याण के कारण सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि जंगलों में एकान्त जीवन बिताने वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके बीने हुए अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं; यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उन पर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, निश्चित ही, उस पर दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं। यही कारण है, जिनको द ष्टि में रख कर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।' इत्यादि बातों को कह कर राजा की निन्दा करने वालों को रोक दें।

(४) गुप्तचरों के लिए आवश्यक है कि वे अफवाहों पर भी ध्यान दें।

(५) जो लोग धान्य पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं; विपत्ति और अभ्युन्नति के समय उसकी सहायता करते हैं; राजा के प्रति क्रुद्ध भाई तथा कुपित प्रजा को जो शान्त कर देते हैं; उनकी प्रसन्नता और उनक`कोप पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

(६) जो लोग राजा से संतुष्ट हों उन्हें धन और मान द्वारा और भी संतुष्ट करना चाहिए। जो किसी कारण अप्रसन्न हैं,उन्हें भी प्रसन्न करने के लिए धन आदि देना चाहिए; सान्त्वना भी देनी चाहिए; न हो तो इन असंतुष्ट व्यक्तियों में आपसी कलह करा दे; सामन्त, आटविक एवं उनके सम्बन्धियों से भी इनकी फूट डाल दे। इन उपायों के बावजूद भी यदि वे असंतुष्ट ही बने रहें तो राजा को चाहिए कि अपने दण्डसम्बन्धी या करसम्बन्धी अधिकारों द्वारा वह सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ उनका द्वेष करा दे। जब सारा जनपद उनका द्वेषी हो जाय तब या तो चुपचाप ही उनका वध करवा दिया जाए अथवा असन्तुष्ट जनपद से ही उनका दमन करा दिया जाये।

(७) इन लोगों के दमन के लिए एक दूसरा तरीका यह भी है कि राजा उनके स्त्री-बच्चों को अपने अधिकार में कर ले और उन्हें खदान के कार्य में भेज दिया जाये। क्योंकि ऐसा भी संभव है कि ये असंतुष्ट लोग शत्रुपक्ष में जाकर मिल जाये। प्रायः ऐसा देखा गया है कि क्रोधी, लोभी, डरपोक और अपमानित लोग सहज ही शत्रु के वश में हो जाते हैं।

(८) जो व्यक्ति सन्तुष्ट हों, राजा उन्हें और भी धन-मान से सत्कृत करे। किन्तु असन्तुष्ट व्यक्तियों को साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे भी बन पड़े, अपने वश में करे।

(६) इस प्रकार बुद्धिमान् राजा को चाहिए कि अपने राज्य के छोटे-बड़े कृत्य अकृत्य लोगों को वह, किसी भी प्रकार, शत्रु के पक्ष में जाने से रोके।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में स्वविषयक कृत्याकृत्यपक्षरक्षण नाम का बारहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १३

परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः

(१) कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः परविषये वाच्यः।

(२) संश्रुत्यार्थान विप्रलब्धः, तुल्यकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितः, वल्लभावरुद्धः, समाहूय पराजितः, प्रवासोपतप्तः, कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः, स्वधर्माद् दायाद्याद् वोपरुद्धः, मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः, कुल्यैरन्तर्हितः, प्रसभामिम ष्टस्त्रीकः, काराभिन्यस्तः, परोक्तदण्डितः, मिथ्याचारवारितः, सर्वस्वमाहारितः, बन्धनपरिक्लिष्टः, प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः।

(३) स्वयमुपहतः, विप्रकृतः, पापकर्माभिख्यातः, तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः, पर्यात्तभूमिः, दण्डेनोपहतः, सर्वाधिकरणस्थः, सहसोपचितार्थः, तत्कुलीनोपाशंसुः, प्रद्विष्टो राज्ञा, राजद्वेषी चेति भीतवर्गः।

(४) परीक्षीणो त्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः।

(५) आत्मसम्भावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासन्तुष्ट इति मानिवर्गः।

(६) तेषां मुण्डजटिलव्यजनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत्।

(७) यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत् सर्वं प्रम द्गात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्ध ाो राजा न्धेन मन्त्रिणा धिष्ठितः, पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः। शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुम् अमर्षः क्रियताम् - इति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत्।

(८) यथा लीनः सर्पो यस्माद् भयं पश्यति तत्र विषमुत्स जत्येवमयं राजा जातदोषाशङ कस्त्वयि पुरा क्रोधविषम त्स जति। अन्यत्र गम्यताम्-इति भीतवर्गमुपजापयेत्।

(९) यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्यः, एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसम्पन्नेभ्यः। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः सेव्यताम्-इति लुब्धवर्गमुपजापयेत्।

(१०) यथाचण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम्। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः, तत्र गम्यताम्-इति मानिवर्गमुपजापयेत्।

(११) तथेति प्रतिपन्नांस्तान् संहितान् पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान् स्वकर्मसु।।

(१२) लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान् भेददण्डाभ्यां परद्वोषांश्च दर्शयेत्।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणे परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः त्रयोदशो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार सुरक्षित अथवा संगठित रखना चाहिए, इसका प्रतिपादन किया जा चुका है। शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार अपने वश में करना चाहिए, अब इसका वर्णन किया जाता है।

(२) जिसको धन देने की प्रतिज्ञा करके धन न दिया गया हो; किसी शिल्प या उपकार सम्बन्धी

कार्यों को समान रूप से करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का तो सम्मान किया गया हो और दूसरे की अवमानना की गई हो; राजा के विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसको राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो; स्वयं बुलाकर जिसका तिरस्कार किया गया हो; राजाज्ञा से प्रवासित होने के कारण दु:खित, व्यय करके भी जिसका अभीष्ट कार्य पूरा न हुआ ओ, जिसको अपने धर्म तथा अधिकार से रोका गया हो; सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण पद से जिसको च्युत किया गया हो; राजपुरुषों द्वारा जिसको बदनाम किया गया हो; जिसकी स्त्री को जबरदस्ती छीन लिया गया हो; जिसको जेल में ठूंस दिया गया हो; दूसरे के कहने मात्र से जिसको दण्ड दिया गया हो; झूठा इलजाम लगाकर जिस पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया हो; जिसका सर्वस्व अपहरण किया गया हो; अशक्त कार्यों पर नियुक्त करके जिसको पीड़ित किया गया हो और जिसके बन्धु-बान्धवों को देश-निकाला दिया गया हो-इस प्रकार के सभी लोग 'क्रुद्धवर्ग' कहलाते हैं।

(३) किसी लोभ के कारण हिंसा करके जो दूषित हो चुका हो; पाप कर्मों को करने में जो कुख्यात हो; अपने समान अपराधी को दण्डित हुआ देखकर जो घबड़ा गया हो; भूमि का अपहरण करने वाला; जो दण्ड के द्वारा वश में किया गया हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो; अपनी कार्यक्षमता से जिसने प्रभूत धन एकत्र कर लिया हो; जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट कुछ कामना से रहता हो; जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता हो-इस प्रकार से सभी लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

(४) जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया हो; जो कायर, व्यसनी और अपव्ययी हो, वह 'लुब्धवर्ग' कहलाता है।

(५) अपने को महान् समझने वाला; आत्मश्लाघी; शत्रु के सम्मान को सहन न करने वाला; नीच लोगों द्वारा प्रशंसित; तीक्ष्णप्रकृति; साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होने वाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

(६) उक्त क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के लोगों में से जिस मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो-जो भक्त हों उसको वही गुप्तचर अपने वश में करे।

(७) गुप्तचर, क्रुद्धवर्ग के लोगों को उनके स्वामी से यह कह कर फोड़े, 'देखो, जैसे उन्मत्त पीलवान से चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जो कुछ भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी आँखों से हीन, अपने अंधे मंत्री के साथ रहता हुआ यह राजा राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। ऐसी अवस्था में इस राजा के प्रति तुम्हें कुपित होना चाहिए।' यह कहकर क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ दे।

(८) भीतवर्ग को अपने वश में करने क लिए गुप्तचर ऐसा कहे-'देखो, जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने वाला है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह कह कर भीतवर्ग का भेदन करे।

(६) लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर यों कहे, 'देखो जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए ही दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार राजा भी बल, बुद्धि और वाक्शक्ति से हीन लोगों के लिए लाभदायक है, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसके विपरीत अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, तुम्हें उसी के आश्रय में रहना चाहिए।' इस प्रकार लुब्धवर्ग को मिलाये।

(१०) मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर कहे 'देखो, जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार नीच राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे

जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करने वाला है। तुम्हें उसी के आश्रम में जाकर रहना चाहिए।' इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे।

(११) इस प्रकार राजा अपने पक्ष में किये गये पुरुषों को शपथ, संधि आदि से विश्वास दिला कर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त करे, जिन पर वे नियुक्त थे; किन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को अवश्य रखे।

(१२) इस प्रकार राजा, शत्रुदेश में कृत्यपक्ष के पुरुषों को साम तथा दाम के द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु अकृत्यपक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करतेरहें और उनके सामने शत्रु के दोषों की निरन्तर चर्चा करते रहें।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में परविषयक कृत्याकृत्यपक्षोगपग्रह नामक तेरहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १४

मन्त्राधिकार:

(१) कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत्। मन्त्रपूर्वा सर्वारम्भाः।

(२) तदुद्देशः संव तः कथानामनिःस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात्। श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः। तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् उच्छिद्येत मन्त्रभेदी।

(३) मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम्। इङ्गितमन्यथाव त्तिः। आकृतिग्रहणमाकारः।

(४) तस्य संवरणम् आयुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति। तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः प्रच्छन्नो वमतो वा मन्त्रं भिनत्ति। तस्माद् रक्षेन्मन्त्रम्।

(५) मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च। तस्माद् गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः। मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति। तेषामप्यन्ये। सैषा मन्त्रिपरम्परा मन्त्रं भिनत्ति।

(६) तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म कि चिच्चिकीर्षितम्।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा।।

(७) नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः। प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजव त्तिः। अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयबलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशद ष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत्। तस्माद् बुद्धिव द्धैः सार्धमासीत मन्त्रम्।

(८) न क चिदवमन्येत सर्वस्य श णुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद् वाक्यमुपयु जीत पण्डितः।।

(९) एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः। यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः प च्छेत् ' कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत् तत् कथं कर्तव्यमिति। ते यथा ब्रूयुः तत् कुर्यात्। एवं मन्त्रोपलब्धिः संव तिश्च भवतीति।

(१०) नेति पिशुनः। मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं व त्तमव त्तं वा प ष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा। स दोषः। तस्मात् कर्मसु ये येष्वभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत्। तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभत इति।

(११) नेति कौटिल्यः। अनवस्था ह्येषा। मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा। सह मन्त्रयेत। मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत्। एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति। द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवग ह्यते, विग हीताभ्यां विनाश्यते। त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम्। उपपन्नं तु भवति। ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते, मन्त्रो वा रक्ष्यते।

(१२) देशकालकार्यवशेन त्वेकेनसह द्वाभ्यामेको वा यथासामर्थ्यं मन्त्रयेत।

(१३) कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद् देशकालविभागः विनिपातप्रतीकारः कार्यकसिद्धिरिति प चाङ्गो मन्त्रः। तानेकैकशः प च्छेत् समस्तांश्च। हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात्। अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत्। न दीर्घकालं मन्त्रयेत। न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात्।

(१४) मन्त्रिपरिषदं द्वादशामत्यान् कुर्वीतेति मानवाः।

(१५) षोडशेति बार्हस्पत्याः।

(१६) विंशतिमित्यौशनसाः।

(१७) यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः।

(१८) ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः। अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्। अनासन्नैः सह पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत। इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषद षीणां सहस्रम्। स तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः।

(१९) आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कुर्वतश्च :-

(२०) नास्य गुह्यं परे विद्युश्छिद्रं विद्यात् परस्य च।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद् विव तमात्मनः।।

(२१) यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणे मन्त्राधिकारो नाम चतुर्दशो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) अपने देश और शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को वश में करने के उपरान्त विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह अपने देश में दुर्ग आदि तथा शत्रुदेश के सम्बन्ध में संधि-विग्रह आदि कार्यों पर विचार करे। इस प्रकार के सभी कार्यो ं को गंभीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही आरम्भ करना चाहिए।

(२) जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय वह चारों ओर से इस प्रकार बन्द होना चाहिए जिससे वहां पक्षी तक न झांक सके और कोई शब्द बाहर न सुनाई दे, क्योंकि अनुश्रुति है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसको मरवा देना चाहिए।

(३) कभी-कभी बिना कहे ही दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त भेद प्रकट हो जाते हैं। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएं 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं के प्रकट करने वाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं।

(४) इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता तब तक अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे। मंत्रियों की असावधानी के कारण या मद्यपान की बेहोशी में अथवा सोते समय आकस्मिक प्रलाप द्वारा या विषय-भोग की लालसा के अथवा अभिमान के भाव से गुप्त मंत्रणाएं समय से पहिले प्रकट हो जाती हैं। आड़ में छिपकर सुननेवाले अथवा मन्त्रणाकाल में मूर्ख कहकर अपमानित हुआ व्यक्ति भी मन्त्र के भेद को फोड़ देता है। इसलिए इन सभी बातों को द ष्टि में रखकर राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त रहस्यों की सावधानी से रक्षा करे।

(५) आचार्य भारद्वाज का सुझाव है कि 'मन्त्र के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे; क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे लोग परामर्शदाता होते हैं इसलिए इस मन्त्रि-परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है।

(६) 'इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।'

(७) आचार्य विशालाक्ष कुछ संशोधन के साथ अपना विचार प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि 'एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियां की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चितकार्य को द ढ़ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह विचारना इत्यादि सभी बातं मन्त्रियों कें सहयोग से ही पूरी कह जा सकती हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर विचार करना चाहिए।

(८) 'राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अवमानित न करे; सबकी बातों को ध्यापनूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे।'

(६) आचार्य पराशर के मतावलम्बी विद्वानों का कहना है कि 'आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो सकता है, मन्त्र की रक्षा नहीं। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध मे वह मन्त्रियों से पूछे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। इस पर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी।'

(१०) आचार्य पिशुन अर्थात् नारद इस मन्तव्य को नहीं मानते। उनकी स्थापना है 'क्योंकि इस तरह प्रकारान्तर से मन्त्रियों के सम्मुख किसी बात को रख देने से वे समझने लगते हैं कि राजा हमारी सलाह नहीं मानता और उसका हम पर विश्वास नहीं है। इसलिए वे पूर्वघटित एवं अघिटित विषय पर लापरवाही से उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं। यह तो मन्त्र के लिए बड़ा दोष है। इसलिए राजा को यही उचित है कि जो लोग जिन-जिन कार्यों पर नियुक्त एवं जिन-जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ वैसी सलाह करे। ऐसा करने से मन्त्रणा में अधिक परिमार्जन हो जाता है ओर उसकी सुरक्षा भी हो जाती है।

(११) आचार्य कौटिल्य उक्त मत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'नारदमुनि की बताई हुई युक्तियों के अनुसार मन्त्र व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो कोई असंभव नहीं कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायें तो सारी मंत्रणा ही धूल में मिल जायेगी। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायं तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।'

(१२) इसलिए देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों के साथ भी राजा मन्त्रणा करे। अपनी विचार-शक्ति के अनुसार वह अकेला बैठकर कुछ कार्यों का स्वयं ही निर्णय करे।

(१३) मंत्र के पाँच अंग होते हैं : १- कार्यारम्भ करने का उपाय, २- पुरुष तथा द्रव्य-सम्पत्ति, ३- देश-काल का विभाग, ४- विध्न-प्रतीकार और ५- कार्यसिद्धि। मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-भाँति समझ-बूझ जाने पर अविलंब ही वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर दे। किसी कार्य को अधिक समय तक विचारते रहना उचित नहीं है। जिन लोगों का कभी अपकार किया हो, उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए।

(१४) मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(१५) ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् 'सोलह मन्त्रियों' के पक्ष में हैं।

(१६) शुक्राचार्य-पक्ष के आचार्य मन्त्रियों की संख्या 'बीस' रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

(१७) आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।'

(१८) वे निर्धारित मन्त्री विजिगीषु राजा के और उसके शत्रु राजा के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गये हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-संमार्जन करें। निष्कर्ष यह है कि विभागीय अध्यक्ष अपने-अपने कार्यों को अंत तक अधिकाधिक निपुणता से सम्पन्न करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, जो कि उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला (सहस्राक्ष) कहा गया है।

(१९) अत्यावश्यक कार्य के आ जाने पर राजा, मन्त्रि-परिषद् का आयोजन कर उससे परामर्श करे। उनमें से बहुसमर्थित तथा शीघ्र ही कार्यसिद्धि कर देने वाली राय के अनुसार कार्य सम्पादन करे।

(२०) इस ढंग से कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जा पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों को भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है।

(२१) जिस प्रकार वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण किसी श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में मन्त्राधिकार नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १५

दूतप्रणिधिः

(१) उद्‌ध तमन्त्रो दूतप्रणिधिः अमात्यसम्पदोपेतो निस ष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः।

(२) सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत। शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यम्— एवमतिसन्धातव्यमित्यधीयानो गच्छेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत्। अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत। दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारव त्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत। पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्। शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् प्राणाबाधे पि द ष्टे। परस्य वाचि वक्त्रे द ष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कार-मिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत् तुष्टस्य। विपरीतमतुष्टस्य। तं ब्रूयात्—वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारः तेषामन्तावसायिनो प्यवध्याः, किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः। परस्यैतद् वाक्यमेष दूत धर्म इति।

(३) वसेदविस ष्टः; पुपूजया नोत्सिक्तः; परेषु बलित्वं न मन्येत; वाक्यमनिष्टं सहेत; स्त्रियः पानं च वर्जयेत्; एकः शयीत; सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं द ष्टम्। कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौभर्तरि रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्य जनाभ्यामुपलभेत। तयोरन्ते-वासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्य जनोभयवेतनैर्वा, तेषामसम्भाषायां चाचकमत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः पुण्यस्थानदेवग हचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत। उपलब्धस्योपजापमुपेयात्। परेण चोक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत। सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात्, कार्यसिद्धिकरं वा।

(४) कार्यस्य सिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत्। किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन्, स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः, पार्ष्णिग्राहासारावन्तः— कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः, सस्यकुप्यपण्यसङ्ग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः, स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकाङ्क्षमाणः, परिभवप्रमदाभ्यां वा, संसर्गानुबन्धार्थी वा मामुपरुणद्धीति ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा। प्रयोजनमिष्टमवेक्षेत वा। शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविस ष्टो प्यपगच्छेत्। अन्यथा नियम्येत।

(५) प्रेषणं सन्धिपालत्वं प्रतापो मित्रसङ्ग्रहः।
उपजापः सुहृद्भेदो दण्डगूढातिसारणम्।।
बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः।।

(६) स्वदूतैः कारयेदेतत् परदूतांश्च रक्षयेत्।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां द श्याद श्यैश्च रक्षिभिः।।

इति कौटिल्यार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणे दूतप्रणिधिर्नाम प चदशो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) गुप्त मन्त्रणा के निश्चित होजाने पर ही दूत को शत्रुदेश की ओर भेजना चाहि। दूत तीन प्रकारके होते हैं १- निस ष्टार्थ, २-परिमितार्थ और ३-शासनहर। अमात्य के पूर्वोक्त गुणों से

सम्पन्न निस ष्टार्थ, उनमें एक चौथाई गुणहीन परिमितार्थ और आधा गुणहीन शासनहर कहलाता है।

(२) पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिये। दूत को पहिले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिये कि 'मैं अपने स्वामी का सन्देश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-किन विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा।' आदि-आदि। राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा जनपदवासियों से मित्रता गांठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग बने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएं, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्तव्य है। किसी शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत, उस राजा की आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का संदेश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, द ष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने पर भी दूत सही संदेश ही निवेदित करते हैं। कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है, उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध से सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। दूसरे की कही हुई बात को ही दुहरा देना मात्र दूत का कार्य होता है।'

(३) जब तक शत्रुराजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। शत्रुराजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे। शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान् न समझे। किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले। स्त्री-प्रसंग और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अपने स्थान में एकाकी ही शयन करे। मद्य पीने तथा दूसरों के साथ शयन करने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। दूत को चाहिए कि वह शत्रु-देश के कृत्यपक्ष को फोड़ देने का कार्य तथा अकृत्यपक्ष को वश में कर देने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि उच्चाधिकारियों का पारस्परिक राग-द्वेष तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा अवगत करे। अथवा तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों, चिकित्सक तथा पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों या उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रुराजा के रहस्यों का पता करता रहे। यदि इन गुप्तचरों से भी काम बनता न देखे तो, भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु के कार्यों का पता लगाता रहे। तीर्थस्थानों, देवालयों, ग हचित्रों तथा लिपिसंकेतों द्वारा भी वह वहाँ के व त्तान्त जाने। ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे। दूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपने मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे। 'आप तो सर्वज्ञ हैं' इतना कहकर बात को टाल दें। यदि इतना बताने पर भी शत्रुराजा

को सन्तोष न हो तो उतना मात्र परिचय देना चाहिए, जितने से अपने कार्य की सिद्धि हो जाये।

(४) कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रुराजा दूत को अपने ही यहाँ रोके रखना चाहता है, तो दूत को, राजा की इस अप्रत्याशित नीति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। उसको विचार करना चाहिए कि 'क्या शत्रुराजा को मेरे स्वामी पर आने वाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है। या कि वह मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है। अथवा वह पार्ष्णिग्राह (स्वामीराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र) तथा आसार (शत्रुराजा के मित्र का मित्र) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता। या उसका इरादा मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित करने का तो नहीं है। या कि वह किसी आटविक को भिड़ाने का षड्यंत्र तो नहीं रच रहा है। उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र (स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा) तथा आक्रंद (स्वामिराजा के प ष्ठप्रदेश का मित्र राजा) आदि मित्र राष्ट्र ों के राजाओं को मरवाना चाहता हो। या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है। या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है। अथवा वह युद्ध की तैयारी के लिए धातुसंग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है। या वह सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है। अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है।' इस प्रकार के रहस्यों, कारणों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में दूत अच्छी तरह से छानबीन करे। रोके जाने के कारणों का ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह उचित समझे तो रुके अन्यथा वहाँ से चल दे। अपने स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि के लिये वह चाहे तो उसी नगर में रुककर, गुप्त पुरुषों के द्वारा राजा तक सूचनाएं पहुँचा कर, उनका प्रतीकार करवावे। अपने स्वामी का ऐसा संदेश, जिसको सुनकर शत्रुराजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिये ही वहाँ से कूच कर देना चाहिये अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

(५) शत्रुप्रदेश में अपने स्वामी का संदेश लेकर जाना; शत्रुराजा का संदेश लाने के लिए जाना, सन्धिभाव को बनाये रखना, समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना, अधिक से अधिक मित्र बनाना, शत्रु के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों को उसके विमुख कर देना, तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बांधवों एवं रत्नों का अपहरण कर लेना, शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत-रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन उच्चाटन आदि का प्रयोग करना, ये सभी दूत के कार्य हैं।

(६) राजा को चाहिये कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रुदूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रुदेश में उनकी सूचनायें गुप्त रूप से संग्रह करवाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दूतप्रणिधि नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १६

राजपुत्ररक्षणम्

(१) रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च। पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च।

(२) दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः।

(३) पुत्ररक्षणं जन्मप्रभ ति राजपुत्रान् रक्षेत्। कर्कटकसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः।

(४) तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः।

(५) न शंसद ष्टवधः क्षत्रविनाशश्चेति विशालाक्षः। तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति।

(६) अहिभयमेतदिति पाराशराः। कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात्। तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति।

(७) औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः। प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात्। तस्मात् स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वसः श्रेयानिति।

(८) वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः। वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात्। तस्मान्मात बन्धुषु वासः श्रेयानिति।

(९) ध्वजस्थानमेदिति वातव्याधिः। तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मात बान्धवा भिक्षेरन्। तस्माद् ग्राम्यधर्मेष्वेनमवस जेयुः। सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति।

(१०) जीवन्मरणमेतदिति कौटिल्यः। काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्यामाद तुसत्यां महिष्याम् ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्त्वायां कौमारभ त्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत। प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात्। समर्थं तद्विदो विनयेयुः।

(११) सत्रिणामेकश्चैनं म गयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत्—पितरि विक्रम्य राज्यं ग हाणेति। तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेद् इत्याम्भीयाः।

(१२) महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनीपदिह्यते तत्तदाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्येत तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति। तस्माद् धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नधर्ममनर्थं च।

(१३) सत्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः। पालयेयुः। यौवनोत्सेकात् परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्य जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः। मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः। द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः। म गयाकामं प्रतिरोधकव्य जनैस्त्रासयेयुः। पितरि विक्रमब द्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः। अप्रार्थनीयो राजा, विपन्ने घातः, सम्पन्ने नरकपातः, संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति।

(१४) विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात्। बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत्। आत्मसम्पन्नं। सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत्।

(१५) बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः। शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान्। उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः। अपायनित्यो धमार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः।

(१६) स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य वियतेत। पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा। व द्धस्तु व्याधितो वा राजा

मात बन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत्। न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत्।

(१७) बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत्।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते।।

(१८) कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमा धिकरणेराजपुत्ररक्षणं नाम षोडशो ध्यायः।

हिन्दी अनुवाद

(१) निकटवर्ती सम्बन्धियों तथा शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है। राजा को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपनी रानियों और अपने पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे।

(२) रानियो से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे निशान्तप्रणिधि प्रकरण में बताये जायेंगे।

(३) अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिऐ कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं।

(४) इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पित भक्ति की भावना न दिखाई दे तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है।'

(५) आचार्य विशालाक्ष इसको पापकर्म कहते हैं। उनका कथन है कि 'निरपराध बच्चों को इस प्रकार मरवा डालना घोर पाप और अतिक्रूरता है, इस प्रकार तो क्षत्रिवंश ही सर्वथा नष्ट हो जायेगा। इसलिए यदि राजकुमारों में पित भक्ति न दिखाई दे तो उन्हें किसी स्थान में कैद करके रखा जाना उचित है।'

(६) आचार्य पराशर के अनुयायी इसके भी विरुद्ध हैं। उनका अभिमत है कि 'यह तो सर्पभय के समान है। जैसे घर में घुसा हुआ सांप भयावह होता है, उसीप्रकार पुत्र को कैद में रखना भी भयप्रद है, क्योंकि राजकुमार को जब चाहे पता चल जायेगा कि पिता ने अपने वध के भय से उसे कैद में डाल रखा है, तो वह पिता के घर में रहता हुआ सरलता से उसके वध की योजना तैयार कर सकता है। इसलिए राज्य की सीमा के दूरस्थ दुर्ग में ही राजकुमार को रखना श्रेयस्कर है।'

(७) आचार्य पिशुन इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना उसी प्रकार भयावह है; जैसे आक्रमण करने से पूर्व मेढ़ा कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगने वेग से झपट पड़ता है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जाएगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर, उसकी सहायता से अपने पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को, राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।'

(८) आचार्य कोणपदन्त की कुछ दूसरी ही स्थापना है। उनकी स्थापना है कि 'राजकुमार को परराज्याश्रित करने का परिणाम यह होगा कि जैसे गाय का बछड़ा दूसरे के हाथ में सौंप देने से इच्छानुसार वह कभी भी गाय को दुह सकता है वैसे ही राजकुमार का संरक्षक पड़ोसी राजा, राजकुमार को अपने वश में करके उचित-अनुचित रीति से इच्छानुसार विजिगीषु से धन आदि ले सकता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित जान पड़ता है।'

(९) आचार्य वातव्याधि इस सलाह पर आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका परामर्श है कि 'राजकुमार को उसके मात कुल में रखना एक ध्वजा के समान है; जिसको मात कुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं,जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार, विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में उलझे हुए राजकुमारों को पिता से द्रोह करने का अवकाश ही नहीं मिलता है।

(१०) आचार्य कौटिल्य इस सिद्धान्त को, जीते-जी राजपुत्रों की हत्या कर देने के समान अनर्थकारी बताते हैं। उनका कहना है 'राजकुमारों को इस प्रकार विषय-भोग में फंसाना उन्हें जीते ही म त्यु के मुख में दे देना है। जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो (संतति की) ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक्, इंद्र और बुहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान किया जाये। जब महारानी गर्भवती हो जाये तो कौमारभ त्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाये। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान् पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जाये तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।

(११) आचार्य आंभ के मतानुयायियों का कहना है कि 'सत्रियों (गुप्तचरो) में से कोई एक सत्री राजकुमार को म गया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दें। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस पर दूसरा सत्री कहे ऐसा करना बहुत बुरा है।'

(१२) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना बहुत ही अनिष्टदायी है। उनका तर्क एवं सुझाव है कि 'सरलमति बालकों में ऐसी कुबुद्धि पैदा करना महादोष कहा जायेगा। जैसे मिट्टी का नया बर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धिवाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की भाँति अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म, अर्थ का ही उपदेश देना चाहिये, अनर्थ का नहीं।'

(१३) सत्री लोग हम आपके ही हैं। इस अपनत्व को दर्शित करते हुए, राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिये कि आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घ ण्य स्त्रियों को रात्रि में एकांत में राजकुमार के निकट भेज कर उसके मन में ऐसी घ णा तथा खिन्नता पैदा करायें कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा फिर जाये। यदि वह मद्य पीने की इच्छा करे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसको दिया जाये, जिससे कि मद्य के लिए उसकी अरुचि हो जाये। यदि वह जुआ खेलने की कामना करे तो छली-कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाये कि आगे से वह जुआ खेलने का नाम भी न ले। यदि वह शिकार खेलना चाहता है तो कपटवेश धारण किये हुये राजपुरुष बेचैन करके उधर से उसके मन को खिन्न कर दे। यदि वह पिता पर आक्रमण करने की इच्छा रखता है तो पहिले तो उसे बढ़ावा दिया जाये किन्तु ऐन मौके पर उससे कहें 'देखो राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये। यदि तुम असफल हो गये तो तुम्हारी म त्यु अवश्यंभावी है और जीत भी गये तो पित घातक होने के कारण तुमको घोर नरक भोगना पड़ेगा, सारी प्रजा तुमको लानत देगी और कोई असंभव नहीं कि एकमत होकर प्रजा तुम्हारा प्राणान्त कर दे। इसलिए तुम्हें इस भयंकर

पाप-कर्म से बचना चाहिए।'

(१४) यदि एक ही राजपुत्र हो, और वह पित द्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिये। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिये, जहाँ कि उचित अन्न-वस्त्र प्राप्त न हों और जहाँ की प्रजा की उसके प्रति कोई सहानुभूति न हो। इसके विपरीत जो राजपुत्र आत्मगुणसम्पन्न हों, उसको सेनापति या युवराज के उच्च पद पर नियुक्त किया जाये।

(१५) राजपुत्रों की तीन श्रेणियां हैं : १- बुद्धिमान्, २- आहार्यबुद्धि और ३- दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ तो लेता है, किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता उसे'आहार्यबुद्धि' कहते हैं। जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है वह 'दुर्बुद्धि' है।

(१६) यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा पुत्र पैदा कराने का यत्न करे, जो राजा बनने के योग्य हो। यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार संभालने के योग्य बनाये। यदि राजा बूढ़ा हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो, तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बंधु से या किसी गुणवान् सामंत से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करवाये। किन्तु अयोग्य अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे।

(१७) यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे। वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करता रहे। यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे।

(१८) अथवा वे सभी भाई मिलकर राज्य को संभालें, क्योंकि यदि राज्य का संचालन सामुदायिक ढंग से हुआ तो निश्चित ही वह राज्य दुर्जय होता है। सामुदायिक राज्य-व्यवस्था से एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक व्यक्ति के व्यसनग्रस्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति उसके कार्य को संभाल लेते हैं और इस प्रकार सदैव प्रजा की सुखमय अवस्था प थ्वी पर बनी रहती है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजपुत्ररक्षण नामक सोलहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १७

अवरुद्धव त्तम्, अवरुद्धे च व त्तिः

(१) राजपुत्रः कृच्छव त्तिरसद शे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत, अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपपातकेभ्यः। पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत्। पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत्। अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत्।

(२) तथा प्यतुष्यन्तमन्यस्मिन् पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्याय आप च्छेत्। बन्धवधभयाद् वा यः सामन्तो न्यायव त्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत। तत्रस्थः कोशदण्ड-सम्पन्न प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धमटवीसम्बन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात्।

(३) एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरुप्यमण्याकरकर्मान्तानाजीवेत्। पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसंयोगेनातिसन्धायावहरेत। पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत्। मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत्। कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्व्य जनसखश्छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात्—अहमसौ कुमारः, सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं, तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति, इत्यवरुद्धव त्तम्।

(४) अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः, माता वा प्रतिग हीता। त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः। अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन म गयया वा प्रसज्य रात्रावुपग ह्यानयेयुः।

(५) उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत्।
एकस्थमथ संरुन्ध्यात् पुत्रवान् वा प्रवासयेत्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे वरुद्धव त्तमवरुद्धे च व त्तिर्नाम सप्तदशो ध्यायः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) अपनी हैसियत से निम्न कार्य पर नियुक्त एवं कठिनाई से जीवन-यापन करने वाले राजपुत्र को चाहिए कि अपने पिता के आदेशों का वह पूर्णतः पालन करे। परन्तु किसी कार्य को करने में यदि प्राणभय, अमात्य आदि प्रकृतियों के कुपित होने का भय अथवा पातकभय हो तो राजपुत्र को चाहिए कि वह पिता के आदेशों का कदापि पालन न करे। किसी पुण्यकार्य में नियुक्त राजपुत्र अपने लिए एक संरक्षक की मांग करे और उसके निर्देशानुसार वह राजा की आज्ञाओं का पालन करे। कार्य के अनुसार उसको जो कुछ फल प्राप्त हो और प्रजाजनों से उसको जो कुछ भी उपहार मिलें, उनको वह पिता के पास भिजवा दें।

(२) इस पर भी यदि राजा संतुष्ट न हो और दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ विशेष स्नेह-प्रेम प्रदर्शित करता रहे तो राजपुत्र को चाहिए कि वह अपने पिता की आज्ञा लेकर तपस्या आदि करने के लिए जंगल में चला जाये अथवा ऐसा करने पर यदि उसको गिरफ्तार होने या मारे जाने का भय हो तो वह ऐसे राजा की शरण में चला जाये, जो न्यायपरायण, धार्मिक, सत्यवादी, धोखा न देने वाला, शरणागत की रक्षा करने वाला और आश्रय में आये हुए व्यक्ति

का स्वागत-सत्कार करने वाला हो। वहाँ रहकर वह धन-बल से सम्पन्न होकर किसी वीर पुरुष की कन्या से विवाह कर ले और तब अपने पिता के आटविक लोगों से मित्रता कर वहाँ के कृत्यपक्ष को अपने साथ मिलाने का यत्न करे।

(३) यदि राजपुत्र को धन बल की उपलब्धि न हो तो वह रासायनिक कर्मों के द्वारा मणि, मुक्ता, सुवर्ण, चाँदी आदि विक्रेय पदार्थों को बनाकर उनके अथवा दूसरे खनिज पदार्थों के व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलाये। अथवा पाखंडी, अधर्मी पुरुषों की संचित कमाई को श्रोत्रिय के अतिरिक्त दूसरे लोगों के भोग्य द्रव्य की, देव-निमित्तक द्रव्य की या किसी धन-सम्पन्न विधवा के द्रव्य की चोरी करके अपना जीविकोपार्जन करे। या जहाजी व्यापारियों को औषधि आदि से बेहोश कर उन्हें धोखा देकर उनके धन का अपहरण करे। अथवा विजिगीषु राजा जब किसी दूसरे गाँव को चला जाये, जब उसके यहाँ से धन का अपहरण करे, अथवा अपनी माता के परिजनों को अपने अनुकूल बनाकर उनके द्वारा अपने उद्धार की चेष्टा करे। अथवा बढ़ई, लुहार, नट, वैद्य, भाट, कथावाचक, पाखंडी आदि पुरुषों के साथ अपने वेश को छिपाकर, किन्तु उनके सद श न बनकर, अपने पिता के दोषों का पता लगाकर उन्हीं को पकड़ कर शस्त्र या जहर के द्वारा राजा को मारकर फिर अमात्य आदि से वह इस प्रकार कहे : 'मैं ही असली राजकुमार हूँ, सांझे में भोगे जाने वाले राज्य को कोई भी अकेले नहीं भोग सकता है, जो राजकर्मचारी पूर्ववत् शान्ति से अपने पदों पर बने रहना चाहते हैं, उन्हें मैं दुगुना वेतन दूँगा।' यहाँ तक नजरबन्द राजकुमार के व्यवहार का निरूपण किया गया।

(४) अमात्य आदि मुख्य पुरुषों के पुत्र गुप्तरूप में जाकर नजरबन्द राजकुमार को यह दिलासा देकर मना ले आवें कि राजा उसको अवश्य ही युवराज बनायेगा। या राजा से सत्कृत राजपुत्र की माता ही उसको मना ले आवे। यदि वह राजपुत्र किसी भी तरीके से राजा का कहना न माने तो उस दशा में राजा को यही उचित है कि उस सर्वथा परित्याज्य राजपुत्र को वह गुप्तचरों से शस्त्र या विष आदि के द्वारा मरवा डाले। यदि अभी तक राजा ने उसका परित्याग न किया हो तो ऐसी स्थिति में समान स्वभाव वाली स्त्रियों के द्वारा मद्य आदि पिलाकर या शिकार आदि के बहाने रात में गिरफ्तार कर उसको राजा के सामने लाये जाने का यत्न किया जाये।

(४) अपने पास लाये जाने पर राजा उस राजकुमार से कहे कि 'मेरे बाद इस राज्य के स्वामी तुम्हीं बनोगे' ऐसा कहकर संतुष्ट करे। यदि वह एक ही पुत्र हो और अधार्मिक साबित हो तो उसे बन्दी बनाकर रखे ओर यदि अनेक पुत्र हों तो उसको देशनिकाला दे दे या मरवा डाले।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अवरुद्धव त्त नामक सत्रहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १८

राजप्रणिधिः

(१) राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भ त्याः। प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कर्माणि चास्य भक्षयन्ति। द्विषद्भिश्चातिसन्धीयते। तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत। नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत्; छायाप्रमाणेन वा। त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला च छाया मध्याह्न इति चत्वारः पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः। तैः पश्चिमा व्याख्याताः।

(२) तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च श णुयात्। द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत्। त तीये स्नानभोजनं सेवेत; स्वाध्यायं च कुर्वीत। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत। प चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत; चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्ध्येत। षष्ठे स्वैरविहारं मन्त्रं वा सेवेत। सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान् पश्येत्।

अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। प्रतिष्ठिे हनि सन्ध्यामुपासीत।

(३) प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत्। द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च। त तीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थप चमौ शयीत षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रामितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत्। सप्तमे मन्त्रमध्यासीत; गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत्। अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिग ह्णीयात्; चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत्। सवत्सां धेनुं व षभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत्।

(४) आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रविभज्य कार्याणि सेवेत।

(५) उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत्। दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते। तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत्। तस्माद्देवताश्रचमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालव द्धव्याधित-यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत्; कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा।

(६) सर्वमात्ययिकं कार्यं श णुयान्नातिपातयेत्।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते।

(७) अग्नयगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम्।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च।।

(८) तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत्।
मायोयोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात्।।

(६) राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।
दक्षिणा व त्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम्।।

(१०) प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

(११) तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनमर्थस्य विपर्ययः।।

(१२) अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजप्रणिधिर्नामाष्टादशो ध्यायः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) राजा के उन्नतिशील होने पर ही उसका सारा भ त्यवर्ग उन्नतिशील होता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भ त्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में प्रमादित भ त्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप पी जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने आपको सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात आठ-आठ घड़ियों में बांट दे। अथवा पुरुष की छाया से भी वह समय का विभाजन कर सकता है। सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लंबी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इस छायाको 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लम्बी रह जाये, तो वह दिन का दूसरा भाग है। उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनंतर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाय तो वह दिन का तीसरा भाग है। इसको 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। दिन का यह चौथा भाग है। मध्याह्न के उपरांत इसके विपरीत क्रम से चतुरंगुला, पौरुषी, त्रिपौरुषी, और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

(२) पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जन-पदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के सम्बन्ध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतंत्र होकर स्वेच्छया विहार तथा विचार करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अंतिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। दिनांत के बाद वह संध्योपासन करे।

(३) इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे , पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अन्तिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे। इसी समय वह वैद्य, प्रधान रसोइयां और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातों पर परामर्श करे। इन सब कार्यों से निव त्त हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे।

(४) ऊपर का काल-विभाग सामान्य-द ष्टि से निरूपित किया गया है, वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार स्वेच्छया राजा अपनी कार्य-व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है।

(५) राजा जब दरबार में हो तो प्रत्येक कार्यार्थी को वह बिना रोक-टोक प्रवेश करने की अनुमति

दे दे। क्योंकि जो राजा कठिनाई से प्रजा को दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले कर्मचारी उसके कार्यों को उलट'-पलट कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि राजा के अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखंडियों के केन्द्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानोंका और बाल, व द्ध, रुग्ण, दुःखित, अनाथ तथा स्त्रियों से सम्बद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे। इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो उसी का निरीक्षण राजा पहिले करे।

(६) राजा को चाहिए कि पहिले वह उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद बहुत बीत चुकी है। उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे। क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।

(७) राजा को चाहिए कि पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादनवूर्वक देखे।

(८) तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा, अकेला न करके वेदविद् विद्वानों के साथ बैठकर करे। अकेले वह उन लोगों के कोप का कारण न बने।

(९) उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु ओर मित्रों में-उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं।

(१०) प्रजा के सुख में राजा का सुख ओर प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है।

(११) इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार-सम्बन्धी तथा राज्य-सम्बन्धी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे। उद्योग ही अर्थ का मूल है, और इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है।

(१२) राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों, दोनों का ही नाश हो जाता है; किन्तु जो राजा उद्योगी है, वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख-संपदा का उपभोग करता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अठारहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १६

निशान्तप्रणिधिः

(१) वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत्।

(२) कोशग हविधानेन वा मध्ये वासग हं, गूढमिभतिस चारं मोहनग हं तन्मध्ये वा वासग हं भूमिग हं वा सन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गास चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा, वासग हं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम्। आपदि वा कारयेत्। अतो न्यथा वा विकल्पयेत्; सहाध्यायिभयात्।

(३) मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न दहति; न चात्रान्यो ग्निजर्वलति; वैद्युतेन भस्मना म त्संयुक्तेन कनकवारिणा वलिप्तं च।

(४) जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। मार्जारमयूरनकुलप षतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति। शुकः शारिका भ ङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति। क्रौ चो विषाभ्याशे माद्यतिः ग्लायति जीव जीवकः; म्रियते मत्तकोकिलः; चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। इत्येवम् अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत।

(५) प ष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था व क्षोदकस्थानं च। बहिः कन्याकुमारपुरम्। पुरस्तादलङ्कारभूमिर्मंत्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च। कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वशिकसैन्यं तिष्ठेत्।

(६) अन्तर्ग हगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्। न काचिदभिगच्छेत्। देवीग हे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान; मातुः शय्या न्तर्गतश्च पुत्रःकारूशम्। लाजान् मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजं, विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं, मेखलामणिना सौवीरं, जालूथमादर्शेन, वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विडूरथं जघान। तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्।

(७) मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत्। न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः। रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालङ्काराः पश्येयुः। आशीतिकाः पुरुषाः प चाशत्काः स्त्रियो वा मातापित व्य जनाः स्थविरवर्षवराभ्या-गारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः, स्थापयेयुश्च स्वामिहिते।

(८) स्वभूमौ च वसेत् सर्वः परभूमौ न स चरेत्।
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत्।।

(६) सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम्।
निर्गच्छेदधिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे निशान्तप्रणिधिर्नामकोनविंशो ध्यायः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इंजीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतायें, उसी स्थान पर ऐसे अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसके चारों ओर परकोटा एवं खाई और जिसमें अनेक ड्यौढ़ियाँ हों।

(२) या कोशागार-निर्माण के विधानानुसार अन्तःपुर के बीच में राजा अपना महल बनवाये, या

ऐसा मकान बनवाये, जिसकी दीवारों तथा गलियों का पता न लगे, ऐसे मकान को मोहनग ह (भुलभलैया) कहते हैं, उसके बीच में राजा अपने रहने का मकान बनवाये, या भूमि को खुदवा कर उसमें घर बनवाये, उस भूमिग ह के दरवाजे पर, समीप ही किसी देवता की मूर्ति स्थापित करवाये, उसमें आने जाने के लिए गुप्त सुरंगें हों, या तो फिर ऐसा महल बनवाये, जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, अथवा पोले खम्बों के भीतर आने-आने तथा चढ़ने-उतरने का रास्ता हो, अथवा आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासग ह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे-ऊपर तथा इधर-उधर हटाया जा सके, अथवा आपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर ऐसे भवन का निर्माण करवाये। यदि राजा को इस बात की आशंका हो कि उसके समान ही दूसरा शत्रु राजा भी नीति-निपुण वास्तुकलाविद् है और वह गुप्तभवन-निर्माणसम्बन्धी सभी रहस्यों को जानता है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे।

(३) मनुष्य की हड्डी में बांस के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि का स्पर्श, यदि अथर्ववेद के मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ बाईं ओर से तीन परिक्रमा करते हुए, कराया जाये तो उस अंतःपुर को आग नहीं जला सकती; और न दूसरी अग्नि ही वहाँ जल सकती है। बिजली के गिरने से जले हुए पेड़ की राख लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिला दी जाये और दोनों को धतूरे के पानी के साथ गूँथकर यदि उसका दीवारों पर लेपन किया जाये तब भी वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं कर सकती हे।

(४) गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन (सैजन) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तों के बंदनवार बाँध देने से अंतःपुर में सर्प, बिच्छु आदि विषैले जंतुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और म ग आदि भी सांपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव (चकोर के समान एक पक्षी) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अंतःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

(५) राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन आवास बनवाये जायें और उन्हीं के साथ छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाये। बाहर की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायें। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए। उसके बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए। कक्ष्याओं के बीच-बीच में क चुकी तथा अंतःपुररक्षकों की उपस्थिति रहे।

(६) रनिवास के अन्दर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले। अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि ऐसा करने से कभी कभी बड़ा धोखा हो जाता है। कहा जाता है कि पहले कभी भद्रसेन नामक राजा के भाई वीरसेन ने उसकी रानी से मिलकर छिपे में भद्रसेन राजा को मार डाला था। इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारूश को मार डाला था। इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खोलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था। इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करघनी की मणि से सौबीर राजा को, शीशे के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी वेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को,

उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था। इसलिए रानियों से मिलते समय, राजा को इस प्रकार की अद ष्ट विपत्तियों में सावधान रहना चाहिए।

(७) राजा को चाहिए कि वह मुंडी, जटी इसी प्रकार के अन्य धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का संपर्क न होने दे। रानियों के सगे-सम्बन्धी भी उन्हें प्रसव या बीमारी की अवस्था के अतिरिक्त न देखने पावें। स्नान, उबटन के बाद सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर वेश्याएं राजा के निकट जायें। अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष तथा पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भाँति रानियों के हितचिंतन में रत रहे। अंतःपुर के दूसरे व द्ध तथा नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उनको राजा की हितकामना में लगाये रखें।

(८) अंतःपुर के सभी परिचारक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें। इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे।

(६) जो भी वस्तु महल के बाहर आवे तथा महल में जावे उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके सम्बन्ध में सारे विवरण रजिस्टर में लिख लेने चाहिएं। राजमहल के बाहर और भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २०

आत्मरक्षितकम्

(१) शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत; द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कचुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः, ततीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः, चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः सम्बन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः।

(२) पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत; नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्।

(३) गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत्। तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत, पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा।

(४) अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथः श्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शन फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। रसस्य मध्ये नीलाराजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रग्लनत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च। शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च। तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च। आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्च। इति विषयुक्तलिङ्गानि।

(५) विषप्रदस्य तु शुष्कश्यामवक्त्रता वाक्सङ्ग स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेशः कर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति।

(६) तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः।

(७) भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम्।

(८) कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः।

(६) स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः; ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः; स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च। एतेन परस्मादागतकं व्याख्यातम्।

(१०) कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः। आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुः, अश्वरथद्विपालङ्काराश्च।

(११) मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत्; नावं चाप्तानारविकाधिष्ठिताम्। अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात्। उदकान्ते सैन्यमासीत। मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत। व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत्।

(१२) लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत्।

(१३) आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्; मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतम्। सन्नद्धो श्वं हस्तिनं रथं वा रूढः सन्नद्धमनीकं गच्छेत्।

(१४) निर्याणे भियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत्।

न पुरुषसम्बाधमवगाहेत। यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि च दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत्।

(१५) यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजा धितिष्ठति।
तथा यमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान्।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे आत्मरक्षितकं विंशो ध्यायः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उसे घेर लें। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, सम्बन्धियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए।

(२) वंश-परम्परा के अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किन्तु धन-सम्मान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार प थक् होकर पुनः नियुक्त स्वदेशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक कदापि नियुक्त न करे। राजमहल की भीतरी सेना, राजा और रनिवास की रक्षा करे।

(३) माहानसिक को चाहिए कि वह किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन के तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे।

(४) जिस अन्न मे ंविष मिला हो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपट, दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट-चट शब्द होता है। विषमिश्रित अन्न के खाने पर पक्षियों की भी म त्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाप मयूर ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है; हाथ के स्पर्श या तोड़ने-मोड़ने से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। विष मिली दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाये तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है; उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, उसकी सुगंध आदि सब जाते रहते हैं। विषयुक्त रसेदार तरकारी विरंगी-विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है और उसके ऊपर रेखा-सी खिंच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएं तैरने लगती हैं, विष-मिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएं दिखाई देती हैं। आम, अनार आदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है, और पकने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। यदि सूखे हुए पदार्थों में विष मिला हो तो वे छूते ही चूर-चूर होकर विवर्ण हो जाते हैं। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तों उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रुआँ उड़ जाती है। सोने, चांदी, स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनकी आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं। यहां तक कि विषमिश्रित पदार्थों के पहिचान की विधियों का निरूपण किया गया है।

(५) विष देने वाले का मुँह सूख जाता है, उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, बातचीत करते हुए उसकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, उसको पसीना, कंपकपी तथा जंभाई आने लगती है, बेचैन होकर वह गिर पड़ता है, संदेहवश दूसरों की बातें वह ध्यानपूर्वक सुनने लगता है, बात-बात में वह आवेश करने लगता है; अपने कार्य और अपने स्थान पर उसका मन स्थिर नहीं रह पाता है।

(६) इसलिए विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें।

(७) वैद्य को चाहिए कि औषधालय में स्वयं खाकर परीक्षा की हुई औषधि को वह राजा के सामने लाकर उसमें से कुछ को पकाने-पीसने वाले लोगों और कुछ स्वये भी खाकर पुनः राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य को भी, परीक्षा करने के उपरांत राजा को देना चाहिए।

(८) दाढ़ी-मूँछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्रालंकरण धारण कराने वाले परिचारकों को चाहिए कि वे स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण किये हाथों को अच्छी तरह धोकर राजमहल के अन्दर रहने वाले कंचुकी आदि से मुहर लगे हुए उस्तरा और वस्त्राभूषण को लेकर राजा की परिचर्या करें

(९) राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े धोना और माला बनाना आदि कार्यों को दासियाँ ही करें, अथवा दासियों की देख-रेख में उस कार्य के जानकार लोग करें। दासियों को चाहिए कि अपनी आँखों से देखकर ही वे राजा को वस्त्रालंकरण पहनावें। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे-उबटन, चन्दन, सुगन्धित चूर्ण तथा पटवास आदि को, दासियां पहले अपनी छाती व बाँह पर लगाकर आजमा लें और तदनंतर राजा पर उसका प्रयोग करें। यही बात दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी जान लेनी चाहिए।

(१०) खेल दिखाने वाले नट-नर्तक, हथियार, आग, विष आदि के अतिरिक्त दूसरे खेलों को ही राजा के सामने दर्शित करें। नट-नर्तकों के उपयोग में आने वाली सामग्री, जैसे-वादन, वस्त्र, घोड़े, अलंकरण आदि, राजमहल से ही दी जानी चाहिए।

(११) विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बंधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। राजा जब नौका-विहार करे तो, सुरक्षा के लिए, नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिएं मछुओं द्वारा भलीभाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार सपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे।

(१२) चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाये।

(१३) दर्शनार्थ आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय राजा, अपने विश्वस्त सशस्त्र पुरुष को साथ ले ले। अपने मंत्रि-परिषद् के साथ ही वह सामंत राजा के दूत से मिले। घोड़े, हाथी या रथ पर सवार युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित कवच आदि पहिन कर सैनिक वेश में निरीक्षण करे।

(१४) बाहर जाते या बाहर से आते समय, राजा हाथ में दण्ड लिये रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित मार्ग पर चले। ऐसा प्रबंध हो कि रास्ते भर में कहीं भी राजा को शस्त्ररहित पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा, अपंग व्यक्ति न दिखाई दे। पुरुषों की भीड़ में भी वह कदापि न घुसे। किसी देवालय, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में वह शामिल होने जाय तो कम से कम दस सिपाही तथा सेनानायक उसके साथ उपस्थित रहें।

(१५) विजय की इच्छा रखने वाला राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गये कष्टों से भी वह अपनी रक्षा करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बीसवाँ अध्याय समाप्त।

दूसरा अधिकरण : अध्यक्षों का निरूपण

अध्याय १

जनपदनिवेशः

---

(१) भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत्।

(२) शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं प चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्। नदीशैलवनग ष्टिदरीसेतुबन्ध- शाल्मलीशमीक्षीरव क्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत्।

(३) अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं, चतुश्शतग्राम्या द्रोणमुखं, द्विशतग्राम्याः खार्वटिकं, दशग्रामीसङ्ग्रहेण सङ्ग्रहणं स्थापयेत्।

(४) अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि, जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत्। तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः।

(५) ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत्। अध्यक्षसङ्ख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्साश्वदमकजङ्घाकरिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम्।

(६) करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत्। अकृतानि कर्त भ्यो नादेयात्।

(७) अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत्। ग्रामभ तकवैदेहका वा कृषेयुः। अकृषन्तो पहीनं दद्युः। धान्यपशुहिरण्यैश्चैनानुग ह्णीयात्। तान्यनु सुखेन दद्युः।

(८) अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशव द्धिकरौ दद्यात्। कोशोपघातिकौ वर्जयेत्। अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते। निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात्। निव त्तपरिहारान् पितेवानुग ह्णीयात्।

(९) आकरकर्मान्तद्रव्यहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान्वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत्।

(१०) सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत्। अन्येषां वा बध्नतां भूमिमार्गव क्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्; पुण्यस्थानारामाणां च सम्भूय सेतुबन्धादपाक्रामतः कर्मकरबलीवर्दाः कर्म कुर्युः। व्ययकर्मणि च भागी स्यात्। न चांशं लभेत।

(११) मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत्। दासाहितकबन्धूननुश ण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत्। बालव द्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभ यात्; स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रान्।

(१२) बालद्रव्यं ग्रामव द्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात्; देवद्रव्यं च।

(१३) अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रात नप्राप्तव्यवहारान्भगिनीः' कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डो न्यत्र पतितेभ्यः; अन्यत्र मातुः।

(१४) पुत्रदारामप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः; स्त्रियं च प्रव्राजयतः। लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदाप च्छ्य धर्मस्थान्, अन्यथा नियम्येत।

(१५) वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः, सुजातादन्यः सङ्घेः, सामुत्थायकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिविशेत्।

(१६) न च तत्रारामा विहारार्थाः शालाः स्युः। नटनर्तनगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः। निराश्रयत्वाद् ग्रामाणां क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोशविष्टिद्रव्यधान्यरसव द्विर्भवतीति।

(१७) परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम्।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत्।।

(१८) दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षदुपहतां कृषिम्।
स्तेनव्यालपिषग्राहैर्व्याधिभिश्च पशुव्रजान्।।

(१६) वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम्।
शोधयेत्पशुसङ्घैश्च क्षीयमाणं वणिक्पथम्।।

(२०) एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान्।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे जनपदनिवेशः प्रथमो ध्यायः; आदितः एकविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) राजा को चाहिए कि दूसरे देश के मनुष्य बुलाकर अथवा अपनी देश की आबादी को बढ़ाकर वह पुराने या नये जनपद को बसाये।

(२) प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले, ऐसे गाँव बसायें जायें जिसमें प्रायः शूद्र तथा किसान अधिक हों। एक गाँव दूसरे गाँव से कोस भर या दो कोस की दूरी से अधिक नहीं होना चाहिए, जिससे अवसर आने पर वे एक दूसरे की मदद कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, बेर के व क्ष, खाई तालाब, सेंमल के व क्ष, शमी के व क्ष और बरगद आदि के व्.क्ष लगाकर उन बसाये हुए गाँवों की सीमा निर्धारित करें।

(३) आठ सौ गाँवों के बीच में एक **स्थानीय**; चार सौ गाँवों के समूह में एक **द्रोणमुख**; दो सौ गाँवों के बीच में एक **कार्वटिक** और दस गाँवों के समूह में **संग्रहण** नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करे।

(४) राज्य की सीमा पर अंतपाल नामक दुर्गरक्षक के संरक्षण में एक दुर्ग की भी स्थापना करे। जनपद की सीमा पर अंतपाल की अध्यक्षता में ही द्वारभूत स्थानों का भी निर्माण करे। उनके भीतरी भागों की रक्षा व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि वनचर जातियों के लोग करें।

(५) राजा को चाहिए कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों के लिए भूमिदान करे, किन्तु उनसे कर आदि न ले और उस भूमि को वापिस भी न ले। इसी प्रकार विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों, गोपों, स्थानिकों, अनीकस्थों, वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकरिकों आदि अपने अधिकारियों, कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए भी राजा भूमि-दान करे। किन्तु इस प्रकार पायी हुई जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दे।

(६) खेती के उपयोगी जो भूमि लगान पर जिस भी किसान के नाम दर्ज की जाय, उसके मर जाने के बाद राजा को अधिकार है कि वह उस भूमि को म तक किसान के पुत्र आदि को दे या न दे।

(७) किन्तु ऐसी ऊसर या बंजर जमीन जिसको किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया है,

राजा को चाहिए कि उसे कभी भी वापिस न ले, ऐसी जमीन पर किसानों को पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते-बोये परती ही डाले रहता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीन कर किसी जरूरतमंद दूसरे किसान को दे दे। ऐसे जरूरतमंद किसान के न मिलने पर गाँव का मुखिया या व्यापारी उस जमीन पर खेती करे। खेती करने की शर्त पर यदि कोई जमीन को ले और उसमें खेती न करे तो उससे उसका हर्जाना वसूल करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानों की सहायता करता रहे और किसानों को भी चाहिए कि फसल कट जाने पर सुविधानुसार धीरे-धीरे वे उधार ली हुई वस्तुओं को राजा को वापिस कर दें।

(८) किसानों की स्वास्थ्य-व द्धि और रुग्णता-निवारण के लिए राजा उन्हें परिमित धन देता रहे, जिससे कि वे धन-धान्य की व द्धि करके राजकोष को सम द्ध बनावें। किन्तु इस प्रकार की सहायता से यदि राजकोष को कोई हानि पहुंचे, तो राजा उसको बन्द कर दे; क्योंकि कोष के कम हो जाने पर राजा, नगर और जनपद-निवासियों को सताने लगता है। किसी नये कुल को बसाये जाने के लिए प्रतिज्ञात धन राजा को अवश्य देना चाहिए। अथवा राजकोष की आय के अनुसार स्वास्थ्य-सुधार के लिए राजा धन अवश्य खर्च करता रहे। यदि नगर और जनपद-निवासी राजा के द्वारा स्वास्थ्य-सुधार के लिए खर्च किए गए धन को चुका दें, तो पिता के समान राजा उन पर अनुग्रह करे।

(६) राजा को चाहिए कि वह आकर (खान) से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की व द्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों या बड़ी-बड़ी मंडियों की भी व्यवस्था कराये।

(१०) भूमि की सिंचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बँधवाये, अथवा वर्षा ऋतु के जल को भी बड़े-बड़े जलाशयों में भरवा दे। यदि प्रजाजन ऐसा कार्य करना चाहते हैं तो राजा को चाहिए कि उन्हें जलाशय के लिए भूमि, नहर के लिए रास्ता ओर आवश्यकतानुसार लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करें। देवालय और बाग-बगीचे आदि के लिये भी राजा, प्रजा की भूमिदान आदि से सहायता करे। गाँव के जो मनुष्य अन्य आवश्यक कार्यों के आ जाने पर उस सहकारी उद्योग में सम्मिलित न हो सकें तो वे अपने स्थान पर नौकर तथा बैल भेज कर सहयोग दें। यदि वे ऐसा भी न करें तो अनुपात के अनुसार उनसे उनके हिस्से का सारा खर्च लिया जाये और कार्य समाप्त होने पर न तो उन्हें उसका साझीदार समझा जाय और न ही उसका लाभ उठाने दिया जाये।

(११) इस प्रकार के बड़े-बड़े जलाशयों में उत्पन्न होने वाली मछली, प्लव पक्षी और कमलदंड आदि व्यापार-योग्य वस्तुओं पर राजा का ही अधिकार रहे। यदि नौकर-चाकर, भाई, पुत्र आदि अपने मालिक की आज्ञा का उल्लंघन करें तो राजा उन्हें उचित शिक्षा दे। राजा को चाहिए कि वह बालक, व द्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्तिग्रस्त और अनाथ व्यक्तियों का भरण-पोषण करे। संतानहीन और पुत्रवती अनाथ स्त्रियों तथा उनके बच्चों की भी राजा रक्षा करे।

(१२) नाबालिग बच्चे की सम्पत्ति पर गाँव के व द्ध पुरुषों का अधिकार रहे। उसको वे बढ़ाते रहें और बालिग हो जाने पर उसकी सम्पत्ति को उसे वापिस कर दें। इस प्रकार देव-सम्पत्ति पर भी ग्राम-व द्धों का ही अधिकार हो, जो कि उसकी व द्धि में तत्पर रहें।

(१३) जब कोई पुरुष समर्थ होने पर भी, अपने लड़के-बच्चों,, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिक भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन आदि का भरण-पोषण न करे तो राजा उसे बारह पणों का दंड दे। किन्तु ये लड़के, स्त्री आदि यदि किसी कारण से पतित हो गए हों तो सम्बन्धी उनका

भरण पोषण करने के लिए बाध्य नहीं है। यह निषेध माता के सम्बन्ध में नहीं, माता यदि पतिता भी हो तो उसका भरण-पोषण और उसकी रक्षा करनी चाहिए।

(१४) पुत्र तथा स्त्री के जीवन-निर्वाह का उचित प्रबन्ध किये बिना ही यदि कोई पुरुष, संन्यास ग्रहण कर ले तो राजाको उसे प्रथम साहस दंड देना चाहिए। यह दंड उस पुरुष को भी दिया जाना चाहिए जो अपनी स्त्री को संन्यासिनी हो जाने को प्रेरित करे। जब मनुष्य के मैथुन-सम्बन्धी कामविकार शांत हो जाएं तब उसे धर्माधिकारी पुरुषों की अनुमति लेकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए, इस राज्य-नियम का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कारागार में बंद कर दिया जाये।

(१५) वानप्रस्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा संन्यासी जनपद में न रहना चाहिए, इसी प्रकार राजभक्त जनसंघ के अतिरिक्त तथा स्थानीय सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त कोई दूसरी संस्था संघ राज्य में न पनपने पावे, जो द्रोह या फूट फैलाने वाला सिद्ध हो।

(१६) गाँवों में कोई भी नाट्यग ह, विहार तथा क्रीडा-शालाएँ नहीं होनी चाहिए। नट, नर्तक, गायक, वादक, भाण और कुशलीव आदि गाँवों में अपना खेल दिखा कर कृषि आदि कार्यों में विघ्न उत्पन्न न करें। क्योंकि गाँवों में नाट्यशालाएँ आदि न होने से ग्रामवासी अपने-अपने कृषिकर्म में संलग्न रहते हैं, जिससे कि राजकोष में अभिव द्धि होती है और सारा देश धन-धान्य से सम द्ध होता है।

(१७) राजा को चाहिए कि वह शत्रुओं, जंगली लोगों, व्याधियों एवं दुर्भिक्षों से अपने देश को बचावे। वह उन क्रीडाओं का भी बहिष्कार कराये जो धन का अपव्यय और विलासप्रियता को बढ़ाने वाली हों।

(१८) राजा को चाहिए कि दंड, विष्टि, कर आदि की बाधा से कृषि की रक्षा करे। इसी प्रकार चोर, हिंसक जंतु, विष-प्रयोग तथा अन्य कष्टों से भी किसानों के पशुओं की रक्षा करे।

(१९) वल्लभ, कार्मिक, चोर, अंतपाल और व्याघ्र आदि, राजपुरुषों लुटेरों एवं हिंसक जंतुओं से ग्रस्त व्यापार-मार्गों को भी राजा परिशोधन करे। अर्थात् अपने देश से इन सब आपत्तियों को दूर करे।

(२०) इस प्रकार राजा प्रथम तो लकड़ी के जंगल, हाथियों के जंगल, सेतुबन्ध तथा खानों की रक्षा करे और तदुपरान्त आवश्यकतानुसार नये जंगल, सेतुबंध आदि का निर्माण करवाये।

अध्यक्ष-प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में प्रथम अध्याय समाप्त।

अध्याय २

भूमिच्छिद्र-विधानम्

(१) **अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत्। प्रदिष्टाभयस्थावरजङ्गमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि, तपोवनानि च तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत्। तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रुममुत्तानतोयाशयं दान्तम गचतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गायुकहस्तिहस्तिनीकलभं म गवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत्।**

(२) **सर्वातिथिम गं प्रत्यन्ते चान्यन्म गवनं भूमिवशेन वा निवेशयेत्।**

(३) **कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत्; द्रव्यवनकर्मान्तानटवीश्च द्रव्वनापाश्रयाः।**

(४) **प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत्। नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं सारसमानूपं च नागवनं विदितपर्यन्तप्रवेशनिष्कसनं नागवनपालैः पालयेत्। हस्तिघातिनं हन्युः। दन्तयुगं स्वयं म तस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः।**

(५) **नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपासिकर्मिकसखाहस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नगन्धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः प चभिः सूप्तभिर्वा हस्तिबन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्यालण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः।**

(६) **यूथचरमेकचरं निर्यूथं यूथपतिं हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं बद्धमुक्तं च निबन्धेन विद्युः। अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्य जनाचारान्हस्तिनो ग ह्णीयुः। हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम्। परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति।**

(७) **कलिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः।**
दाशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः।।

(८) **सौरष्ट्रिकाः पा चनदाः तेषां प्रत्यवरा स्म ताः।**
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे भूमिच्छिद्रविधानं द्वितीयो ध्यायः; आदितो द्वाविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) ऊसर भूमि में पशुओं के लिए चरागाहें बनवानी चाहिए। जिस भूमि को व क्ष-लता एवं म ग आदि के लिए छोड़ दिया गया हो, ऐसे दो कोस तक फैले हुए जंगल को वेदाध्यायी ब्राह्मणों को वेदाध्ययन एवं सोमयाग के लिए दे देना चाहिए; इसी प्रकार के तपोवनों को तपस्वियों के लिए दे देना चाहिए। ऐसे ही दो कोस परिमाण के म गवन को राजा अपने विहार के लिए तैयार कराये। उस विहारवन के दो दरवाजे हों, उसके चारों ओ खुदी हुई खाई हो, उसमें स्वादिष्ट फल, लता, गुल्म एवं व क्ष हों, वह कँटेदार पेड़ों से रहित हो, उसमें कम गहरे सरोवर हों, मनुष्यों से परिचित म ग हों, म गया के लिए वहाँ ऐसे व्याघ्र, हाथी, हथिनी तथा उनके बच्चे रखे गये हों, जिनके नख एवं दाँत न हों

(२) उसके ही समीप एक दूसरा म गवन ऐसा तैयार कराया जाए, जिसमें देश-देशान्तरों के जानवर लाकर रखे गये हों।

(३) **कुप्याध्यक्ष** प्रकरण में निर्दिष्ट चंदन, पलाश, अशोक आदि लकड़ी के लिए अलग-अलग वन

लगाये जायें। लकड़ी के जंगलों की सम्पूर्ण व्यवस्था, जंगलों के अध्यक्ष तथा जंगलों पर जीवन बिताने वाले पुरुष करें।

(४) जनपद की सीमा पर जंगल के अध्यक्षों के संरक्षण में एक हस्तिवन भी स्थापित करना चाहिए। हस्तिवन के अध्यक्षों को आवश्यक है कि वह स्वयं तथा अपने सहयोगी वनपालों के सहयोग से पर्वत, नदी, जलाशय तथा किसी जलमय स्थान से होकर हस्तिवनों के अन्दर जाने वाले मार्गों की भली-भाँति देख-देख रखे। हाथियों को मारने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्राणदण्ड की सजा मिलनी चाहिए। म तक हाथी के दाँतों को उखाड़कर जो स्वयं ही राजपुरुषों के सुपुर्द कर दे, उसे सवा चार पण पुरस्कार स्वरूप दिया जाना चाहिए।

(५) हस्तिवन के रक्षकों को चाहिए कि वे हस्तिपक, पादपाशिक, सैमिक, वनचरक और पारिकर्मिक आदि पुरुषों को साथ लेकर जंगल में हाथियों के समूह का पता लगायें। अपने साथ वे हाथी के मल-मूत्र के गंध के समान किसी वस्तु को, हाथियों को वश में करने वाली पाँच-सात हथिनियों को भी साथ में लेकर और स्वयं को भल्लातकी की शाखा में छिपाये हुये, हाथियों के पड़ाव, उनके पैरों के निशान, उनके मल-मूत्र त्यागने की जगह ओर उनके द्वारा गिराये गये नदी-कगारों आदि का सुराग लेकर हस्तिसमूहों का पता लगायें।

(६) झुंड के साथ घूमने वाले, अकेले विचरण करने वाले, झुंड से फूटे हुए, झुंडप्रमुख, दुष्टप्रकृति, उन्मत, शिशुहस्ति, बंधनमुक्त आदि हाथियों से सम्बन्धित जितने भी विवरण हैं, उनकी जानकारी, हस्तिवनरक्षक अपनी गणनापुस्तक से प्राप्त करें। हस्तिविद्या में निपुण पुरुषों के निर्देशानुसार श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथियों को ही पकड़ना चाहिए, क्योंकि हाथी ही राजा की विजय के प्रधान साधन हैं। भारी भरकम हाथी ही शत्रुसेना, उसकी व्यूह-रचना, उसके दुर्ग तथा उसकी छावनियों को कुचलने वाले और उसके प्राणों तक को लेने वाले होते हैं।

(७) कलिंग, अंग और पूर्वीय करूश देश के हाथी सर्वोत्तम गिने जाते हैं। दशार्ण तथा पश्चिम देश के हाथी मध्यम माने जाते हैं।

(८) गुजरात और पंजाब के हाथी अधम कहे जाते हैं। इस पर भी, प्रत्येक हाथी के बल, विक्रम, वेग और तेज का संवर्धन आदि उसको दी जाने वाली समुचित शिक्षा पर निर्भर है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त।

अध्याय ३

दुर्गविधानम्

---

(१) चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत्; अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं, प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं, निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनं, ख जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम्। तेषां नदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवनदुर्गमटवीस्थानम् आपद्यपसारो वा।

(२) जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेद्। वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसङ्गमे ह्रदस्य वा विशोषस्याङ्के सरसस्तटाकस्य वा व त्तं दीर्घं चतुरश्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम्। तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत्। चतुर्दश द्वादश दशेति दण्डान् विस्तीर्णाः विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरश्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः।

(३) चतुर्दण्डावकृष्ट परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्विगुणविष्कम्भं खाताद्वप्रं कारयेत्; ऊर्ध्वचयं म चप ष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तम्। पांसुशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत्।

(४) वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत्। रथचर्यास चारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं प थुशिलासंहितं वा शैलं कारयेत्; न त्वेव काष्ठमयम्। अग्निरवहितो हि तस्मिन्वसति।

(५) विष्कम्भचतुरश्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत्, त्रिंशद्दण्डान्तरं च।

(६) द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलामध्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत्।

(७) अट्टालकप्रतोलीमध्य त्रिधानुष्काधिष्ठानं सापिधानच्छिद्रफलकसंहितमितीन्द्रकोशं कारयेत्।

(८) अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणामनुप्राकारम् अष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत्।

(६) दण्डान्तरा द्विदण्डान्तारा वाचार्याः कारयेद्; अग्राह्ये देशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च।

(१०)

बहिर्जानुभ जनीत्रिशूलप्रकरकूपकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिप ष्ठतालपत्रश ङ्गाटकश्वदंष्ट्रार्गलोप-स्कन्दनपादुकाम्बरीषोद पानकैः। छन्नपथं कारयेत्।

(११) प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत्; प चदण्डादेकोत्तरव द्ध्याष्टदण्डादिति चतुरश्रम्। द्विदण्डं वा। षड्भागमायामादधिकमष्टभागं वा।

(१२) प चशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तुलोत्सेधः।

(१३) स्तम्भस्य परिक्षेपाः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतुर्भागः।

(१४) आदितलस्य प च भागाः शाला वापी सीमाग हं च। दशभागिकै समत्तवारणौ द्वौ प्रतिम चौ अन्तरम् आणिः। हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च। आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा, इष्टकावबद्धपाश्वै, वामतः प्रदक्षिणसोपानं गूढभित्तिसोपानमितरतः।

(१५) द्विहस्तं तोरणशिरः, त्रिप चभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ, द्वौ द्वौ परिधौ, अरत्निरिन्द्रकीलः,

प यहस्तमणिद्वारं, चत्वारो हस्तिपरिधाः।

(१६) निवेशार्धं हस्तिनखः मुखसमः। संक्रमो संहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके।

(१७) प्राकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत्; प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं भुष्करिणीद्वारं, चतुःशालमध्यर्धान्तराणिकं कुमारीपुरं, मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं, भूमिद्रव्यवशेन वा। त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत्।

(१८) तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः।

मुसुण्डिमुद्गरा दण्डचक्रयन्त्रशतघ्नयः।।

कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः।

उष्ट्रग्रीव्यो ग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे दुर्गविधानं नाम त तीयोध्यायः आदितस्त्रयोविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) जनपद-सीमाओं की चारों दिशाओं में राजा युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के हैं-१. औदक २. पार्वत ३. धान्वन और ४. वनदुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आव त स्थल प्रदेश **औदकदुर्ग** कहलाता है। बड़ी-बडी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग **पार्वतदुर्ग** कहलाता है। जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग **धान्वनदुर्ग** है। इसी प्रकार चारो ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिव त दुर्ग **वनदुर्ग** कहलाता है। इनमें औदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है।

(२) राजा को चाहिए कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र बड़े-बड़े स्थानीय नगर दुर्गों का निर्माण करवाये। वास्तुविद्या के विद्वान् जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बतायें, वहीं पर नगर बसाना चाहिए, अथवा किसी नदी के संगम पर, बड़े-बड़े तालाबों के किनारे, या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं। नगर का निर्माण संबंधित भूमि के अनुसार गोल, लम्बा अथवा चौकोर, जैसा भी उचित हो, होना चाहिए। उसके चारों ओर छोटी-छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे। उसके इधर-उधर की भूमि में पैदा होने वाली बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए। नगर में आने-जाने के लिए जलमार्ग और स्थल-मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए। नगर के चारों ओर एक-एक दंड की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिएं। वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह और दस दंड चौड़ी होनी चाहिए। अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है। उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बँधी हो। उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईंटों से मजबूत बनी हुई हों। कहीं-कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हों कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके। उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिये। कमल के फूल तथा घड़ियाल आदि जलचर भी उनमें रहें

(३) खाई से चार दंड की दूरी पर छह दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नींव वाला एक बड़ा वप्र (प्राकार या फसील) बनवाया जाये। इसके बनवाने में वही मिट्टी काम में लाई जाये, जो खाई से खोदकर बाहर फैंकी गई है। प्राकार तीन प्रकार का

होना चाहिए-१. ऊर्ध्वचय, २. म चप ष्ठ और ३. कुम्भकुक्षिक, अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भाकार। इन प्राकारों को बनवाते समय, इनकी मिट्टी को हाथी और बैलों से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाये। इनके चारों ओर काँटेदार विषैली झाड़ियाँ लगी होनी चाहिएं। प्राकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाये तो उसे उन्हीं गड्ढों में भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से, प्राकार के जो छिद्र रह गए हों, उन्हें भरवा देना चाहिए।

(४) वप्र बन जाने पर उसके ऊपर दीवार बनवानी चाहिए। वह दीवार चौड़ाई से दुगूनी ऊँची हो, कम-से-कम बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अठारह सम संख्याओं में, अथवा पन्द्रह, सत्रह आदि विषम संख्याओं में, अधिक-से-अधिक चौबीस हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड़ व क्ष की जड़ के समान, म दंग बाजे के समान, बंदर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईंट-पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े-बड़े शिलाखंडों से प्राकार का निर्माण करवाना चाहिये। लकड़ी का प्राकार कभी भी नहीं बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है।

(५) प्राकार के आगे एक ऐसी अट्टालिका बनवाये जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। ऊँचाई के अनुपात से उस पर सीढ़ियाँ भी बनवानी चाहियें। ये अट्टालिकायें एक-दूसरी से तीस दंड की दूरी पर हों।

(६) दो अट्टालिकाओं के बीच, चौड़ाई से डेढ गुना लम्बा **प्रतोली** नाम का एक घर बनवाना चाहिए, जिसकी दूसरी मंजिल में जनानखाना रहे।

(७) अट्टालिका और प्रतोली के बीच में इन्द्रकोष नामक एक विशिष्ट स्थान बनवाया जाये। वह इतना ही बड़ा हो जिसमें तीन धनुर्धारी संतरी आसानी से बैठ सकें। उसके आगे छिद्रयुक्त एक ऐसा तख्ता लगा रहना चाहिए, जिससे धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सके और भीतर से ही निशाना बाँध सकें, किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें।

(८) प्राकार के साथ ही एक ऐसा देवपथ बनवाना चाहिए जो अट्टालक, प्रतोली तथा इन्द्रकोष के बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पास आठ हाथ चौड़ा हो।

(९) इसी प्रकार एक दंड या दो दंड की दूरी पर चार्या अर्थात् प्राकार आदि पर चढ़ने उतरने का स्थान बनवाना चाहिये। प्राकार के ऊपर ही जिस स्थान को कोई न देख सके, **प्रधावितिका** तथा उसके पास ही **निष्कुहद्वार** भी बनवाने चाहिए। बाहर से छोड़े गये बाण बादि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़ को **प्रधावितिका** कहते हैं। उसमें निशाना मारने के लिए जो छिद्र बनाया जाता है, उसको **निष्कुहद्वार** कहा जाता है।

(१०) प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओ के घुटनों को तोड़ देने वाले खूँटे, त्रिशूल, अँधेरे गड्ढ़े, लौह-कंटक के ढेर, साँप के काँटे, ताड़पत्रों के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोंकवाले नुकीले काँटे, कुत्ते की दाढ़ के समान लोहे की तीक्ष्ण कीलें, बड़े-बड़े लट्ठे, कीचड़ से भरे हुए गढ़े, आग और जहरीले पानी के गढ़े आदि बनाकर दुर्ग के मार्ग को पाट देना चाहिये।

(११) जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्राकार के दोनों भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाया जाये। तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भे खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाये। द्वार का निर्माण पाँच दंड परिधि से करना चाहिए, और तदनन्तर एक-एक दंड बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दंड तक उसकी परिधि होनी चाहिए; अथवा कुछ विद्वानों के मन से दरवाजा दो दंड का हो। या नीचे के आधार के परिणाम से छठा तथा आठवां हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाये।

(१२) दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से लेकर अठारह हाथ तक होनी चाहिए।

(१३) खम्भों की मोटाई उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होनी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग भूमि में गाड़ दिया जावे और चौथाई भाग खम्भे के ऊपर चूल के लिए छोड़ दिया जावे।

(१४) प्रतोलिका के तीन तल्लों में से पहिले तल्ले के पाँच हिस्से किए जायें। उनमें से बीच के हिस्से में बावड़ी बनवाई जाये, उसके दायें बायें शाला ओर शाला के छोरों पर सीमाग ह बनवाये जायें। शाला के किनारों पर भी आमने-सामने छोटे-छोटे दो चबूतरे बनवायें जायें जिन पर बुर्जे भी हों। शाला और सीमाग ह के बीच में आणि (एक छोटा दरवाजा) होना चाहिए। मकान की दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहिली मंजिल की ऊँचाई से आधी होनी चाहिए, उसकी छत के नीचे सहारे के लिए छोटे-छोटे खंभे भी होने चाहिए। मकान की तीसरी मंजिल को **उत्तमागार** कहते हैं, उसकी ऊँचाई डेढ़ दंड होनी चाहिए। उत्तमागार परिमाण द्वारा का त तीयांश होना चाहिए। उसके पार्श्व भाग पक्की ईंटों से मजबूत होने चाहिएं। उसकी बाईं ओर घुमावदार सीढियाँ और दाहिनी और गुप्त सीढ़ियां होनी चाहिएं।

(१५) दुर्ग के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पाँच तख्तों की पर्त के बने हों। किवाड़ों के पीछे दो-दो अर्गलाएं होनी चाहिएं। किवाड़ों को बन्द करने के लिए एक अरत्नी परिमाण (एक हाथ) की इन्द्रकील (चटखनी) होनी चाहिए। फाटक के बीच में पाँच हाथ का एक छोटा सा दरवाजा जुड़ा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें।

(१६) द्वार की ऊँचाई का आधा, हाथी के नाखून के आकार-प्रकार का, मजबूत लकड़ी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सके। जहाँ जल का अभाव हो वहाँ मिट्टी का ही मार्ग बनवाना चाहिए।

(१७) प्राकार की ऊँचाई जितना किन्तु उसके त तीयांश जितना, गोह के मुँह के आकार का एक **नगरद्वार** भी बनवाना चाहिए। प्राकार के बीच में एक बावड़ी बनाकर उससे संबद्ध एक द्वार भी बनवाये। उस द्वार को **पुष्करिणी** कहते हैं। जिस दरवाजे के आसपास चार शालाएं बनाई जायें और उस रदवाजे में पुष्करिणी द्वार से ड्योढ़ा दरवाजा लगा हो। उसका नाम **कुमारीपुरद्वार** है। जो दरवाजा दुमंजिला हो एवं जिस पर कंगूरे आदि न लगे हों, उसे **मुण्डकद्वार** कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे, कुछ परिवर्तन करके दरवाजे को बनवाये। दुर्ग के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौड़ी बनवायें, जिनके द्वारा हर प्रकार का सामान अन्दर और बाहर ले जाया-लाया जा सके।

(१८) पत्थर, कुदाली, कुल्हाड़ी, बाण, हाथियों का सामान, गदा, मुद्गर, लाठी, चक्र, मशीनें, तोपों, लोहारों के औजार, लोहे का बना सामान, नुकीले भाले, बांस, ऊँट की गर्दन के आकार वाले हथियार, अग्निबाण आदि सामान नहर के द्वारा लाया और ले जाया जाता है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त।

अध्याय ४

दुर्गनिवेशः

(१) त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः। स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः।

(२) चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः। राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशान-ग्रामपथाश्चाष्टदण्डाः। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः। द्विदण्डो हस्तिक्षेत्रेपथः। प चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथो द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः।

(३) प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे। वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथाक्तविधानमन्तःपुरं प्राङ्म्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत्। तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः। पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च। ततः पर गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च। पूर्वां दिशमधिवसेयुः। दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डांगारमक्षपटल कर्मनिष्घाश्च दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यग हमायुधागारं च। ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः। पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालावचरा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः पश्चिमदषिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मग हं च। पश्चिमोत्तरं भागं वानरथशालाः। ततः परं ऊर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः। उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यग हम्, उत्तरपूर्वं भागं कोशो गवाश्वं च। ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः। वास्तुच्छिद्रानुलासेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः।

(४) अपराजिताप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठकान् शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिराग हं च पुरमध्ये कारयेत्। कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत्। ब्राह्मैन्द्रमाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि। बहिः परिखायाः धनुश्शतावकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः। कार्याः; यथादिशं च दिग्देवताः।

(५) उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः, दक्षिणेन वर्णोत्तमानाम्। तस्याविक्रमे पूर्वः साहसदण्डः।

(६) पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः।

(७) कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत्। तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान्धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः, दशकुलीवाटं कूपस्थानम्। सर्वस्नेहधन्याक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरत णकाष्ठलोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाण-वेणुवल्कलसारदारुप्रहरणावर्णाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान् कारयेत्। नवेनानवं शोधयेत्।

(८) हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत्। अनेकमुख्यं हि परस्परभयात् परोपजापं नोपैतीति।

(९) एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः।

(१०) न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान्।
क्षिपेज्जनपदस्यान्ते सर्वान्वादापयेत्करान्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे दुर्गनिवेशश्चतुर्थोध्यायः आदितश्चतुर्विंश।।

हिन्दी अनुवाद

(१) वास्तुविद्याविशेषज्ञों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर-निर्माण के लिए चुना जाये उसमें

पूरब से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन-तीन राजमार्ग हों। इन छह राजमार्गों में नगर-निर्माण या ग ह-निर्माण की भूमि का विभाग करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वार हों, जिसमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने हों।

(२) नगर में चार दण्ड (२४ फीट) चौड़ी रथ्याएँ (छोटी गलियाँ) हों। राजमार्ग, द्रोणमुख, स्थानीय राष्ट्र, चरागाह, संयानीय (व्यापारी मंडियां), सैनिक छावनियाँ, श्मशान और गाँवों की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड (१६ गज) होनी चाहिए। जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई चार दंड होनी चाहिये। हाथियो के आने जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला रास्ता दो दंड चौड़ा होना चाहिये। रथों के लिए पाँच अरत्नि (ढाई गज) और पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौड़ा होना चाहिए। मनुष्य तथा भेड़-बगरी आदि छोटे पशुओं के लिए एक गज चौड़ा रास्ता होना चाहिये।

(३) नगर के सुद ढ़ भूमिभाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिये; साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णों की आजीविका के लिए उपयोगी हो। ग ह-भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में, निशांत-प्रणिधि प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार, अंतःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसका द्वार पूरब या पश्चिम की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय ओर मंत्रियों के भवन बनवाये जायें। अन्तःपुर के पूर्व-दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर), हस्तिशाला और कोष्ठागार हों। उसके आगे पूरब दिशा में द्रव, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवासस्थान होने चाहिए। दक्षिण-पूरब में भंडागार, राजकीय पदार्थों के आय-व्यय का स्थान और सोने-चाँदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम दिशा में शस्त्रागार तथा सोने-चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिये। उससे आगे, दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवासस्थान होने चाहिये। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति-स्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाया जाये। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों को रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे, पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, हथियार और उनके स्थान बनवाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिये। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने-खरीदने का बाजार औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोषग ह और गाय, बैल तथा घोड़ों के स्थान बनवाने चाहिएं। उसके आगे, उत्तर दिशा की ओर नगरदेवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाये जायें। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाये।

(४) दुर्गा, विष्णु, जयंत, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा, इन देवताओं की स्थापना नगर के बीच में करनी चाहिये। कोष्ठागार आदि में भी कुलदेवता या नगरदेवता की स्थापना करनी चाहिये। प्रत्येक दिशा में मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना की जाये। उत्तर का देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) होता है। नगर की परिखा से बाहर दो-सौ गज की दूरी पर चैत्य, पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबंध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जाये।

(५) नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में छोटी जाति वाले लोगों का श्मशान होना चाहिए। जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस-दण्ड दिया जाये।

(६) कापालिकों और चाण्डालों का निवास स्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाये।

(७) नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय तथा उनके योग्य भूमि की गु जायश देखकर ही, बसाया जाये। उन खेतों में फूल, फल, साग-सब्जी, कमल आदि की क्यारियाँ बनाई जायें। राजा तथा राजपुरुषों की आज्ञा प्राप्त कर उनमें अनाज तथा विक्रय योग्य वस्तुएँ पैदा की जायें। दशकुलीबाड़ (बीस हलों से जोती जाने वाली भूमि) के बीज सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए। घी, तेल,इत्र, क्षार, नमक, दवा, सूखे साक, भूसा, सूखा मांस, घास, लकड़ी, लोहा, चमड़ा, कोयला, ताँत, विष, सींग, बाँस, छाल, चन्दन या देवदार की लकड़ी, हथियार, कवच और पत्थर, इन सभी वस्तुओं को दुर्ग के अन्दर इतनी तादाद में जमा होना चाहिए कि कई वर्षों तक उपयोग में लाने के लिए पर्याप्त हों। उनमें पुरानी वस्तु की जगह नई वस्तु रख देनी चाहिये।

(८) हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चारों प्रकार की सेनाओं को अनेक सुयोग्य सेनाध्यक्षों के संरक्षण में रखा जाना चाहिये। क्योंकि अनेक सेनाध्यक्षों की नियुक्ति से पहला लाभ तो यह है कि पारस्परिक भय के कारण वे शत्रु में जाकर नहीं मिल पाते और दूसरा लाभ यह है कि एक अध्यक्ष के फूट जाने पर दूसरा अध्यक्ष कार्य संभाल सकता है।

(९) इन नगरदुर्गों के निर्माण के नियमों के अनुसार ही जनपद की सीमा के दुर्गों और उनके प्रबन्ध का विधान समझ लेना चाहिये।

(१०) राजा को चाहिए कि वह नगर में ऐसे लोगों को न बसने दें, जिनके कारण राष्ट्र तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय स्तर गिरता हो। यदि इनको बसाना ही हो तो सीमा-प्रान्त में बसाया जाये और उनसे राज्यकर वसूल किया जाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त।

अध्याय ५
सन्निधात निचयकर्म

(१) सन्निधाता कोशग हं पण्यग हं कोष्ठागारं कुप्यग हमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्।

(२) चतुरश्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा प थुशिलाभिरुभयतः पार्श्वं मूलं च प्रचित्य सारदारुप जरं भूमिसमत्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिग हं कारयेत्। तस्योपर्युभयतोनिषेधं सप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशग हं कारयेत्, प्रासादं वा। जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदथत्क्रमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत्।

(३) पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विव तस्तम्भापसारमुभयतः पण्यग हं, कोष्ठागारं च, दीर्घबहुलशालं कक्ष्याव तकुड्यमन्तः कुप्यग हं, तदेव भूमिग हयुक्तमायुधागारं, प थग्।

(४) धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं कारयेत्।

(५) सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानग हाग्निविषत्राणमार्जारनकुलारक्षाः स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत्।

(६) कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत्।

(७) तज्जातकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गु कुप्य वा प्रतिग हणीयात्। तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्त ः कारयितुश्च, सारोपधौ मध्यमः, फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः।

(८) रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिग हणीयाद्, अशुद्धं छेदयेत्। आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः।

(६) शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिग हणीयात्। विपर्यये मूलद्विगुणो दण्डः।

(१०) तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम्।

(११) सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणद्विपणचतुष्पणाः, परमपहारेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः।

(१२) कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। तद्वैवाद त्यकाराणामर्धदण्डः। परिभाषणमविज्ञाते। चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः।

(१३) तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः सन्निधाता निचयावनुतिष्ठेत्।

(१४) बाह्यमाभ्यन्तरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि।
यथा प ष्ठो न सज्येत व्यवशेषं च दर्शयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे सन्निधात निचयकर्म प चमो ध्यायः आदितः प चविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) को चाहिए कि वह कोषग ह, द श्यग ह, कोष्ठागार, पण्यग ह, शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाये।

(२) सीलरहित स्थान में बावड़ी के समान एक चौरस गड्ढा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत

लकड़ियों से बने हुए पिंजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों; उसमें तीन मंजिलें हों; तीनों मंजिलों में बढ़िया दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हों; ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने के लिए उसमें लिफ्ट लगा हो, उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हों, इस प्रकार का एक भूमिग ह (अण्डरग्राउण्ड) बनवाना चाहिए। उस भूमिग ह के ऊपर एक कोषग ह बनवाना चाहिए, उस पर भीतर-बाहर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएं हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनाया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्यभाग में प्राणदण्ड पाये पुरुषों के द्वारा, आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुवनिधि (गुप्त खजाना) बनवाना चाहिए।

(३) पक्की ईंटों से चुना हुआ, चार भवनों से परिव त, एक दरवाजे वाला अनेक कक्षों वाला एवं मंजिलों से युक्त और चारों ओर खुले हुए खम्भों वाले चबूतरे से घिरा हुआ पण्यग ह (विक्रेय वस्तुओं को रखने का घर) तथा कोष्ठागार (कोठार) बनवाना चाहिए।

अनेक लम्बे दालानों से युक्त, चारों ओर अनेक कोठरियों से घिरी हुई दीवारों वाला, भीतर की ओर कुप्यग ह बनवाना चाहिए। उसी में एक तहखाना बनवाकर शस्त्रागार बनवाया जाये।

(४) धर्मस्थ (न्यायाधीश) और महायाम (समाहर्त्ता आदि) से सजा पाये हुये लोगों को काराग ह में रखना चाहिये। काराग ह में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहिए। उसके बहिर्मार्ग तथा चारों ओर की अच्छी तरह रक्षा होनी चाहिए।

(५) उक्त सभी कोशग ह आदि स्थानों में शाला, परिखा और कूओं की तरह स्नानागार भी बनवाने चाहिए। अग्नि और विष से भी उनकी रक्षा की जानी चाहिए। विष की रक्षा के लिए बिल्ली और नेवला आदि को पालना चाहिएं। इन स्थानों की भलीभाँति रक्षा की जानी चाहिए। उनके अधिष्ठित देवताओं जैसे, कोषग ह का कुबेर, पर्ण्यग ह तथा कोष्ठागार की श्री, कुप्यग ह का विश्वकर्मा, शस्त्रागार का यम और बन्दीग ह का वरुण आदि की पूजा करवानी चाहिए।

(६) वर्षाजल को मापने के लिए कोष्ठागार में एक ऐसा कुण्ड बनवाया जाना चाहिए जिसके मुँह का घेरा एक अरत्नि (चौबीस अंगुल) हो।

(७) कोष्ठागाराध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु के विशेषज्ञों की सहायता से नये ओर पुराने का भेद समझकर रत्न, चन्दन, वस्त्र, लकड़ी, चमड़ा, बाँस आदि उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करे। यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न दे और छल से असली रत्न का अपहरण कर ले जाये तो अपहरण करने वाले और कराने वाले,दोनों को उत्तम साहसदंड दिया जाये। चन्दन आदि वस्तुओं में कपट करने पर मध्यम साहसदंड दिया जाना चाहिए। वस्त्र, लकड़ी और चमड़ा जैसे पदार्थां में छल करने वाले व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तु ले ली जाये या उसका मूल्य ले लिया जाये और उतना ही उससे दण्डरूप में वसूल कर लिया जाये।

(८) सिक्कों के पारखी पुरुषों द्वारा स्वर्णमुद्रा का संग्रह किया जाना चाहिए। सिक्कों में से जो नकली मालूम हो उसको तत्काल ही काट दिया जाये, जिससे उसको व्यवहार में न लाया जा सके। नकली सिक्कों को लाने वाले पुरुष भी प्रथम साहसदण्ड के अपराधी हैं।

(९) धान्याधिकारी पुरुष को चाहिए कि वह शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न ले। यदि वह ऐसा न करे तों उससे दुगुना दण्ड वसूल किया जाये।

(१०) इसी प्रकार पण्य, कुप्य और आयुध के सम्बन्ध में भी नियम समझने चाहिए।

(११) प्रत्येक अधिकारी पुरुष को, उसके सहकारियों को तथा उन दोनों के बीच काम करने वाले पुरुषों को, पहली बार किसी वस्तु का अपहरण करने पर क्रमशः एक पण, दो पण और चार पण का दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि वे फिर भी अपहरण करें तो क्रमानुसार उन्हें प्रथम

साहस, मध्यम साहस और उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए। इस पर भी वे न मानें तो उन्हें प्राणदण्ड दिया जाये।

(१२) कोषाध्यक्ष यदि सुरंग आदि उपाय से कोष का अपहरण करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाये। इसमें अधीनस्थ लोगों को उसका आधा दण्ड दिया जाये। यदि कोष का अपहरण करने में अधीनस्थ लोगों का हाथ न हो तो उन्हें दण्ड न दिया जाये। केवल उनकी निंदा तथा उपहास कर उनको दुत्कारा जाये। यदि चोर सेंध लगाकर चोरी करे तो उन्हें चित्रवध का दण्ड दिया जाये।

(१३) इसलिए कोषाध्यक्ष को चाहिए कि विश्वासी पुरुषों के सहयोग से ही वह धन-संग्रह आदि का कार्य करे।

(१४) कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह जनपद तथा नगर से होने वाली आय को अच्छी तरह से जाने। इस सम्बन्ध में उसे इतनी जानकारी होनी चाहिए कि यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा-जोखा पूछा जाये तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके। बचे हुए धन को वह सदा कोष में दिखाता रहे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में सन्निधात निचयकर्म नामक पाँचवां अध्याय समाप्त।

अध्याय ६

समाहर्त समुदयप्रस्थापनम्

(१) समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत।

(२) शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं ध तं क्षारः सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्।

(३) सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्।

(४) सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ता-प्रवालशङ्ख-लोहलवणभूमि-प्रस्तररसधातवः खनिः।

(५) पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः।

(६) पशुम गद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम्।

(७) गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः।

(८) स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः।

(९) इत्यायशरीरम्। मूलं भागो व्याजी परिधः क्ल प्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्।

(१०) देवपित पूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तःपुरं महानसं दूतप्रावर्तिमं कोष्ठागारमायुधागारं पण्यग हं कुप्यग हं कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्वरथद्विप-परिग्रही गोमण्डलं पशुम गपक्षिव्यालवाटाः, काष्ठत णवाटश्चेति व्यय-शरीरम्।

(११) राजवर्ष मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टम्। वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां त तीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः, शेषाः पूर्णाः। प थगधिमासक इति कालः।

(१२) करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च।

(१३) संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः स जातमेतत्करणीयम्।

(१४) कोशार्पितं राजहरः पुरव्ययश्च पुरव्ययश्च प्रविष्टं, परमसंवत्सरानुव त्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तं चापातनीयम्, एतत्सिद्धम्।

(१५) सिद्धिप्रकर्मयोगः दण्डशेषमाहरणीयं, बलात्कृतप्रतिस्तब्धमवस ष्टं च प्रशोध्यम्, ऐतच्छेषमसारमल्पसारं च।

(१६) वर्तमानः पर्युषितो न्यजातश्चायः। दिवसानुव त्तो वर्तमानः। परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। नष्टप्रस्म तमायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः। विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च। व्ययप्रत्यायः। विक्रये पण्यानामर्घव द्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसङ्घर्षे वा व द्धिरित्यायः।

(१७) नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः। दिवसानुव त्तो नित्यः। पक्षमासंवत्सरलाभो लाभः। तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति।

(१८) व्ययस जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुव त्ता चेति।

(१९) एवं कुर्यात्समुदयं व द्धिं चास्य दर्शयेत्।

हासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे समाहर्तसमुदयप्रस्थापनं षष्ठो ध्यायः आदितः षड्विंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) समाहर्त्ता (कलक्टर जनरल) को चाहिए कि वह १. दुर्ग, २. राष्ट्र, ३. खनि, ४. सेतु, ५. वन, ६. व्रज और ७, व्यापार सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे।

(२) **दुर्ग** : शुल्क, दण्ड, पौतव, नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (पटवारी, कानूनगो, अमीन), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तेल-घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तुकार, बढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट-नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन **दुर्ग** कहलाता है।

(३) **राष्ट्र** : सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपालस्तर, नाव का कर, पट्टन, विंवीत, वर्तनी, रज्जू और चोर रज्जू (चोरों को पकड़ने के लिये ग्रामवासियों से मिला धन) आदि आय के साधन **राष्ट्र** नाम से कहे जाते हैं।

(४) **खनि** : सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ **खनि** कहे जाते हैं।

(५) **सेतु** : फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेत इन सबको **सेतु** कहा जाता है।

(६) **वन** : हरिण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को **वन** कहा जाता है।

(७) **व्रज** : गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर और जानवर **व्रज** नाम से कहे जाते हैं, क्योंकि वे अपने गोष्ठ में रहते हैं।

(८) **वणिक्पथ** : स्थलमार्ग और जलमार्ग, व्यापार के इन दो मार्गों को **वणिक्पथ** कहा जाता है।

(६) ये सभी आमदनी के साधन हैं। इनके अतिरिक्त मूल (अनाज, साग, सब्जी आदि को बेचकर एकत्र किया गया धन), भाग (पैदावार का षष्ठांश), ब्याजी, परिघ, क्ल प्त, रूपिक, अत्यय आदि भी आमदनी के साधन हैं।

(१०) देवपूजा, पित पूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्य, अन्तःपुर, रसोईघर, दूत प्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यग्रह, कुप्यग ह का व्यय कर्मान्त, विष्टि, पैदल, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सेना-संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरों की रक्षा के लिए किया गया व्यय और स्थान, लकड़ी, घास आदि के जंगलों की सुरक्षा के लिए किया गया व्यय, ये सभी व्यय के स्थान कहलाते हैं।

(११) राजा के राज्याभिषेक के बाद, उसके प्रत्येक कार्य में 'व्युष्ट' नाम से कहे जाने वाले वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चारों बातों का उल्लेख होना चाहिये, राजवर्ष के तीन विभाग हैं : १. वर्षा, २. हेमन्त और ३. ग्रीष्म, इन तीनों विभागों में प्रत्येक के आठ-आठ पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष पन्द्रह दिन का होता है, प्रत्येक ऋतु के तीसरे तथा सातवें पक्ष में एक-एक दिन कम माना जाये, शेष छहों पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह दिन के माने जायें, इसके अतिरिक्त एक अधिमास भी माना जाये, यही काल-विभाजन राजकीय कार्यों में प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

(१२) समाहर्त्ता को चाहिए कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करे।

(१३) करणीय ६ प्रकार का होता है १. संस्थान २. प्रचार ३. शरीरावस्थान ४. आदान ५. सर्वसमुदयपिण्ड और ६. संजात।

(१४) सिद्ध भी ६ प्रकार का होता है १. कोशार्पित २. राजहार ३. पुरव्यय ४. परसंवत्सरानुव त्त ५. शासनमुक्त और ६. मुखाज्ञप्त।

(९५) शेष के भी ६ भेद हैं १. सिद्धप्रकर्मयोग २. दण्डशेष ३. बलात्कृत प्रतिस्तब्ध ४. अवस ष्ट ५. असार और ६. अल्पसार।

(९६) आय तीन प्रकार की है १. वर्तमान, २. पर्युषित और ३. अन्यजात। प्रतिदिन की आमदनी को **'वर्तमान'** आय कहा जाता है, पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन **'पर्युषित'** आय है, भूले हुए धन की स्म ति, अपराध-स्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, काजी-हाउस से प्राप्त धन, भेटस्परूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन **'अन्यजात'** आय कहलाती है। इसके अतिरिक्त सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन और इमारतों के बनवाने से बचा हुआ धन '**व्ययप्रत्याय'** कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है। बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बाट-तराजू आदि की बेईमानी से तथा खरीदारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

(९७) व्यय चार प्रकार का होता है : १. नित्य २. नित्योत्पादिक ३. लाभ और ४. लाभोत्पादिक। प्रतिदिन के नियमित व्यय को **'नित्य'** व्यय कहते हैं। पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय किया गया धन **'लाभ'** कहलाता है। नित्य तथ लाभ नामक व्यय से अधिक खर्च हो जाने वाले धन को क्रमशः **'नित्योत्पादिक'** तथा **'लाभोत्पादिक'** कहा जाता है।

(९८) सब तरह के आय-व्यय का भली-भाँति हिसाब करके भी बचत रूप में निकलने वाला धन **'नीवी'** कहलाता है, जो दो प्रकार का होता है १. प्राप्त और २. अनुव त्त। **प्राप्त** वह, जो खजाने में जमा हो और **अनुव त्त** वह, जो खजाने में जमा किया जाने वाला हो।

(९९) समाहर्त्ता को चाहिए कि वह ऊपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करे और आय-व्यय में बचत-हानि का लेखा-जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहिले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में समाहत समुदयप्रस्थापन नामक छठा अध्याय समाप्त।

अध्याय ७

अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः

(१) अक्षपटलमध्यक्षः प्राङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत्।

(२) तत्राधिकरणानां संख्याप्रचारस जाताग्रं, कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे व द्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजी-योगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं, रत्नसारफल्गुकुप्यानामतर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानमानोन्मानभाण्डं, देशग्रामजातिकुलसङ्घानां धर्मव्यवहारचारित्रसंस्थानं, राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहार-भक्तवेतनलाभं, राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं निर्देशौत्पादिकप्रतीकारलाभं, निमित्रामित्राणां च सन्धिविक्रमप्रदानादानं निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत्।

(३) ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीं उपस्थान प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धेन प्रयच्छेत्। उत्तममध्यमावरेषु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात्। सामुदायिकेष्ववक्ल प्तिकं यमुपहत्य न राजानुतप्येत्।

(४) संहग्राणिः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भ त्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः।

(५) त्रिशतं चतुःप चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः। तमाषाढीपर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात्। करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात्। अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारम्। प्रचारचरित्रसंस्थानान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति। उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन, शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन, संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन, कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन हिंसाबुद्धिः कोपेन, विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद् दर्पेण, तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानात् लोभेन।

(६) तेषामानुपूर्व्या यावानर्थोपघातः तावानेकोत्तरो दण्ड इति मानवाः। सर्वत्राष्टगुण इति पाराशराः। दशगुण इति बार्हस्पत्याः। विंशतिगुण इत्यौशनसाः। यथापराधमिति कौटिल्यः।

(७) गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयुः। आगतानां समुद्रपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्रासम्भाषावरोधं कारयेत्। आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीमीमवहारयेत्। यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत, व्ययस्य वा यत् परिहापयेत्, तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत्। विपर्यये तमेव प्रति स्यात्।

(८) यथाकालमनागतानामपुस्तनीवीकानां वा देयदशबन्धो दण्डः। कार्मिके चोपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः। विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः।

(९) प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः। प थग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात्।

(१०) अकृताहोरूपहरं मसमाकाङ्क्षेत। मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात्। अल्पशेषनीविकं प चरात्रमाकाङ्क्षेत ततः परम्।

(११) कोशपूर्वमहोरूपहरं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसङ्कलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत।

(१२) दिवसप चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत्। व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुव त्ति-प्रमाणदायकदापक- निबन्धकप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत्। व्युष्टदेशकालमुखलाभकारणदेययोग-परिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधात कप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत्। व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूप-लक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं समानयेत्।

(१३) राजार्थे कारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वापि कल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः।

(१४) क्रमावहीनम त्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुकमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः।

(१५) नीवीमवलिखतो द्विगुणः, भक्षयतो ष्टगुणः, नाशयतः प चबन्धः प्रतिदानं च। मित्यावादे स्तेयदण्डः। पश्चात् प्रतिज्ञाते द्विगबुणः प्रस्म तोत्पन्ने च।

(१६) अपराधं सहेताल्पं तुष्येदल्पे पि चोदये।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत्।।

अत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः सप्तमो ध्यायः, आदितः सप्तविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) आय-व्यय का निरीक्षक, अक्षपटल का निर्माण कराये, उसका दरवाजा पूरब या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए, उसमें लेखकों के बैठने के लिए कक्ष और आय-व्यय की निबन्ध-पुस्तकों को रखने के लिये नियमित व्यवस्था होनी चाहिये।

(२) उसमें विभिन्न विभागों की नामावली, जनपद की पैदावार एवं उसकी आमदनी का विवरण, खान तथा कारखानों के आय-व्यय का हिसाब, कर्मचारियों की नियुक्ति, अन्न एवं सुवर्ण आदि का उपयोग, प्रयाम (अनाज के गोदाम), व्याजी (कम तोलने के कारण व्यापारियों व दण्डरूप में हुई आमदनी), योग, स्थान, वेतन, विष्टि आदि का ब्यौरा, रत्नसार एवं कुप्य आदि पदार्थों के मूल्य, उनका गुण, तौल, उनकी लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई एवं असली मूलधन का उल्लेख, देश, ग्राम, जाति, कुल सभा-सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा परिस्थितियों का उल्लेख, राजकीय सहायता से जीवित रहने वाले प्रग्रह, निवासस्थान, भेंट, परिहार एवं वेतन आदि का उल्लेख, महारानी तथा राजपुत्रों द्वारा रत्न एवं भूमि आदि की प्राप्ति का विवरण, राजा, महारानी तथा राजपुत्रों को नियमित रूप से दिये जाने वाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन, उत्सवों तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारों से प्राप्त धन का उल्लेख और मित्र राजाओं तथा शत्रु राजाओं के साथ संधि-विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त हुआ अथवा खर्च हुए धन का विवरण आदि सभी ऐसे विषय हैं जिनका उल्लेख निबन्धपुस्तक में किया जाना चाहिये।

(३) इसके बाद सभी उत्पत्ति-केन्द्रों एवं विभागों के लिए किए जाने वाले, किए गए तथा बचे हुए आय, व्यय नीवी, कार्यकर्त्ताओं की उपस्थिति, प्रचार, चरित्र और संस्थान आदि सब बातों को रजिस्टर में दर्ज करके राजा को दे देना चाहिये। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट जैसे भी कार्य हों उनके अनुसार ही उनके अध्यक्ष नियुक्त किये जाने चाहिये। एक ही कार्य को करने वाले अनेक व्यक्तियों में उसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो और जिसे दण्ड देने के पश्चात् राजा को पश्चात्ताप न करना पड़े।

(४) यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गबन करके उसको अदा करने में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी स्त्री एवं लड़की अथवा उसके नौकर अदा करें।

(५) तीन-सौ-चौवन दिन-रात तक एक कर्मसंवत्सर होता है। उसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को समझनी चाहिये। इसी वर्ष-गणना के हिसाब से प्रत्येक अध्यक्ष का वेतन दिया जाना चाहिये। यदि अध्यक्ष की नियुक्ति वर्ष के मध्य में हुई है तो उसको कम वेतन और यदि उसने पूरे वर्ष कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिये। प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का

ब्यौरा उपस्थिति रजिस्टर से देखना चाहिये। अध्यक्ष को चाहिये कि वह जनपद के समस्त कार्यालयों की कार्य-व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों से प्राप्त करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो अपनी अज्ञानता के कारण वह धनोत्पादन में हानिकर सिद्ध होता है। १. अज्ञान २. आलस्य ३. प्रमाद ४. काम ५. क्रोध ६. दर्प, ७. लोभ, ये धनोत्पादन में विघ्न डालने वाले दोष हैं। अधिक परिश्रम से कतराने के कारण आलस्य के द्वारा, गाना-बजाना तथा स्त्रियों में आसक्त रहने के कारण प्रमाद के द्वारा, निन्दा, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भय द्वारा, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम द्वारा, किसी क्रूरता के कारण क्रोध द्वारा, विद्या, धन एवं राजप्रिय होने के कारण दर्प द्वारा और नाप-तौल तर्कना तथा हिसाब में गड़बड़ कर देने के कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी लोग आमदनी में बाधा डाल देते हैं।

(६) आचार्य मनु के अनुयायी विद्वानों का कहना है कि 'जो कर्मचारी ऊपर निर्दिष्ट दोषों के वशीभूत होकर जितना अपराध करे उसको उसी क्रम से दण्ड दिया जाना चाहिये' अर्थात् यदि वह अज्ञान के कारण अपराध करता है तो उसे उतना ही दण्ड दिया जाना चाहिये जितने का कि उसने नुकसान किया है, यदि वह आलस्य के कारण नुकसान करता है तो दुगुना, प्रमाद के कारण नुकसान करता है तो तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिये। आचार्य पराशर के मतानुयायियों का कहना है कि 'अपराध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आठगुना दण्ड देना चाहिये, क्योंकि सभी अपराध एक समान हैं।' आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वानों का मत है कि 'सभी अपराधियों को दसगुना दण्ड दिया जाना चाहिए।' शुक्राचार्य के अनुयायी कहते हैं कि 'सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि जो जितना अपराध करे तदनुसार ही उसे दण्ड दिया जाना चाहिये।'

(७) सभी कार्यालयों के अध्यक्ष आषाढ़ के महीने में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आकर हिसाब का मिलान करें। उन आये हुए लोगों को तब तक एक-दूसरे से बातचीत न करनी दी जाये तथा मिलने न दिया जाये, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे रजिस्टर तथा व्यय से बचा हुआ धन मौजूद हैं। सर्वप्रथम आय-व्यय को सुनकर उसके पास जो बचत शेष हो उसे ले लिया जाये। अध्यक्ष की बताई हुई आय-राशि से यदि रजिस्टर का हिसाब अधिक निकले ओर उसी प्रकार बताए हुए व्यय की अपेक्षा रजिस्टर में उससे कम निकले तो अध्यक्ष पर, उसके द्वारा बताई गई कम-अधिक रकम का आठगुना जुर्माना किया जाये। यदि आमदनी से अधिक अथवा व्यय से कम रकम रजिस्टर में चढ़ी हो तो ऐसी दशा में अध्यक्ष को दण्ड न दिया जाये, वरन् आय-व्यय की जो कमी-बेसी हुई है उसी को दे दी जाये।

(८) जो अध्यक्ष निश्चित समय में अपने रजिस्टर तथा शेष धन आदि को लेकर प्रधान कार्यालय में उपस्थित नहीं होता उसके हिसाब में जितना बाकी निकले उसका दस गुना जुर्माना उस पर किया जाना चाहिये। यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर क्षेत्रीय कार्यालयों में पहुंच जाये और वहां के विभागीय अध्यक्ष कार्यालय का हिसाब-किताब दिखाने में असमर्थ हों तो उन्हें प्रथम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर न पहुँच पावे तो उसे दुगुना प्रथम साहस-दण्ड देना चाहिये।

(६) राजा के महामात्र आदि प्रधान कर्मचारी आय-व्यय तथा नीवी सम्बन्धी सारी राजकीय व्यवस्थाएं प्रजाजनों को समझायें-बुझायें। यदि उनमें से कोई झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१०) द्रव्य की वसूली करने वाला राजकर्मचारी यदि निर्धारित समय पद द्रव्य-वसूली न कर सके तो उसे एक मास का ओर समय दिया जाये। यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके राजकोष में न पहुँचा सके तो उस पर प्रति मास के हिसाब से दो-सौ रुपया जुर्माना कर देना चाहिये। जिस अध्यक्ष के पास थोड़ा राजदेय धन बाकी हो, निर्धारित समय से केवल पाँच दिन तक

उसकी प्रतीक्षा की जाये। तदनन्तर उसे भी दंडनीय समझा जाये।

(११) कोषधन ओर कोषरजिस्टर लाने वाले अध्यक्ष की परीक्षा पहिले धर्म के द्वारा ली जाये, अर्थात् उसे देखा जाये कि वह धर्मात्मा है या दम्भी, फिर उसके व्यवहार को देखा जाये, तदनन्तर उसके आचार-विचार, उसकी पूर्वस्थिति, उसके कार्य एवं हिसाब-किताब और अन्त में उसके कार्यों को पारस्परिक मिलान करके उसकी परीक्षा ली जाये, गुप्तचरों द्वारा भी उसके भेद जाने जायें।

(१२) अध्यक्ष को चाहिये कि वह प्रतिदिन, प्रति पाँच दिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रति चार मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय-व्यय एवं नीवी का लेखा-जोखा साफ-सुथरे ढंग से रखे। अर्थात् वर्षारम्भ से, पहिले एक दिन का हिसाब, फिर एक साथ पाँच दिन का हिसाब, फिर एक साथ पन्द्रह दिन का हिसाब, फिर एक साथ एक मास का हिसाब, और अन्त में एक साथ पूरे वर्ष का हिसाब करके रखे। आय का लेखा निर्दोष और साफ रहे, एतदर्थ रजिस्टर में राजवर्ष (मास, पक्ष, दिन), देश, काल, मुख (आयमुख, आयशरीर), उत्पत्ति, अनुव त्ति प्रमाण, कर देने वाले का नाम, दिलानेवाले अधिकारी का नाम, लेखक का नाम और लेने वाले का नाम, इस प्रकार स्तंभ बने होने चाहिए। व्यय का लेखा तैयार करने के लिए रजिस्टर में इस प्रकार के खाने होने चाहिए : व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ व्यय का कारण, देय वस्तु का नाम, मिलावटी द्रव्य में अच्छाई-बुराई का उल्लेख, तौल, किसकी आज्ञा से व्यय किया गया, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेने वाले का पूरा विवरण। इसी प्रकार नीवी का लेखा; व्युष्ट, देश, काल, मुख, द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य की विशेषता, तौल, जिस पात्र में द्रव्य रखा जाये और द्रव्य का संरक्षक आदि विवरणों के आधार पर तैयार करना चाहिये।

(१३) यदि कारणिक अर्थलाभ को रजिस्टर में दर्ज नहीं करता है, राजकीय आज्ञा का उल्लंघन करता है, अथवा आय-व्यय के सम्बन्ध में विपरीत कल्पनाएं भी करता है तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१४) क्रम के विरुद्ध, उलट-पलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को बिना समझे-बूझे ही लिख देना और एक वस्तु को दुबारा चढ़ा देना, ऐसी गड़बड़ी करने वाले कर्मचारी को बारह पण का दण्ड दिया जायें

(१५) यदि नीवी के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी गड़बड़ी पायी जाये तो चौबीस पण दण्ड, उसका गबन करे तो साठ पण दण्ड दिया जाना चाहिये। झूठ बोलने वाले को चोर जितना दण्ड देना चाहिये। हिसाब-किताब के सम्बन्ध में पीछे से किसी बात को स्वीकार करने पर चोरी से दुगुना दण्ड और पूछे जाने पर किसी बात का उत्तर न देकर बाद में उसका उत्तर देने पर भी यही दंड देना चाहिये।

(१६) राजा को चाहिये के वह अपने अध्यक्ष के थोड़े अपराध को क्षमा कर दे और यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी भी व द्धि कर लेता है तो उसके प्रति प्रसन्नता एवं संतोष प्रकट करे। महान् उपकार करने वाले अध्यक्ष का कृतज्ञ होकर राजा को सदैव उसका सम्मान करना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अक्षपटल में गाणनिक्याधिकार नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ८

समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम्

(१) कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्वं कोषमवेक्षेत।

(२) प्रचारसम द्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरग्रहा युक्तप्रतिषेधः सस्यसम्पत् पण्यबाहुल्यमुपसर्गप्रमोक्षः परिहारक्षयो हिरण्योपायनमिति कोषव द्धिः।

(३) प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारो वस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनमपहारश्चेति कोषक्षयः।

(४) सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः। तत्र दशबन्धो दण्डः।

(५) कोषद्रव्याणां व द्धिप्रयोगः प्रयोगः।

(६) पण्यवव्यवहारो व्यवहारः। तत्र फलद्विगुणो दण्डः।

(७) सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं प्राप्तं वेत्यवस्तारः। तत्र प चबन्धो दण्डः।

(८) क्ल प्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयतीति परिहापणम्। तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः।

(९) स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः। तत्र रत्नोपभोगे घातः, सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः, फल्गुकुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः।

(१०) राजद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनं, तद् उपभोगेन व्याख्यातम्।

(११) सिद्धमायं न प्रवेशयति निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति, प्राप्तां नीवीं विप्रतिजानीत इत्यपहारः। तत्र द्वादशगुणो दण्डः।

(१२) तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत्-पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम्, पश्चात् सिद्धं पूर्वमवतारितम्, साध्यं न सिद्धम् असाध्यं सिद्धम्, सिद्धमसिद्धं कृतम्, असिद्धं सिद्धं कृतम्, अल्पसिद्धं बहुकृतम्, बहुसिद्धमल्पं कृतम्, अन्यत् सिद्धमन्यत् कृतम्, अन्यतः सिद्धमन्यतः कृत्, देयं न दत्तम्, अदेयं दत्तम्, काले न दत्तम्, अकाले दत्तम्, अल्पं दत्तं बहु कृतम्, बहु दत्तमल्पं कृतम्, अन्यद् दत्तमन्यत् कृतम्, अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम्, प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम्, अप्रिविष्टं प्रविष्टं कृतम्, कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम्, दत्तमूल्यं न प्रविष्टम्, संक्षेपो विक्षेपः कृतः, विक्षेपः संक्षेपो वा, महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम् अल्पार्धं महार्घेण वा, समारोपितो र्घः, प्रत्यवरोपितो वा, रात्रयः समारोपिताः, प्रत्यवरोपिता वा, संवत्सरो मासविषमः कृतः, मासो दिवसविषमो वा, समागमविषमः, मुखविषमः, धार्मिकविषमः, निर्वर्तनविषमः, पिण्डविषमः, वर्णविषमः, अर्धविषमः, मानविषमः, मापनविषमः, भाजनविषम इति हरणोपायाः।

(१३) तत्रोपयुक्तनिधायकयनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमन्त्रिवैयाव त्यकरानेकैकशो नुयु जीत। मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः।

(१४) प्रचारे चावघोषयेत्-अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति। प्रज्ञापयतो यथोपघातं दापयेत्। अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत। वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात्। महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत।

(१५) कृतप्रतिघातावस्थः सूचको निष्पन्नार्थः षष्ठमंशं लभेत, द्वादशमंशं भ तकः। प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत। अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वादण्डं लभेत, न चानुग्राह्यः।

(१६) निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वापवाहयेत्।

अभियुक्तोपजापात्तु, सूचको वधमाप्नुयात्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनमष्टमो ध्यायः, आदितः अष्टाविंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) सारे कार्य कोष पर निर्भर हैं। इसलिए राजा को चाहिये कि सबसे पहिले कोष पर ध्यान दे।

(२) राष्ट्र की सम्पत्ति को बढाना, राष्ट्र के चरित्र पर ध्यान रखना, चोरों पर निगरानी रखना, राजकीय अधिकारियों को रिश्वत लेने से रोकना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करना, जल-स्थल में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक व्यापार-योग्य वस्तुओं को बढ़ाना, अग्नि आदि के भय से राज्य की रक्षा करना, ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना और हिरण्य आदि की भेंट लेना, ये सब कोषव द्धि के उपाय हैं।

(३) कोषक्षय के आठ कारण हैं : १. प्रतिबन्ध, २. प्रयोग, ३. व्यवहार, ४. अवस्तार, ५. परिहापण, ६. उपभोग, ७. परिवर्तन और ८. अपहार।

(४) राजकर को वसूल करना, वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना, और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का **प्रतिबंध** है। जो अध्यक्ष इन माध्यमों से कोष का क्षय करे, उस पर क्षत राशि से दशगुना जुर्माना करना चाहिए।

(५) कोषधन का स्वयं ही लेन-देन करके व द्धि का यत्न करना **प्रयोग** कहलाता है। ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुर्माना करना चाहिये।

(६) कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यापार करना **व्यवहार** कहलाता है। ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए।

(७) राजकर वसूल करने वाला अधिकारी, नियत समय से कर-वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा से, मियाद बीत जाने का भय देकर प्रजा को तंग करके जो धन एकत्र करता है उसे **अवस्तार** कहते हैं। ऐसा करने पर उसे नुकसान की राशि से पाँच गुना दण्ड देना चाहिए।

(८) जो अध्यक्ष अपने कुप्रबंध के कारण कर की आय को कम कर देता है और व्यय की राशि को बढ़ा देता है, उस क्षय को **परिहापण** कहते हैं। ऐसा करने पर अध्यक्ष को क्षय से चौगुना दण्ड दिया जाये।

(९) राजकोष के द्रव्य को स्वयं भोग करना तथा दूसरों को भोग कराना **'उपभोग'** क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष को, यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो प्राणदण्ड, सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थो का उपभोग करता है तो, उससे द्रव्य वापिस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१०) राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों से बदल लेना **परिवर्तन** कहलाता है। इस कार्य को करने वाले अध्यक्ष के लिए भी उपभोग-क्षय के समान ही दण्ड दिया जाये।

(११) प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढ़ाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी के सम्बन्ध में मुकर जाना, यह तीन प्रकार का **अपहार** है। अपहार के द्वारा कोषक्षय करने वाले अध्यक्ष को हानि से बारहगुना दण्डित करना चाहिये।

(१२) अध्यक्ष, चालीस प्रकार के उपायों से राजद्रव्य का अपहरण कर सकते हैं। पहले फसल में

प्राप्त हुए द्रव्य को दूसरी फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना, दूसरी फसल की आदमनी का कुछ हिस्सा पहली फसल के रजिस्टर में चढ़ा देना, राजकर को रिश्वत लेकर छोड़ देना, राजकर से मुक्त देवालय, ब्राह्मण आदि से कर वसूल करना, कर देने पर भी उसको रजिस्टर में न चढ़ाना, कर न देने पर भी उसको रजिस्टर में भर देना, कम प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर पूरा दर्ज कर देना पूरे प्राप्त हुए धन को अधूरा लिख देना, जो द्रव्य प्राप्त हुआ है उसकी जगह दूसरा ही द्रव्य भर देना, एक पुरुष से प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर, दूसरे के नाम दर्ज कर देना, योग्य वस्तु को न देना, जो वस्तु देने योग्य नहीं है, उसका दे देना, समय पर किसी वस्तु को न देना, रिश्वत लेकर असमय में ही उस वस्तु को दे देना, थोड़ा देकर भी बहुत लिख देना, बहुत देकर भी थोड़ा लिख देना, अभीष्ट वस्तु की जगह दूसरी ही वस्तु दे देना, जिस व्यक्ति को देने के लिए कहा गया है, उसके बदले में किसी दूसरे को ही दे देना, राजधन को वसूल करके उसे खजाने में जमा न करना, राजकर को वसूल न करके, रिश्वत लेकर, उसे जमा-रजिस्टर में चढ़ा देना, राजाज्ञा से वस्त्रादि क्रय करके तत्काल ही उनका मूल्य चुकता न करके एकांत में कुछ रकम देना, अधिक मूल्य से क्रीत वस्तुओं की रकम कम करके रजिस्टर में लिखना, सामूहिक कर वसूली को अलग-अलग व्यक्ति से लेना, अलग-अलग व्यक्ति से लिये जाने वाले कर को सामूहिक रूप में वसूल करना, बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य की वस्तु से बदल देना, अल्पमूल्य की वस्तु को बहुमूल्य वस्तु से बदलना, रिश्वत लेकर बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना, वस्तुओं का भाव बढ़ा देना, दो दिन का वेतन दिया हो तो चार दिन बढ़ाकर लिख देना, चार दिन का वेतन दिया हो तो दो दिन घटाकर लिख देना, मलमासरहित संवत्सर को मलमास युक्त बना देना, महीने के दिन घटा-बढ़ाकर लिख देना, नौकरों की संख्या बढ़ाकर लिख देना, एक जरिये से हुई आमदनी को दूसरे जरिये से दर्ज कर देना, ब्राह्मणादि को स्वीकृत धन में से कुछ स्वयं ले लेना, कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल करना, सामूहिक वसूली में से न्यूनाधिक्य रूप में धन लेना, वर्णविषमता दिखाकर धन का अपहरण कर लेना, जहाँ मूल्य निर्धारित न हो, वहाँ दाम बढ़ाकर लाभ उठाना, तोल में कमी-बेशी करके उपार्जन करना, नाप में विषमता पैदा करके धन कमाना और घ त से भरे हुए सौ बड़े घड़ों की जगह सौ छोटे घड़े दे देना, राजकीय धन को अपहरण करने के ये चालीस तरीके हैं।

(१३) यदि किसी अध्यक्ष के सम्बन्ध में राजा को यह सन्देह हो जाये कि उसने अनुचित उपायों से राजकीय धन का अपहरण किया है तो राजा को चाहिये कि उस विभाग के प्रधान निरीक्षक, कोषाध्यक्ष, लेखक, कर लेने वाले और कर दिलाने वाले सलाहकारों को अलग-अलग बुलाकर यह पूछे कि उनके अध्यक्ष ने गबन किया है या नहीं। यदि उनमें से कोई झूठ बोले तो उसे गबन करने वाले अपराधी के समान ही दण्ड दिया जाये।

(१४) अपने सारे राज्य में राजा यह घोषणा करा दे कि अपराधी अध्यक्ष ने जिस जिसका गबन किया है, उसकी सूचना राजदरबार को भेज दी जाये। इस प्रकार सूचना मिलने पर राजा, प्रजा की उस हानि को पूरा करे। यदि अध्यक्ष के विरुद्ध एक साथ ही अनेक शिकायतें हों और उनमें से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी अपराध साबित हो जाने पर, सभी शिकायतों का अभियोग उस पर लगाया जाये। यदि अभियुक्त कुछ अपराधों को स्वीकार करता है और कुछ से मुकर जाता हे, तो उससे पूरे सबूत मांगे जायें। गबन किये गये बहुत से धन के सम्बन्ध में पूरे सबूत नहीं मिलते, कुछ ही धन के सम्बन्ध में सबूत मिल पाते हों, तो उस पर पूरे गबन का अभियोग लगाना चाहिये।

(१५) यदि कोई निष्पक्ष, राजहितेच्छु व्यक्ति किसी अध्यक्ष के गबन की सूचना देता है, तो अपराध सिद्ध हो जाने पर, उस अपहृत धन का छठा भाग सूचना देने वाले को दिया जाना चाहिये।

यदि सूचना देने वाला व्यक्ति राजकर्मचारी हो तो उसे बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिये। यदि अभियोग बहुत से धन का सिद्ध हो चुका है, किन्तु मिला कुछ ही धन है तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उस प्राप्त धन में से ही हिस्सा देना चाहिये। यदि अपराध सिद्ध न हो सके तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिये। किसी भी अपराधी को क्षमा न किया जाये।

(१६) अभियोग साबित हो जाने पर सूचना देने वाला व्यक्ति अदालत से अपने को बरी करा सकता है, किन्तु रिश्वत लेकर यदि वह अपराधी के पक्ष में हो जाता है, और सच्चा बयान नहीं देता है तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अपहृतप्रत्यायन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ६

उपयुक्तपरीक्षा

---

(१) अमात्यसम्पदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः। कर्ममु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत्, चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम्। अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते।

(२) तस्मात् कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात्। ते यथासन्देशमसंहता अविग हीताः कर्माणि कुर्युः। संहता भक्षयेयुः विग हीता विनाशयेयुः। न चानिवेद्य भर्तुः कि चिदारम्भं कुर्यु रन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः। प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद् दिवसवेतनव्ययद्विगुणम्।

(३) यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत।

(४) अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति। विपर्यये यथायतिव्ययश्च न भक्षयति इत्याचार्याः अपसर्पेणैवोपलभ्यते इति कौटिल्यः।

(५) यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति। स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदेनं यथागुणं दापयेत्।

(६) यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति। स चेद् राजार्थमुपनयत्यल्पापराधं वारयितव्यः। महति यथापराधं दण्डयितव्यः।

(७) यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति। स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथापराधं दण्डयितव्यः।

(८) तस्मादस्य यो यस्मिन्नधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत।

(६) मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत्। यः पित पैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः। यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद् भक्षयति स तादात्विकः। यौ भ त्यात्यमपीड़ाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः। सः पक्षवांश्चेदनादेयः। विपर्यये पर्यादातव्यः।

(१०) यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः सन्निधत्ते, अवनिधत्ते, अवस्रावयति वा-सन्निधत्ते स्ववेश्मनि, अवनिधत्ते पौरजानपदेषु अवस्रावयति परविषये-तस्य संत्री मन्त्रिमित्रभ त्यबन्धुपक्षमागतिंगतिं च दुव्याणामुपलभेत।

(११) यश्चास्य परिविषये स चारं कुर्यात्तमनुप्रविश्य मन्त्रं विद्यात्। सुविदिते शत्रुशासनापदेशनैनं घातयेत्।

(१२) तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः।

(१३) उत्तराध्यक्षा हस्त्यश्वरथारोहाः। तेषामन्तेवासिनः शिल्पशौचयुक्ताः सङ्ख्यायायकादीनामपसर्पाः।

(१४) बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत्।

(१५) यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पो प्यनास्वादयितुं न शक्यः।।

(१६) मत्स्या यथान्तःसलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः।।

(१७) अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम्।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः।।

(१८) आस्रवयेच्चोपचितान् विपर्यस्येच्च कर्मसु।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा।।

(१६) न भक्षयन्ति ये त्वर्थान् न्यायतो वर्धयन्ति च।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे उपयुक्तपरीक्षा नवमो ध्यायः, आदितः एकोनत्रिंशः।।

हिन्दी अनुवाद

(१) राजकीय उच्चपदस्थ कर्मचारियों को अमात्य के गुणों से युक्त होना चाहिए, योग्यता एवं कार्यक्षमता के आधार पर ही उन्हें भिन्न-भिन्न पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिये। उपयुक्त पदों पर नियुक्त किए जाने के अनन्तर समय-समय पर राजा उनके चाल-चलन की निगरानी कराता रहे, क्योंकि मनुष्यों की चित्त-व त्तियां सदा एक जैसी नहीं रहती हैं। देखा यह जाता है कि कभी कभी मनुष्य भी घोड़ों की आदत जैसा आचरण करने लगते हैं। अर्थात घोड़ा जैसे अपने स्थान पर बँधा हुआ शान्त दिखाई देता है, किन्तु रथ आदि में जोड़ते ही वह बिगड़ पड़ता है, वैसे ही स्वभाव से शांत दिखाई देने वाला मनुष्य भी कार्य पर नियुक्त हो जाने के बाद उद्दण्ड हो जाता है।

(२) इसलिए राजा को चाहिए कि अध्यक्षों के सम्बन्ध में वह कारण, देश, काल, कार्य, वेतन और लाभ, इन बातों की जानकारी रखे। उच्चपदस्थ कर्मचारियों को भी चाहिए कि वे राजा के आदेशानुसार एक-दूसरे से द्वेष न करते हुए जुदा-जुदा रह कर ही अपने कार्यों में तत्पर रहें। यदि वे आपस में मिल जायेंगे तो राजधन का अपहरण करेंगे और परस्पर द्वेष करेंगे तो राजकार्यों को नष्ट कर देंगे। कर्मचारियों को चाहिए कि राजा की आज्ञा प्राप्त किए बिना वे किसी भी नये कार्य का आरम्भ न करें, किन्तु आपत्तियों का प्रतीकार करने के लिए किये जाये योग्य कार्यों को वे राजा की अनुमति प्राप्त किए बिना भी आरम्भ कर सकते हैं। यदि उच्चपदस्थ कर्मचारी अपने कार्यों में प्रमाद करें तो उन पर उनके वेतन का दुगुना दण्ड किया जाये।

(३) जो पदाधिकारी आदिष्ट कार्य को पूरा करके, स्वेच्छया किसी दूसरे हितकर कार्य को भी करता हे, उसे तरक्की और सम्मान दिया जाना चाहिये।

(४) कुछ पुरातन आचार्यों का कहना है कि 'यदि किसी अध्यक्ष की आमदनी थोड़ी और खर्च अधिक दिखाई दे, तो समझ लेना चाहिये कि वह राज्य के धन का अपहरण करता है। यदि जितनी आमदनी हे, उतना ही व्यय दिखाई दे तो समझना चाहिये कि वह न तो राजधन का गबन करता है और न रिश्वत लेता है।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कथन है कि 'धन का अपहरण करने वाला भी थोड़ा खर्च कर सकता है। अतः गुप्तचरों द्वारा ही इस कार्य का ठीक पता लग सकता है।'

(५) जो अधिकारी नियमित आय में कमी दिखाता है, वह निश्चय ही राजधन का अपहरण करता है। यदि उसकी अज्ञानता, प्रमाद एवं आलस्य के कारण हुई है तो उसे अपराध के अनुसार दुगुना, तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिये।

(६) जो अधिकारी नियमित आय से दुगुनी आय दिखाता है, वह निश्चय ही प्रजा को पीड़ित कर इतना धन वसूल करता है। यदि वह उस दुगुनी आमदनी को राजकोष के लिए भेज देता है

तो उसे इतना ही दण्ड देना चाहिए, जिससे कि आगे ऐसा अनुचित कार्य न कर सके। यदि वह उस अधिक धन को राजकोष के लिए न भेज कर स्वयं ही खा लेता है तो उसे अपराध के अनुसार कठोर दण्ड दिया जाना चाहिये।

(७) जो अधिकारी व्ययनिमित्त निर्धारित राशि को खर्च न करके बचा लेता है वह मजदूरों का पेट काटता हैं उस अपराधी अधिकारी को, कार्यहानि के मूल्य का तथा मजदूरी के अपहरण का, यथोचित दण्ड दिया जाना चाहिये।

(८) इसलिए प्रत्येक राजकीय अधिकारी का कर्त्तव्य है कि अपने कार्य की यथार्थता और तत्सम्बन्धी आय-व्यय का विवरण वह संक्षेप में तथा विस्तार से राजा के सम्मुख प्रस्तुत करे।

(६) उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह मूलहर, तादात्विक तथा कदर्य पुरुषों पर भी अंकुश रखे। अपनी वंशानुगत सम्पत्ति का उपभोग जो अन्याय से करता है वह **मूलहर** है। जो पुरुष जितना उत्पन्न करता है उतना ही व्यय भी कर लेता है, वह **तादात्विक** कहलाता है। जो अपने को और अपने नौकरों को कष्ट देकर धनोपार्जन करता है वह **कदर्य** कहा जाता है। यदि निषेध करने पर भी ये मूलहर आदि अपने कार्यों को न छोड़ें तो उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाये ओर बंधु-बांधव हों तो उन्हें पदच्युत कर दिया जाये।

(१०) जो कदर्य (कंजूस) पदाधिकारी गहरी आमदनी करता है, धन को भूमि में गाड़ता है, उसको किसी के पास छिपाकर रखता है, शत्रुदेश में भेजकर किसी के पास जमा करता है, उस अधिकारी के परामर्शदाता, मित्र, नौकर, बंधु-बांधव और आय-व्यय आदि का पता गुप्तचर प्राप्त करें।

(११) गुप्तचर को चाहिए कि वह कदर्य अधिकारी के धन की शत्रुदेश में ले जाने वाले पुरुष से मिलकर अथवा उसका सेवक बनकर, उसके रहस्य का पता लगावे। गुप्तचर द्वारा राजा को जब इस भेद की सही जानकारी प्राप्त हो जाये तो वह शत्रु के आदेश का बहाना बनाकर उस कदर्य अधिकारी को मरवा डाले।

(१२) इसलिए प्रत्येक विभाग के सभी अध्यक्षों को चाहिए कि वे संख्यानक, लेखक, रूपदर्शक, नीवीग्राहक और उत्तराध्यक्ष इस सबके सहयोग से ही कार्य करें।

(१३) उत्तराध्यक्ष (प्रधान अधिकारी) उनको नियुक्त किया जाये, जो हाथी, घोड़े और रथों की सवारी में निपुण हों। उनके अधीनस्थ ऐसे आज्ञाकारी, कुशल, पवित्र एवं सदाचरणशील कार्यकर्ता हों, जो संख्यानक आदि राजकीय कर्मचारियों की प्रव त्तियों का पता लगाने में गुप्तचरों का कार्य करें

(१४) प्रत्येक विभाग में अनेक उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए, किन्तु उन्हें एक ही विभाग में रहने दिया जाये।

(१५) जैसे जीभ में रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद लिए बिना नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार अर्थाधिकार कार्यों पर नियुक्त पुरुष, अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह असंभव है।

(१६) जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछलियां पानी पीती नहीं दिखाई देती हैं, उसी प्रकार अर्थकार्यों पर नियुक्त कर्मचारी भी धन का अपहरण करते हुए नहीं जाने जा सकते हैं।

(१७) आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि का पता लगाया जा सकता है, किन्तु धन का अपहरण करने वाले कर्मचारियों की गतिविधि से पार पाना कठिन है।

(१८) राजा, जब ऐसे अध्यक्षों का पता लगा ले, तो वह उन धनसम्पन्न अधिकारियों की सारी सम्पत्ति को छीन ले और उनके उच्चपदों से गिराकर निम्न पदों पर नियुक्त कर दे, जिससे भविष्य में गबन न कर सकें एवं अपने गबन को स्वयं ही उगल दें।

(१६) जो अध्यक्ष राज्यधन का अपहरण नहीं करते, वरन्, न्यायपरायण होकर राजा की सम द्धि में यत्नशील रहते हैं और प्रिय समझकर राजा का हित करते रहते हैं, ऐसे सच्चरित्र अध्यक्षों को सदा सम्मानपूर्वक उच्चपद पर बनाये रखना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में उपयुक्तपरीक्षा नामक नौवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १०

शासनाधिकार:

(१) शासने शासनमित्याचक्षते। शासनाप्रधाना हि राजानः, तन्मूलत्वात्। सन्धिविग्रहयोः।

(२) तस्मादमात्यसम्पदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात्। सोऽव्यग्रमना राज्ञः सन्देशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्याद्, देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य, देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य।

(३) जातिं कुलं स्थानवयःश्रुतानि कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्ये लेखं विदध्यात् पुरुषानुरूपम्।।

(४) अर्थक्रमः, सम्बन्धः, परिपूर्णता, माधुर्यमौदार्यं, स्पष्टत्वम्, इति लेखसम्पत्।

(५) तत्र यथावदनुपूर्वक्रिया प्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः।

(६) प्रस्तुतस्यार्थस्यानुपरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति सम्बन्धः।

(७) अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणद ष्टान्तैरर्थोपवर्णनाश्रान्तपदतेति परिपूर्णता।

(८) सुखोपनीतचार्वर्थशब्दाभिधानं माधुर्यम्।

(६) अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम्।

(१०) प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति।

(११) अकारादयो वर्णास्त्रिषष्टिः।

(१२) वर्णसङ्घातः पदम्। तच्चतुर्विधं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति। सूत्र नाम सत्त्वाभिधायि। अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि। क्रियाविशेषकाः प्रादय उपसर्गाः। अव्ययाश्चादयो निपाताः।

(१३) पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ। एकपदावरस्त्रिपदपरः परपदार्थानुरोधेन वर्गः कार्यः। लेखपरिसंहरणार्थं इतिशब्दो वाचिकमस्येति च।

(१४) निन्दा प्रशंसा प च्छा च तथाख्यानमथार्थना।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधो थ चोदना।।
सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः।।

(१५) तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा। गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा। कथमेतदिति प च्छा। एवम् इत्याख्यानम्। देहीत्यर्थना। न प्रयच्छयामीति प्रत्याख्यानम्। अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः। मा कार्षीः इति प्रतिषेधः। इदं क्रियतामिति चोदना। यो हं स भवान्, मम यद् द्रव्यं तद्भवतः इत्युपग्रहः सान्त्वम्। व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः। सदोषमायति-प्रदर्शनमभिभर्त्सनम्।

(१६) अनुनयस्त्रिविधो र्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति।

(१७) प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखास्तथा परीहारनिस ष्टिलेखौ।
प्राव त्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि।।

(१८) अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यति तत्त्वमस्ति।

राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा।।

(१६) भर्त राज्ञा भवेद् यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति।
विशेषण तु भ त्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम्।।

(२०) यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ।।

(२१) जातेर्विशेषेषु पुरेषु चैव ग्राकेषु देशेषु च तेषु तेषु।
अनुग्रहो यो न पतेनिदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत्।।

(२२) निस ष्टिस्थापना कार्यकरणे वचने तथा।
एष वाचिकलेखः स्याद्भवेन्नैस ष्टिको पि वा।।

(२३) विविधां दैवसंयुक्तां तत्त्वजां चैव मानुषीम्।
द्विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रव तिं शासनं प्रति।।

(२४) द ष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च।
प्रतिलेखो भवेत् कार्यो यथा राजवचस्तथा।।

(२५) यथेश्वराश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारी पथिकार्थमाह।
सर्वत्रगो नाम भवेत् स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्यः।।

(२६) उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः।

(२७) तत्र साम प चविधं-गुणसंकीर्तनं, सम्बन्धापाख्यानं, परस्परोपकारसन्दर्शनं, आमायतिप्रदर्शनं, अमात्मोपनिधानमिति।

(२८) तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसा स्तुतिर्गुणसङ्कीर्तनम्।

(२६) ज्ञातियौवनमौखस्त्रौवकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानम्।

(३०) स्वपक्षपरपक्षयोरन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसन्दर्शनम्।

(३१) अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम्।

(३२) यो हं स भवान्, यन्मम द्रव्यं तदभवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यताम् इत्यात्मोपनिधानमिति।

(३३) उपप्रदानमर्थोपकारः।

(३४) शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः।

(३५) वधः परिक्लेशो र्थहरणं दण्ड इति।

(३६) अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः संप्लव इति लेखदोषाः।

(३७) तत्र कालपुत्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः।

(३८) पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः।

(३६) उक्तस्याविशेषण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम्।

(४०) लिङ्वचनकालकारंकाणामन्यथाप्रयोगो पशब्दः।

(४१) अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः संप्लव इति।

(४२) सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे शासनाधिकारं नाम दशमो ध्यायः, आदितः' त्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) राजा की ओर से पत्र आदि पर लिखित आज्ञा या प्रतिज्ञा का नाम 'शासन' है। राजा लोग शासन पर ही विश्वास करते हैं, मौखिक बात पर नहीं। संधि, विग्रह आदि षाड्गुण्य सम्बन्ध ी राजकीय कार्य शासनमूलक होने पर ही ठीक समझे जाते हैं।

(२) इसलिए राजकीय शासन को लिखने वाले लेखक को अमात्य की योग्यताओं वाला, आचार-विचार का ज्ञाता, शीघ्र ही सुदर वाक्य-योजना मे निपुण, सुलेखक और विभिन्न लिपियों को पढ़ने-लिखने वाला होना चाहिये। वह लेखक प्रकृतिस्थ होकर राजा के संदेश को सुने और पूर्वापर प्रसंगों को द ष्टि में रखकर स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करने वाले लेख को लिखे। लेख यदि किसी राजा से सम्बद्ध हो तो, उसमे ंदेश, ऐश्वर्य, वंश और नाम का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। यदि उसका सम्बन्ध अमात्य से हो तो उसमें केवल उसके देश और नाम का ही उल्लेख किया जाये।

(३) लेख यदि किसी राजकार्य-सम्बन्धी हो तो उसमें जाति, कुल, स्थान, आयु, योग्यता, कार्य, धन-सम्पत्ति, सदाचार, देश, काल, वैवाहिक सम्बन्ध आदि बातों का भली-भाँति विचार करके, प्राप्तकर्ता पुरुषों की श्रेष्ठता, निकृष्टता आदि का भी अवश्य उल्लेख करें।

(४) उस लेखक में १. अर्थक्रम, २. संबंध, ३. परिपूर्णता, ४. माधुर्य, ५. औदार्य और ६. स्पष्टता आदि छह प्रकार की योग्यतायें होनी चाहिये।

(५) प्रधान अर्थ और अप्रधान अर्थ पूर्वापर यथानुक्रम में रखना ही अर्थक्रम कहलाता है।

(६) लेख की समाप्ति पर्यन्त अगला अर्थ, प्रस्तुत अर्थ का बाधक न होने पर अर्थसम्बन्ध कहलाता है।

(७) अर्थपद तथा अक्षरों का न्यूनाधिक्य न होना, हेतु उदाहरण तथा द ष्टान्त सहित अर्थ का निरूपण करना और प्रभावहीन शब्दों का प्रयोग न करना परिपूर्णता कहलाता है।

(८) सरल सुबोध शब्द का प्रयोग करना माधुर्य है।

(६) शिष्ट शब्दों का प्रयोग करना औदार्य कहलाता है।

(१०) सुप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करना ही स्पष्टता है।

(११) अकार आदि त्रेसठ वर्ण होते हैं।

(१२) वर्णो के समूह को पद कहते हैं। पद चार प्रकार का होता है : १. नाम, २. आख्यात, ३. उपसर्ग और ४. निपात। जाति, गुण और द्रव्य को बताने वाला पद नाम कहलाता है। स्त्री-पुरुष आदि विशेष लिंगों से रहित क्रियावाचक पद को आख्यात कहते हैं। क्रियाओं के विशेष अर्थो का द्योतन करने वाले उनके आरंभ में लगे हुए प्र, परा, आदि पद उपसर्ग कहलाते हैं। च आदि अव्ययों को निपात कहते हैं।

(१३) सम्पूर्ण अर्थ को कहने वाले पदसमूह का नाम वाक्य है। कम-से-कम एक पद पर और अधिक-से-अधिक तीन पद पर मुख्य पद के अनुसार विराम करना चाहिये। लेख की समाप्ति को बताने के लिए अन्त में इति शब्द लिख देना चाहिये, यदि लेख में पूरी बातें न लिखी गई हों तो अन्त में वाचिकमस्य, इस प्रकार लिख देना चाहिये।

(१४) निन्दा, प्रशंसा, प च्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना, सान्त्वना, अभ्यवपत्ति, भर्त्सना और अनुनय इन्हीं तेरह बातों में से किसी बात को प्रकट किया जाता है।

(१५) किसी के वंश, शरीर और कार्य में दोषारोपण करना निन्दा है। उन्हीं बातों के सम्बन्ध में गुणगान करना प्रशंसा है। 'यह कैसा हुआ ?' इस प्रकार पूछना ही प च्छा है। 'इसको इस

प्रकार करना चाहिये' ऐसा कहना आख्यान है। 'दीजिए' इस प्रकार माँगना अर्थना है। 'नहीं देता हूँ' इस प्रकार निषेध करना ही प्रत्याख्यान है। 'यह कार्य आपने अपने अनुरूप नहीं किया' इस प्रकार का वचन उपालम्भ है। 'ऐसा मत करो' यह प्रतिषेध है। 'ऐसा करना चाहिये' इस प्रकार की प्रेरणा चोदना है। 'जो मैं हूँ वहीं आप हैं, जो मेरा धन है वही आपका भी है' इस प्रकार की तसल्ली देना सान्त्वना है। आपत्ति के समय सहायता करना अभ्यवपत्ति है। दोष देकर धमकी देना भर्त्सना हैं

(१६) अनुनय तीन प्रकार का होता है : १.. अर्थकरणनिमित्तक, २. अतिक्रमनिमित्तक ओर ३. पुरुषादिव्यसननिमित्तक। किसी आवश्यक कार्ये को करने के लिए अनुनय किया जाना ही अर्थकरणनिमित्तक है और किसी कुपित पुरुष को शान्त करने के लिए अनुनय करना अतिक्रमनिमित्तक है, और किसी आत्मीय की म त्यु के कारण आई हुई विपत्ति में अनुनय करना पुरुषाधिव्यसननिमित्तक है। अनुनय कहते हैं अनुग्रह को।

(१७) १. प्रज्ञापना, २. आज्ञा, ३. परिदान, ४. परीहार, ५. निस ष्टि ६. प्राव त्तिक, ७. प्रतिलेख और ८. सर्वत्रग, लेख के ये आठ भेद और हैं।

(१८) यदि कोई महामात्र राजकीय धन का संग्रह करके अपने पास रख लेता है और गुप्तचर से उसकी सूचना पाकर राजा जब उस महामात्र से राजकीय धन को राजकोष में जमा करने की आज्ञा देता है और जब महामात्र धन देना स्वीकार कर लेता है तब जो लिखा-पढ़ी होती है, उस लेख-पत्र का नाम ही प्रज्ञानता है।

(१६) जिस लेख-पत्र में राजा की ओर से निग्रह या अनुग्रह की आज्ञा हो और विशेषरूप से जो नौकरों के सम्बन्ध में लिखा जाये उसे आज्ञा कहते हैं।

(२०) जिस लेख-पत्र में समुचित गुणों से सत्कार का भाव प्रकट किया जाता है उसे परिदान कहते हैं। यह दो प्रकार से लिखा जाता है। १. जब नौकरों का कोई आत्मीय मर जाता है जिसके कारण वे व्यथित हैं; २. जब राजा उनकी रक्षा के लिए दयाभाव प्रकट करता है।

(२१) विशेष जातियों, नगरों, ग्रामों और देशों पर राजा की आज्ञा के अनुसार जो अुनग्रह किया जाता है, विशेषज्ञ लोक उसी को परीहार कहते हैं।

(२२) किसी कार्य के करने तथा कहने में किसी आत्मवचन का प्रमाण देना ही निस ष्टि है, उसके वाचिक और नैस ष्टिक दो भेद होते हैं।

(२३) अनेक प्रकार की दैवी, पारमार्थिक और मानुषी आपत्तियों की सूचना को प्राव त्तिक कहते हैं। वह शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है।

(२४) दूसरे के भेजे हुए लेख को भली-भाँति देखने और पढ़ने के अनन्तर, फिर राजा के सामने पढ़कर, राजा की आज्ञा के अनुसार उसका जो उत्तर लिखा जाये उसको प्रतिलेख कहते हैं।

(२५) जिस लेखपत्र में राजा राहगीरों की रक्षा ओर उनके उपकार के लिए अपने अधिकारियों को आदेश देता है वह सर्वत्रग है; क्योंकि वह मार्ग में, देश में तथा राष्ट्र में सब जगहों पर लिखा जाता है।

(२६) उपाय चार हैं : १. साम, २. दाम, ३. दण्ड और ४, भेद।

(२७) उनमें साम पाँच प्रकार का होता है : १. गुणसंकीर्तन, २. सम्बन्धोपाख्यान, ३. परस्परोपकारसंदर्शन, ४. आयतिप्रदर्शन और ५. आत्मोपनिधान।

(२८) वंश, शंरीर; कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता; हाथी-घोड़े-रथ आदि के गुणों और अवगुणों को जानकर उनकी प्रशंसा करना ही गुणसंकीर्तन कहलाता है।

(२६) समानकुल, विवाह, गुरु-शिष्य, पुरोहित-यजमान, वंशपरंपरागत, हार्दिक और मैत्रीभाव आदि

सात प्रकार के सम्बन्धों में से किसी एक का कथन करना सम्बन्धोपाख्यान है।

(३०) परस्पर एक दूसरे द्वारा किए गये उपकार का कथन करना परस्परोपकारसंदर्शन कहलाता है।

(३१) इस कार्य के करने में हम दोनों को ऐसा फल प्राप्त होगा, ऐसी आशा करना आयतिप्रदर्शन है।

(३२) 'जो मैं हूँ वही आप हैं तथा मेरा धन ही आपका धन है, उसे आप इच्छानुसार अपने कार्य में लगा सकते हैं।' इस आत्मसमर्पण की भावना को आत्मोपनिधान कहते हैं।

(३३) धन आदि के द्वारा उपकार करना दान या उपप्रदान है।

(३४) शत्रु के हृदय में शंका पैदा कर देना भेद है।

(३५) उसे मार देना, उसको पीड़ा पहुँचाना या उसके धन का अपहरण करना दण्ड कहलाता है।

(३६) पत्रलेख के पाँच दोष हैं-१. अकान्ति, २. व्याघात, ३. पुनरुक्त, ४. अपशब्द और ५. संप्लव।

(३७) स्याही पड़े कागज पर लिखना, मलिन कागज पर लिखना, भद्दे अक्षर लिखना, छोटे-बड़े अक्षर लिखना ओर फीकी स्याही से लिखना अकान्ति नामक दोष है।

(३८) पहले लेख से पिछले लेख का विरोध हो जाना अथवा पहले लेख से पिछले लेख की बाधा हो जाना व्याघात दोष है।

(३९) जो बात पहले कही गई हो उसे ही दुहरा देना पुनरुक्त दोष है।

(४०) लिंग, वचन, काल और कारक का विपरीत प्रयोग करना अपशब्द दोष है।

(४१) लेख में विराम आदि चिह्नों की, अर्थक्रम के अनुसार योजना न करना, संप्लव दोष है।

(४२) आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उनके प्रयोगों की अच्छी तरह परीक्षा करके ही राजा के लिए इस शासनविधि की रचना की है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में शासनाधिकार नामक दसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ११

कोषप्रवेश्यरत्नपरीक्षा

(१) कोषाध्यक्षः कोषप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जातकरणाधिष्ठितः प्रतिग ह्णीयात्।

(२) ताम्रपर्णिकं, पाण्ड्यकवाटकं, पाशिक्यं, कौलेयं, चौर्णेयं, माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं, ह्रादीयं, हैमवतं च मौक्तिकम्।

(३) शङ्ख शुक्तिः प्रकीर्णकं च योनयः।

(४) मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रं क चुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम्।

(५) स्थूलं व त्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम्।

(६) शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रभेदाः।

(७) यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः। ततो र्धं विजयच्छन्दः। शतं देवच्छन्दः। चतुष्षष्टिरर्धहारः। चतुष्प चाशद्रश्मिकलापः। द्वात्रिंशद्गुच्छः। सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला। चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः। विंशतिर्माणवकः। ततो र्धमर्धमाणवकः। एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति। एकशीर्षकः शुद्धो हारः। तद्वच्छेषाः। मणिमध्यो र्धमाणवकस्त्रिफलकः फलकहारः प चफलको वा। सूत्रमेकावली शुद्धा। सैव मणिमध्या यष्टिः। हेममणिचित्रा रत्नावली। हेममणिमुक्तान्तरो पर्वतकः। सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम्। मणिमध्यं वा मणिसोपानकम्।

(८) तेन शिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः।

(९) मणिः कोटौ मालेयकः पारसमुद्रकश्च।

(१०) सौगन्धिकः पद्मरागः अनुवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः।

(११) वैदूर्यः - उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः।

(१२) नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीभूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः।

(१३) शुद्धस्फटिकः मूलाटवर्णः शीतव ष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः।

(१४) षडश्रश्चतुरश्रो व त्तो वा, तीव्ररागः संस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुरचिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपी चेति मणिगुणाः।

(१५) मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः।

(१६) विमलकः सस्यको जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो म गाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्पः सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्रपुलक इत्यन्तरजातयः।

(१७) शेषाः काचमणयः।

(१८) सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं कास्तीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम्।

(१९) खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः।

(२०) मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गामेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्ण मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः।

(२१) स्थूलं स्निग्धं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखितं कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम्।

(२२) नष्टकोणं निरश्रिपार्श्वापव त्तं च अप्रशस्तम्।

(२३) प्रबालकं आलकन्दकं वैवर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटगर्भिणिकावर्जमिति।

(२४) चन्दनम्-सातनं रक्तं भूमिगन्धि। गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्यगन्धि। हरिचन्दनं शुकपत्रवर्णमाम्रगन्धिं तार्णसं च। ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा वस्तमूत्रगन्धि। दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि। जावकं च। जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम् तौरूपं च। मालेयकं पाण्डुरक्तम्। कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि। कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा। कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा। शीतोदकीयं पदमाभं कालस्निग्धं वा नागपर्वतक रूक्षं शैलवर्ण वा। शाकलं कपिलमिति।

(२५) लघु स्निग्धमश्यानं सर्पिः स्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बणमविराग्युष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः।

(२६) अगुरु-जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलचित्रं वा। श्यामं दोङ्गकम्। पारसमुद्रकं चित्ररूपम्। उशीरगन्धि नवमालिकागन्धि वेति।

(२७) गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हारि अग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहम् इत्यगुरुगुणाः।

(२८) तैलपर्णिकम्-अशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि। जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि। सौवर्णकुड्यकं रक्तपीतं मातुलुङ्गन्धि। पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि वेति।

(२९) भद्रश्रीयम्-पारलौहित्यकं जातीवर्णम्। आन्तरवत्यमुशीरवर्णम्। उभयं कुष्ठगन्धि चेति।

(३०) कालेयकः - स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः। औत्तरपर्वतको रक्तपीतकः इति साराः।

(३१) पिण्डक्वाथधूमसहमविरागि योगानुविधायि च। चन्दनागरुवच्च तेषां गुणाः।

(३२) कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म। कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम्। प्रैयकं नीलं पीतं श्वेतं लेखाविन्दुचित्रम्। तदुभयमष्टाङ्गुलायामम्।

(३३) बिसी महाबिसी च द्वादशाग्राकीये। अव्यक्तरूपा दुहिलिका चित्र वा बिसी। परुषा श्वेतप्राया महाबिसी। द्वादशाङ्गुलायाममुभयम्।

(३४) श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा शाकुला चारोहजाः। कपिला बिन्दुचित्रा वार श्यामिका। कालिका कपिला कपोतवर्णा वा तदुभयमष्टाङ्गुलायाम। परुषा कदली हस्तायता। सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा। कदलीत्रिभागा शाकुला कोठमण्डलचित्रा कृतकर्णिकाजिनचित्रा चेति।

(३५) सामूरं चीनसी सामूल च बाह्लवेयाः। षड्त्रिंशदङ्गुलम जनवर्णं सामूरम्। चीनसी रक्तकालौ पाण्डुकाली वा। सामूली गोधूमवर्णेति।

(३६) सातिना नलतूला व त्तपुच्छा औद्राः। सातिना कृष्णा। नलतूमला नलतूलवर्णा। कपिला व त्तपुच्छा च। इति चर्मजातयः।

(३७) चर्मणां म दु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम्।

(३८) शुद्धं शुद्धरक्तं पक्षरक्तं च आविकम्। खचितं वानचित्रं खण्डसङ्घात्यं तनतुविँच्छिन्नं च।

(३९) कम्बलः केचलकः कलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणं वर्णकं तच्छिलकं वारवाणः। परिस्तोमः समन्तभद्रकं च आविकम्।

(४०) पिच्छलमार्द्रमिव च सूक्ष्म म दु च श्रेष्ठम्।

(४१) अष्टप्लोतिसङ्घात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणम्, अपसारक इति नैपालकम्।

(४२) संपुटिका चतुरश्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति म गरोम।

(४३) वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं, पौण्ड्रकं श्मामं मणिस्निग्धं, सौवर्णकुड्यकं सूर्यवर्णम्। मणिस्निग्धोदकवानं चतुरश्रवानं व्यामिश्रवानं च।

(४४) एतेषामेकांशुकमध्यर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति।

(४५) तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम्।

(४६) मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्रोर्णाः नागव क्षो लिकुचो वकुलो वटश्च योनयः। पीतिका नागव क्षिका, गोधूमवर्णा लैकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा।

(४७) तासां सौवर्णकुड्यका श्रेष्ठा। तया कौशेयं चीनपट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः।

(४८) माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति।

(४९) अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम।
जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च।।

(५०) पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान्।
देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे कोशप्रेवश्यरत्नपरीक्षा नाम एकादशो ध्यायः, आदितः एकत्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह विशेषज्ञों की सहमति से ही रत्न, सार, फल्गु और कुप्य आदि मूल्यवान् द्रव्यों को राजकोष के लिए लेना स्वीकार करे।

(२) मोतियों के दस उत्पत्ति स्थान हैं : १. ताम्रपर्णिक, २. पाण्ड्यकवाटक, ३. पाशिक्य, ४. कौलेय, ५. चौर्णेय, ६. माहेन्द्र, ७. कार्दमिक, ८. स्रौतसीय, ९. हादीय और १०. हैमवत।

(३) मोतियों की उत्पत्ति के तीन कारण हैं : शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक।

(४) दूषित मोतियों के तेरह प्रकार होते हैं। १. मसूरक, २. त्रिपुटक, ३. कूर्मक, ४. अर्धचन्द्रक, ५. कंचुकित, ६. यमक, ७. कर्तक, ८. खरक, ९. सिक्थक, १०. कामण्डलुक, ११. श्याव, १२. नील और १३. दुर्विद्ध।

(५) मोटा, गोल, तलरहित, दीप्तिमान, श्वेत, वजनी, चिकना और उचित स्थान पर बिंधा मोती उत्तम कोटि का है।

(६) यष्टि अर्थात् मोतियों की माला के कई नाम हैं, शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकाण्डक, अवघाटक और तरलप्रतिबन्ध।

(७) एक हजार आठ लड़ों की माला को इन्द्रच्छन्द, उससे आधी पाँच सौ चार लड़ों की माला को विजयच्छन्द, सौ लड़ों की माला को देवच्छन्द, चौसठ लड़ों की माला को अर्धहार, चौवन लड़ों की माला को रश्मिकलाप, बत्तीस लड़ों की माला को गुच्छ, सत्ताईस लड़ों की माला को नक्षत्रमाला, चौबीस लड़ों की माला को अर्धगुच्छ, बीस लड़ों की माला को माणवक और उससे आधी दस लड़ों की माला को अर्धमाणवक कहा जाता है। इन्हीं मालाओं के बीच में यदि मणि पिरो दी जाये तो उनके नाम के आग्र माणवक शब्द जुड़ जाता है। यदि इन्द्रच्छन्द आदि मालाओं में सभी मोती शीर्षक के समान पिरोये जाते हैं तो उनका नाम इन्द्रच्छन्दशीर्षक शुद्धहार, विजयच्छन्दशीर्षक शुद्धहार कहा जाता है। इसी प्रकार यदि इन्द्रछन्द आदि में सभी मोती उपशीर्षक के समान पिरोये गए हों तो उसे इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकशुद्धहार कहा जाता है।

यदि इन शुद्धहारों के बीच में मणि पिरो दी जाये तो, बजाय शुद्धहार के ये अर्धमाणवक कहलाते हैं और तब उनका पूरा नामकरण होता है इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक। इसी प्रकार उपशीर्षक आदि के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। दस लड़ियों की माला में यदि सोने के तीन या पाँच दाने पिरो दिये गए हों तो उसे फलकहार कहा जाता है। एक ही लड़ी की मोती की माला का नाम सूत्र है। यदि उसके बीच में मणि पिरो दी जाये तो उसे ही यष्टि कहा जाता है। सोने के दाने और मणियों से पिरोई गई मोती की माला रत्नावली कहलाती है। यदि किसी माला में सोने के दाने, मणि ओर मोती क्रमशः पिरो दिये गये है तो उस माला को अपवर्तक कहते हैं। यदि अपवर्तक माला में मणि न लगी हो तो उसका नाम सोपानक है। यदि बीच में मणि लगा दी जाये तो उसे मणिसोपानक कहते हैं।

(८) इसी प्रकार शिर, हाथ, पैर और कमर की भिन्न-भिन्न मालाओं के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये।

(६) मणियों के तीन उत्पत्ति-स्थान हैं : १. कोट, २. मालेयक और ३. पारसमुद्रक।

(१०) मणियों में पाँच प्रकार के मणिक्य होते हैं: १. सौगन्धिक, २. पद्मराग, ३. अनवद्यराग, ४. पारिजात पुष्पक और ५. बालसूर्यक।

(११) वैदूर्य मणि आठ प्रकार की होती है : १. उत्पलवर्ण, २. शिरीषपुष्पक, ३. उदकवर्ण, ४. वंशराग, ५. शुकपत्रवर्ण, ६. पुष्यराग, ७. गोमूत्रक और ८. गोमेदक।

(१२) इन्द्रनीलमणि भी आठ प्रकार की होती है : १. नीलाबलीय, २. इन्द्रनील, ३. कलायपुष्पक, ४. महानील, ५. जाम्बवाभ, ६. जीमूतप्रभ, ७. नन्दक और ८. स्त्रवन्मध्य।

(१३) स्फटिक मणि चार प्रकार की होती है : १. शुद्धस्फटिक, २. मूलाटवर्ण, ३. शीतव ष्टि और ४. सूर्यकान्त।

(१४) मणियों में ग्यारह प्रकार के गुण होते हैं : १. षड्ज, २. चतुरस्त्र, ३.व ृत्त, ४. गहरे रंगवाली चमकदार, ५, आभूषण में लगाने योग्य, ६. निर्मल, ७. चिकनी, ८. भारी, ६. दीप्तियुक्त, १०. च चलकान्तियुक्त और ११. अपनी कांति से पास की वस्तु को प्रकाशित कर देने वाली।

(१५) मणियों में सात प्रकार के दोष पाये जाते हैं : १. हलके रंग वाली, २. हलकी प्रभावाली, ३. खुरदरी, ४. छोटे छिद्र वाली, ५. कटी हुई, ६. उपयुक्त स्थान पर न बेधी हुई और ७. विभिन्न रेखाओं वाली।

(१६) मणियों की अठारह प्रकार की उपजातियाँ हैं - १. विमलक, २. सस्यक, ३. अंजनमूलक, ४. पित्तक, ५. सुलभक, ६. लोहिताक्ष, ७. म गाश्मक, ८. ज्योतीरसक, ६. मैलेयक, १०. आहिच्छित्रक, ११. कूर्प, १२. प्रतिकूर्प, १३. सुगन्धिकूर्प, १४. क्षीरपक, १५.सुगन्धिकूर्प, १६. शिलाप्रवालक, १७. पुलक और १८. शुक्रपुलक।

(१७) इनके अतिरिक्त जो मणियाँ हों वे काँच के समान निम्न कोटि की होती हैं।

(१८) हीरे के छह उत्पत्ति स्थान हैं : १. सभाराष्ट्रक, २. मध्यमराष्ट्रक, ३. कास्तीरराष्ट्रक, ४. श्रीकटनक, ५. मणिमंतक और ६. इन्द्रवानक।

(१६) इनके अतिरिक्त खदान, विशेष जलप्रवाह और हाथी दाँत की जड़ आदि भी हीरे के उत्पत्तिस्थान हैं। खान और जलप्रवाह आदि के अन्य स्थानों में उत्पन्न हीरा को प्रकीर्णक कहते हैं।

(२०) हीरे के अनेक आकार-प्रकार हैं : बिलाव की आँख के समान, शिरीष पुष्प की आकृति का, गोमूत्र के समान, गोरोचन की भाँति, सर्वथा स्वच्छ, श्वेत, मुलहटी के फूल जैसा, और मणियों की आकृति का।

(२१) मोटा, वजनी, घन की चोट सहने वाला, समकोण पानी से भरे पीतल के बर्तन में उसको हिलाने से लकीरें डाल देने वाला, चर्खे में लगे तकुवे के तरह घूमने वाला और चमकदार हीरा उत्तम कोटि का है।

(२२) नष्टकोण, नुकीले कोनों से रहित और छोटे-बड़े कोनों वाला हीरा दूषित समझा जाता है।

(२३) प्रवाल (मूँगा) के दो उत्पत्ति स्थान हैं - १. आलकन्दक और २. वैवर्णिक। प्रवाल के दो रेग होते हैं : १. रक्त और २. कमल। वह कीड़े का खाया हुआ तथा बीच में मोटा या उठा हुआ नहीं होना चाहिये।

(२४) चन्दन के सोलह उत्पत्ति स्थान, नौ रंग, छह गन्ध और ग्यारह गुण होते हैं। उत्पत्तिस्थान- १. सातन देश में उत्पन्न चन्दन लाल रंग का होता है और उसमें धरती की सोंध होती है, २. गोशीर्ष देश में उत्पन्न चन्दन कालिमा एवं लाली लिए होता है और उसमें मछली की जैसी गन्ध होती है, ३. हरि नामक देश में उत्पन्न चन्दन तोते के पंख के समान हरे रंग का और उसमें आम की जैसी महक होती है, ४. त णसा नामक दनी के किनारे उत्पन्न होने वाला चन्दन भी हरिचन्दन के ही समान होता है, ५. ग्रामेरु प्रदेश में उत्पन्न चन्दन या तो लाल रंग का अथवा लाल-काले मिले हुए रंग का होता है और उसमें बकरे की पेशाब जैसी गन्ध होती है, ६. देवसभा नामक स्थान में उत्पन्न चन्दन लाल रंग का और पद्म के समान सुगन्धि वाला होता है, ७. जाबक देश का चन्दन या तो लाल रंग का अथवा लाल-काला रंग का चिकना होता है और वह भी पद्म के समान सुगन्धित होता है, ६. तुरूप देश का चन्दन भी जोंगरु की भांति होता है, १०. माल देश में उत्पन्न चन्दन का रंग लाल-पीला होता है, उसमें पद्म के समान सुगन्ध होती है, ११. कुचन्दन काले रंग का तथा गोमूत्र के समान गन्ध वाला होता है, १२. काल पर्वत पर उत्पन्न चन्दन खुरदुरा, अगर के समान काला या लाल या लाल-काला होता है और उसमें भी गोमूत्र जैसी गन्ध होती है, १३. कोशकार पर्वत पर उत्पन्न चन्दन काला अथवा चितकबरा होता है, १४. शीतोदक देश में उत्पन्न चन्दन पत्र के रंग का या काला अथवा स्निग्ध होता है, १५. नाग पर्वत पर उत्पन्न चन्दन रूखा और सेवार के रंग जैसा होता है, १६. शाकल देश में उत्पन्न पीला-लाल (कपिल) वर्ण का होता है।

(२५) चन्दन में ग्यारह गुण होते हैं : १. लघु, स्निग्ध, ३. बहुत दिनों में सूखने वाला, ४. शरीर में घी के समान लगने वाला, ५. सुगन्धित, ६. त्वचा के भीतर ठंडक पहुँचाने वाला, ७. बिना फटा, ८. स्थायी वर्ण एवं गन्ध वाला, ६. गर्मी शान्त करने वाला, १०. सन्ताप को दूर करने वाला ओर ११. सुखकर स्पर्श वाला।

(२६) अगर का निरूपण इस प्रकार है-जोंगक नामक अगर तीन तरह का होता है : काला, चितकबरा और काले-सफेद दागों वाला। दोंगक नामक अगर काला होता है, जोंगक और दोंगक दोनों आसाम में पैदा होते हैं। समुद्र पार पैदा होने वाला अगर, चित्र रूप का होता है, जिसकी गन्ध खश और चमेली जैसी होती है।

(२७) भारी, स्निग्ध, सुगन्धित, दूर तक सुगन्ध फेंकने वाला, अग्नि को सहन करने वाला, जिसका धुआँ व्याकुल न कर दे, जलते समय एक जैसी गन्ध देने वाला और वस्त्र आदि पर पोंछ देने से गन्ध बनी रहना; ये अगर के गुण हैं।

(२८) असम में पैदा होने वाला तैलपणिक चन्दन मांस के रंग का और पद्म के समान गन्ध वाला होता है। असम में ही पैदा होने वाला दूसरा तैलपर्णिक चन्दन लाल-पीले रंग का और कमल अथवा गोमूत्र की गन्ध का होता है। ग्रामेरू प्रदेश में पैदा होने वाला चन्दन चिकना और गोमूत्र की गन्ध का होता है। असम के सुवर्णकुड्य नामक स्थान में पैदा होने वाला चन्दन लाल-पीला और नींबू की गन्ध का होता है। पूर्णक द्वीप में उत्पन्न चन्दन पद्म अथवा मक्खन की गन्ध का होता है।

(२६) भद्रश्रीय नामक चन्दन दो प्रकार का होता है : १. पारलौहित्य ओर २. आन्तरवत्य। पारलौहित्य असम में पैदा होता है और उसका रंग चमेलीपुष्प जैसा होता है, आन्तरवत्य चन्दन भी असम में ही पैदा होता है, उसका रंग खस की भाँति होताहै। इन दोनों को गन्ध कूट औषधि की तरह होती है।

(३०) कालेयक नामक चन्दन स्वर्णभूमि में पैदा होता है और वह स्निग्ध एवं पीले रंग का होता है। हिमालय पर पैदा होने वाला कालेयक लाल-पीले रंग का होता है। यहां तक सार वस्तुओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(३१) तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक, इन तीनों में पीसने पर, पकाने पर, आग में जलाने पर किसी प्रकार का विकार पैदा न होना, दूसरी वस्तु के साथ मिलाने पर तथा देर तक रखे रहने पर उनकी गन्ध में किसी प्रकार का फर्क न आना, ये गुण पाये जाते हैं। पूर्वोक्त चन्दनों में जो गुण बताये गये हैं, वे भी इन तीनों में पाये जाते हैं।

(३२) फल्गु पदार्थों में पहिला स्थान चमड़े का है, जिसकी लगभग पन्द्रह जातियाँ होती हैं, १. कान्तनावक और २. प्रेयक दोनो का चमड़ा हिमालय में पैदा होता है। उनमें कान्तनावक मयूरग्रीवा का कान्ति वाला और प्रेयक नीले-पीले तथा सफेद रेखाओं अथवा दागों से युक्त होता है। इन दोनों का विस्तार आठ अंगुल होता है।

(३३) हिमालय में स्थित म्लेच्छों के बारह गांवों में ३. बिसी और ४. महाबिसी नामक चमड़ा पैदा होता है। बिसी बहुरंग, वालों वाला एवं चितकबरा, और महाबिसी कठोर तथा श्वेत होता है। इन दोनों का विस्तार बारह-बारह अंगुल होता है।

(३४) हिमालय के आरोह नामक स्थान में पैदा होने वाला चमड़ा पाँच प्रकार का होता है : ५. श्यामिका,, ६. कालिका, ७. कदली, ८. चन्दोत्तरा और ६. शाकुला। कपिल और चितकबरे रंग का चमड़ा श्यामिका है। कपिल अथवा कबूतरी रंग का चमड़ा कालिका कहलाता है। इन दोनों का विस्तार आठ-आठ अंगुल होता है। कदली नामक चमड़ा कठोर तथा खुरदरा होता है, जिसकी लम्बाई एक हाथ मानी गई है। कदली नामक चमड़े पर यदि चन्द्रबिन्दु अंकित हो तो वह चन्द्रोत्तरा कहलाता है। रंग में ये दोनों कालिका के समान होते हैं। कदली से तीन गुणा बड़ा या कदली का तीसरा हिस्सा शाकुला नामक चमड़ा होता है, जिसमें लाल धब्बे और कुछ गांठें पड़ी होती हैं।

(३५) हिमालय के बाह्लव नामक प्रदेश में तीन प्रकार का चमड़ा होता है : १०. सामूर, ११. चीनसी और १२. सामूली। सामूर चमड़ा अ जन के समान काले रंग का होता है। चीनसी चमड़ा लाल-काला अथवा पीला-काला रंग का होता है। सामूली गेहुएं रंग का होता है। ये दोनों छबीस-छबीस अंगुल के होते हैं।

(३६) उद्र नामक जलचर प्राणी की खाल तीन प्रकार की होती है : १३. सातिना, १४. नलतूला और १५. व त्तपुच्छा। सातिना काले रंग की होती है। चमड़े की ये चन्द्रह प्रकार की भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं।

(३७) मुलायक, चिकना और अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम समझा जाता है।

(३८) भेड़ की ऊन के चमड़े प्रायः सफेद और सफेद-लाल अथवा दूसरे रंग के भी होते हैं। इनके चार भेद हैं : १. खचित, २. वानचित्र, ३. खण्डसंघात्य और ४. तन्तु-विच्छिन्न।

(३६) इनके अतिरिक्त १. कम्बल, २. केचलक, ३. कलमितिका, ४. सौमितिका, ५. तुरगास्तरण, ६. वर्णक, ७. तच्छिलक, ८. वारवाण, ६. परिस्तोम और १०. समन्तभद्रक, ये दस भेद बने हुए ऊनी वस्त्रों के और होते हैं।

(४०) चिकना, चमकदार, बारीक डोरे का और मुलायम कम्बल उत्तम समझा जाता है।

(४१) काले रंग के आठ टुकड़ों को जोड़कर भिंगिसी बनाई जाती है, जो कि वर्षा में भीगने से बचाती है। इसी तरह एक ही साबूत कपड़े का बना अपसारक कहलाता है। ये कपड़े नेपाल देश में बनते हैं।

(४२) म ग के बालों से छह प्रकार का कपड़ा बनाया जाता है : १. संपुटिका, २. चतुरश्रिका, ३. लम्बरा, ४. कटवानक, ५. प्रावरक और ६. सत्तलिका।

(४३) दुशाला देश भेद से तीन प्रकार का होता है : १. बांगक, २. पौण्ड्रक ३. सौवर्णकुड्यक। वांगक अर्थात् बंगाल में बना हुआ दुशाला सफेद एवं चिकना होता है, पौंड्रक अर्थात् पुंड्र देश में बना हुआ दुशाला काला एवं मणि के समान स्निग्ध होता है, और असम के सुवर्णकुड्य नामक स्थान में बना हुआ दुशाला सूर्य के समान चमकदार होता है। इन दुशालों की बुनावट तीन प्रकार की होती है : १. दुशाले बनाने के साधनभूत वस्तु तन्तु पहिले पानी में भिगो दिए जायें, फिर मणिबन्ध में रगड़कर उन्हें मजबूत बना दिया जाये, २. ताना और बाना दोनों का धागा एक-सा बारीक हो, इस प्रकार की बनावट, ३. कपास, रेशम, ऊन आदि मिले हुए तन्तुओं से रंगीन बुनावट करना।,

(४४) जिसके ताने और बाने में एक जैसे बारीक तन्तु हों, वह उत्तम दुशाला है, इनसे ड्योढे, दुगने, तिबुने आदि मोटे तन्तुओं के होने पर उत्तरोत्तर वह दुशाला कम कीमत का समझा जाता है।

(४५) इसी प्रकार काशी तथा पुंड्र आदि में बनने वाले रेशमी वस्त्रों की उत्कृष्टता-निकृष्टता के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए अर्थात् रेशम के तन्तु जितने बारीक और एक सूत के होंगे, रेशम उतना ही उत्तम होगा और तन्तुओं के मोटे होने पर उत्तरोत्तर वह निकृष्ट समझा जायेगा।

(४६) मगध, पुंड्रक और सुवर्णकुड्यक, इन तीन देशों में पत्रोर्णा नाम की ऊन होती है। वह नागकेसर, बड़हर, मौलसरी और बरगद, इन चार पेड़ों से पैदा होती है। नागकेसर के पेड़ से निकाली जाने वाली पत्रोर्णा पीली होती है। बड़हर पर गेहुँए रंग की होती है। मौलसरी की सफेद होती है। बरगद तथा अन्य व क्षों की पत्रोर्णा मक्खन के रंग की होती हैं।

(४७) उनमें सुवर्णकुड्यक की पत्रोर्णा उत्तम समझी जाती हैं। इसी प्रकार दूसरे रेशम और चीन में उत्पन्न होने वाले चीनपट्ट में सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

(४८) मधुरा (मदुरा), अपरांतक (कोंकण), कलिंग, काशी, वंग, वत्स और महिषक (मैसूर) इन देशों में पैदा होने वाली कपास के कपड़े सर्वोत्तम समझे जाते हैं।

(४९) कोषाध्यक्ष को चाहिये कि वह, मोती से लेकर कपास तक जिन रत्न, सार और फल्गु आदि पदार्थों का निरूपण किया गया है तथा जिनका निरूपण आगे किया जायेगा, इसके अतिरिक्त रत्नों के प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति, रूप, निधान और संस्कार-शुद्धि आदि विषयों के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी प्राप्त करे।

(५०) पुराने रत्नों का पुनः संस्कार, उनको छीलना, उनका रंग बदलना, उनको साफ करना, देश-काल के अनुसार उनका उपयोग करना, कृमि-कीटों से उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना आदि कार्य भी कोषाध्यक्ष की जानकारी से सम्बद्ध है।

अध्यक्षप्रचार नामक दूसरे अधिकरण में कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १२

आकरकर्मान्तप्रवर्तनम्

(१) आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसखो वा तज्जातकर्मकरोपकरणसम्पन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मलिङ्गं वाकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत।

(२) पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनगूढखातेष्वन्तःप्रस्यन्दिनो जम्बूचूतताल-फलपक्वहरिद्राभेदहरितालमनःशिला क्षौद्रहिङ्गुलुकपुण्डरीकशुकमयूरपत्रवर्णाः सवर्णोद-कौषधिपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः का चनिकाः।

(३) अप्सु निष्ठ्यूतास्तैलवद्विसर्पिणः पङ्कमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरि वेद्धारः।

(४) तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात्।

(५) पीतकास्ताम्रकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवो भिन्ना नीलराजीमन्तो मुद्गमाषकृसवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्राहरीतकीपदम्पचाशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चु चुबालुका-लेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न भिद्यन्ते बहुफेनधूमाश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधना।

(६) शङ्खकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीवावर्णाः सस्यकगोमेदक-गुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीकलायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः सा जनाः विस्रा भिन्ना श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखबिन्दुचित्रा म दवो ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः।

(७) सर्वधातूनां गौरवव द्धौ सत्त्वव द्धिः। तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजव क्षवटपीलुगोपित्तरोचनामहिषखर- करभमूत्रलण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति।

(८) यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीराजक्षीरैर्वा कदलीवज्रकन्दप्रतीवापो मार्दवकरः।

(९) मधुमधुकमजापयः सतैलं ध तगुडकिण्वयुतं सकन्दलीकम्।
यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं भवति म दु त्रिभिरेव तन्निषेकैः।।

(१०) गोदन्तश ङ्गप्रतीवापो म दुस्तम्भनः।

(११) भारिकः स्निग्धो म दुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिङ्गलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः।

(१२) काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः।

(१३) ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः।

(१४) कुरुम्बः पाण्डुरोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो वा तीक्ष्णधातुः।

(१५) काकाण्डभुजपत्रवर्णो वा वैकृन्तकधातुः।

(१६) अच्छः स्निग्धः सप्रभो घोषवान् शीततीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः।

(१७) धातुसमुत्थं तज्जातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत्।

(१८) कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखम्, अत्ययं चान्यत्रकर्त क्रेत विक्रेत णां स्थापयेत्।

(१६) आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः।

(२०) स्तेनमनिस ष्टोपजीविनं च बद्ध्वा कर्म कारयेद्, दण्डोपकारिणं च।

(२१) व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात्, लाघविकमात्मना कारयेद्।

(२२) लोहाध्यक्षः ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटव त्तकंसताललोहकर्मान्तान् कारयेत्, लोहभाण्डव्यवहारं च।

(२३) लक्षणाध्यक्षः चतुर्भागताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसा जनानामन्यतमाषबीजयुक्तं कारयेत् पणम्, अर्धपणं पादमष्टभागमिति। पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति।

(२४) रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत्। रूपिकमष्टकं शतं, प चकं व्याजीं, पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम्। प चविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्त क्रेत विक्रेत परीक्षित भ्यः।

(२५) खन्यध्यक्षः शङ्खवज्रमणिमुक्ताप्रबालक्षारकर्मान्तान् कारयेत्, पणनव्यवहारं च।

(२६) लवण्याध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संग हणीयाद्, विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीं च।

(२७) आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात्। दत्तभागविभागस्य विक्रयः। प चकं शतं व्याजीं, रूपं, रूपिकं च। क्रेता शुल्कं, राजपण्यच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात्। अन्यत्रक्रेता षट्छतमत्ययं च।

(२८) विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्, अनिस ष्टोपजीवी च। अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः। श्रोत्रियास्तपस्विनी विष्टय च भक्तलवणं हरेयुः।

(२६) अतो न्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात्।

(३०) एवं मूल्यं विभागं च व्याजी परिघमत्ययम्।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च।।
खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत्।
एवं सर्वेषु एण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम्।।

(३१) आकरप्रभवः कोषः कोषाद्दण्डः प्रजायते।
प थिवी कोषदण्डाभ्यां प्राप्यते कोषभूषणा।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे आकरकर्मान्तप्रवर्तनं नाम द्वादशो ध्यायः, आदितः द्वात्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) आकर (खान) के अध्यक्ष को चाहिये कि वह शुल्बशास्त्र, धातुशास्त्र, रसायन, पाकविधि और मणिराग आदि के विषयों में निपुणता प्राप्त करे अथवा उन विषयों के विशेषज्ञ पुरुषों तथा उन वस्तुओं के व्यापारियों के साथ रहकर, कुल्हाड़े, धौंकनी, सन्सी आदि आवश्यक सामग्री को साथ लेकर, कीटी, मूषा, राख आदि लक्षणों को देखकर पुरानी खान की परीक्षा करे, यदि मिट्टी, पत्थर, पानी आदि में धातु मिली हुई जान पड़े या उनका रंग चमकदार मालूम हो या वे वजनदार लगें अथवा उनमें तेज गन्ध आती हो तो इन लक्षणों से समझ लेना चाहिये कि उस स्थान पर खान है।

(२) परिचित पहाड़ों के गड्ढ़ों, गुफाओं, तराइयों, पथरीले स्थानों एवं शिलाओं से ढके हुए छेदों द्वारा बहने वाले जल से, जिसका रंग जामुन, आम, ताड़ का फल, पक्की हल्दी, हरताल, मैनिसिल, शहद, शिगरफ, कमल, तोता, मोर-पंख आदि के रंग का हो और अपने समान रंग

के पानी तथा औषधि तक बहने वाले चिकने भारी जल को देखकर सोने की खान का अनुमान करना चाहिये।

(३) इस प्रकार के जल को यदि दूसरे जल में मिलाया जाये और वह तेल की तरह फैलने लगे, या निरबिसी फल के समान पानी को साफ करता हुआ नीचे बैठ जाये अथवा सौ पल ताँबा या चाँदी उसके ऊपर डालकर यदि वह उसको एक पल जल सुनहरा बना दे तो समझना चाहिये कि इस जल-स्रोत के नीचे अवश्य ही सोने की खान है।

(४) यदि किसी स्थान पर उसी के समान केवल तेज गन्ध या उग्र रस की संभावना हो तो समझना चाहिये कि वहाँ पर शिलाजीत का उत्पत्ति स्थान है।

(५) पीले या ताँबे अथवा दोनों रंगों की मिट्टी और पत्थर जिनके तोड़ने पर बीच में नीली रेखायें या मूंग, उड़द, तिल आदि के समान या दही के छोटे-छोटे कणों के समान छोटी-छोठी बूंदों वाला, हल्दी, हरीतकी, कमलपत्र, सेवार, यकृत, प्लीहा तथा केसर के समान या तोड़ने पर बारीक रेत की रेखाओं, बूँदों, स्वस्तिक-चिह्नों, मोटे रेत के कणों के समान, कान्ति युक्त और तपाये जाने पर न फटने वाली तथा बहुत झाग एवं धुआँ देने वाली सुवर्ण धातु होती है। इस प्रकार की मिट्टी और पत्थर से ताँबा तथा चाँदी को सोना बनाया जा सकता है।

(६) शंख, कपूर, स्फटिक मणि, मक्खन, जंगली कबूतर, पालतू कबूतर, सफेद तथा लाल रंग की मणि, मयूर ग्रीवा, नील मणि, गोरीचन, गुड़, शक्कर, कचनार, कमल, पाटली, मटर, अलसी आदि के समान रंग वाले, सीसा, अंजन, दुर्गन्‍ध से युक्त, तोड़ने पर बाहर से सफेद प्रतीत होंने वाले अथवा हर प्रकार की रेखाओं तथा बूँदों से युक्त, म दु, तपाये जाने पर जो फटे नहीं किन्तु बहुत झाग और धुआँ उगले, इस प्रकार की धातु रूप्यधातु कही जाती है।

(७) इन सभी धातुओं के सम्बन्ध में यह समझना चाहिये कि उनमें जितना भारीपन होगा वे उतनी ही उत्तम कोटि की सिद्ध होगी। इनमें जो धातु अशुद्ध हो अथवा मैल जम जाने के कारण जिसके गुण-दोषों का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पा रहा हो उसका शोधन कर लिया जाये। शोधन के प्रकार ये हैं : तीक्ष्णमूत्र, तीक्ष्णक्षार, अमलतास, बरगद, पीलु, गोरोचन, भैंसे का मूत्र, बालक का मूत्र तथा उनके पुरीष (मल) आदि वस्तुओं में कई बार धातुओं की भावनाएं देने से वे विशुद्ध हो जाती हैं, अमलतास आदि के चूर्ण से अथवा उनके लेप से भी धातु का मल नष्ट होकर वे अपने असली रूप में आ जाती हैं।

(८) जो, उड़द, तिल, ढाक, पीलु, व क्ष का क्षार और गाय तथा बकरी के दूध में केला एवं सूरण को एक साथ मिलाकर यदि उनमें सोने-चाँदी की भावना दी जाये तो वे नर्म हो जाते हैं।

(६) शहद, मुलहटी, बकरी का दूध, तेल, घी, गुड़ की शराब और खादर में पैदा होने वाले झाड़ आदि सब को मिलाकर, उनमें तीन बार सोने-चांदी की भावना दी जाये तो वे चाहे जितने भी कटे-फटे खुरदरे क्यों न हों, मुलायम हो जाते हैं।

(१०) यदि पिंघले हुए सोने-चाँदी के ऊपर गाय के दाँत तथा सींग का चूर्ण बुरक दिया जाये तो सोना-चाँदी ठोस हो जाते हैं।

(११) जहाँ पाषाणधतु, भूमिधातु और ताम्रधातु, इन तीन प्रकार के पत्थर तथा मिट्टी के चिकने एवं म दु भू-भाग हों, वहाँ ताँबे की खान होती है। ताँबा चार प्रकार का होता है १. पिंगल, २. हरित, ३. पाटल और ४. लोहित।

(१२) जो भूमि-भाग कौए के समान काला, कबूतर तथा गोरोचन की आकृति वाला, सफेद रेखाओं से युक्त और दुगन्धपूर्ण हो, वहाँ शीशे की खान समझनी चाहिये।

(१३) जो भूमि-भाग ऊसर जमीन की भाँति कुछ सफेदी लिये हो, अथवा पके हुए ढेले के रंग का हो, वहाँ सफेद शीशे की खान समझनी चाहिए।

(१४) जो भूमि भाग चिकने पत्थरों वाला, कुछ सफेदी एवं लाली लिये हो, अथवा उसकी आकृति निर्गुण्डी के पुष्प से मिलती हो, वहाँ लोहे की खान समझनी चाहिये।

(१५) जो भूमि-भाग कौवे के अण्डे या भोजपत्र की आकृति का हो, वहां इस्पाती लोहे की खान समझनी चाहिये।

(१६) जो भूमि-भाग, इतना स्वच्छ हो कि जिसमें परछाई दिखाई दे, जो चिकना, दीप्त, शब्द देने वाला, अत्यन्त शीतल और फीके रंग वाला हो, वहाँ मणियों की खान जाननी चाहिये।

(१७) खान से प्राप्त सुवर्ण आदि के लाभ को पुनः खान के कार्यों में लगाकर अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिये।

(१८) किसी एक नियत स्थान में ही सुवर्ण आदि धातुओं की बिक्री की व्यवस्था करनी चाहिए, उससे अन्यत्र बेचने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जाना चाहिये।

(१९) धातुओं की चोरी करने वाले व्यक्ति पर, चोरी का आठ गुणा दण्ड करना चाहिये, किन्तु वह रत्नों की चोरी करता है तो उसको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

(२०) जो व्यक्ति चोरी करे अथवा राजा की अनुमति के बिना धातुओं का व्यापार करे, उसे पकड़कर खान के कार्य में लगा देना चाहिये और जिस व्यक्ति को न्यायालय ने प्राणदण्ड की सजा दी हो, किन्तु कारणवश वह उस दण्ड को पूरा न कर सके तो, ऐसे व्यक्ति को भी खान में लगा देना चाहिये।

(२१) यदि खान पर लोगों का कर्जा चढ़ गया हो और उस कर्ज को चुकता कर देने पर ही लाभ निर्भर हो तो, खान के अध्यक्ष को चाहिये कि वह थोड़ी-थोड़ी किस्तों में उस कर्जे को चुकता कर दे अथवा राजा से, कुछ सोना देकर एक मुस्त रकम देकर, वह उस कर्ज को सर्वथा चुकता कर दे। यदि थोड़ी पूँजी या थोड़े श्रम से कार्य पूरा हो सकता है, तो अध्यक्ष स्वयं ही वैसा कर दे।

(२२) अध्यक्ष को चाहिये कि वह ताँबा, शीशा, त्रपु, वैकृंतक, आरकूट, व त्त, कंस और ताल आदि अन्य प्रकार के लोहों का कार्य अपनी देखरेख में कराये। लोहे की बनी वस्तुओं एवं तत्सम्बन्धी कार्य-व्यवहार को भी वह अपनी निगरानी में करवाये।

(२३) टकसाल के अध्यक्ष को चाहिये कि वह पण, अर्धपण, पादपण तथा अष्टभागपण नामक चार चाँदी के सिक्कों को विधिपूर्वक ढलवावे। १६ माष का एक पण होता है। उसमें ४ माष ताँबा, लोहा, राँगा, सीसा तथा अंजन, इसमें से कोई भी एक माष, बाकी ११ माष चाँदी होनी चाहिये। इसी हिसाब से अर्धपण (अठन्नी), पादपण (चवन्नी) और अष्टभागपण (दुवन्नी) आदि को ढलवावे। पण के चौथे हिस्से को व्यवहार में लाने के लिए ताँबे का एक अलग सिक्का होना चाहिये, जिसमें चौथाई हिस्सा चाँदी एक हिस्सा लोहा, शीशा आदि में से कोई एक और ग्यारह माष ताँबा होना चाहिये, इस सिक्के का नाम मापक है, जिसका वजन सोलह माष होता है, इसका भी अर्धमापक सिक्का तैयार करवाना चाहिये, इसके पादमापक तथा अष्टभागमापक के लिए 'काकणी' तथा 'अर्धकाकणी' नामक सिक्कों को बनवाना चाहिए।

(२४) सिक्कों के विशेषज्ञ को इस बात की व्यवस्था कर देनी चाहिये कि कौन-सा सिक्का चलाया जाये और कौन-सा सिक्का खजाने में जमा किया जाये। सौ पण पर जो आठ पण राज्यभाग जनता से लिया जाता है, उसका नाम रूपिक है; सौ पण पर पाँच पण राज्यभाग व्याजी और सौ पण पर आठ पण राज्यभाग पारीक्षिक कहलाता है। यदि कोई पारीक्षिक का अपहरण करे तो उसे पच्चीस पण दण्ड दिया जाये, यदि अधिक अपहरण करे तो, अपहृत धन के हिसाब से, उस पर दुगुना, चौगुना दण्ड नियत करना चाहिये। किन्तु सिक्कों को बनाने, बेचने,

खरीदने और परीक्षा करने वाले अधिकारियों के लिये दण्ड-विधान की व्यवस्था कुछ दूसरी ही है।

(२५) खान के अध्यक्ष को चाहिये कि वह शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा सभी तरह के क्षारों की उत्पत्ति और उनके क्रय-विक्रय की सुव्यवस्था करे।

(२६) लवण के अध्यक्ष को चाहिए कि वह बिक्री के लिए तैयार नमक की और किसी दूसरी खान से कुछ शर्तों के आधार पर नियत मात्रा में उपलब्ध होने वाले नमक का ठीक समय से संग्रह कर ले, उसको चाहिये कि वह उसके विक्रय का, बिक्री से प्राप्त होने वाले मूल्य का और रूप एवं व्याजी का सुप्रबंध करे।

(२७) विदेश से बिक्री के लिये आये हुये नमक का छठा भाग राजकर के रूप में देना चाहिये। जो व्यक्ति समुचित राजकर एवं तौल का टैक्स अदा करे वही उसको बेचने का अधिकारी है और उसे पाँच प्रतिशत व्याजी, रूप तथा रूपिक भी राजकर के रूप में अदा करना चाहिये। उस माल को खरीदने वाला व्यक्ति भी राजकर अदा करे, उसकी छीजन भी वह पूरी करे। राजकीय बाजार का कोई व्यापारी यदि बाहर से नमक मंगाता है तो उससे छह प्रतिशत राजकर के अतिरिक्त जुर्माना भी अदा किया जाये।

(२८) घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारी को उत्तम साहस दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार जो राजाज्ञा के विरुद्ध नमक को बनाता है या उसका व्यापार करता है, उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। किन्तु यह नियम वानप्रस्थियों पर लागू नहीं होता है। श्रोत्रिय, बेगार ढोने वाले और तपस्वी लोग बिना कीमत दिये भी अपने उपयोग के लायक नमक ले जा सकते हैं।

(२६) इनके अतिरिक्त, नमक और क्षार का उपयोग करने वाले सभी लोग नमक के अध्यक्ष और क्षार के अध्यक्ष को शुल्क अदा करें

(३०) इस प्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिघ, अत्यय, शुल्क, वैधरण, दण्ड, रूप, रूपिक, खनिज पदार्थ और भिन्न-भिन्न प्रकार के विक्रेय पदार्थों का संग्रह करना चाहिये। राज्यभर की सभी मंडियों में प्रमुख विक्रेय वस्तुएं बिक्री के लिये रखी जानी चाहिये।

(३१) कोष की उन्नति खान पर निर्भर है, कोष की सम द्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है। इस कोषगर्भा प थिवी को कोष और सेना से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में आकरकर्मान्तप्रवर्तन नामक बारहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १३

अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः

(१) सुवर्णाध्यक्ष सुवर्णरजतकर्मान्तानामसम्बन्धावेशनचतुः शालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत्। विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्ययिकं च स्थापयेत्।

(२) जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं श ङ्गिशुक्तिजं, जातरूपं रसविद्धमाकरोद्गतं च सुवर्णम्।

(३) कि जल्कवर्णं म दु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठं, रक्तपीतकं मध्यमं रक्तमवरं श्रेष्ठानाम्।

(४) पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम्। तद्येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत्, सीसान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत्, रुक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत्।

(५) आकरोद्गतं सीसान्वयेन भिद्यमानं पाकपत्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत्, कन्दलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयेत्।

(६) तुत्थोद्गतं गौडिकं काम्बुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम्। श्वेतं स्निग्धं म दु च श्रेष्ठम्। विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम्। तत्सीसचतुर्भागेन शोधयेत्।

(७) उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दधिवर्णं व शुद्धम्।

(८) शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः। ततः शुल्बकाकण्युत्तरापसारिता आ चतुःसीमान्तादिति षोडश वर्णकाः।

(९) सुवर्ण पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकषयेत्। समरागलेखमनिम्नोन्नते देशे निकषितम्। परिम दितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात्। जातिहिङ्गुलकेन पुष्पकासीसेन वा गौमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्प ष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति।

(१०) सकेसरः स्निग्धो म दुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः।

(११) कालिङ्गकस्तापीपाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठः। समरागी विक्रयक्रयहितः। हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः। स्थिरः परुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः।

(१२) छेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्षणो म दुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः।

(१३) तापे बहिरन्तश्च समः कि जल्कवर्णः कुरण्डपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः। श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः।

(१४) तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः। तेनोपदेशेन रूप्यसुवर्णं दद्याराददीत च।

(१५) अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत्। अभिगच्छन्नुच्छेद्यः आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत। विचितवस्त्रहस्तगुह्याः का चनप षतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकाः प्रविशेयुनिष्कसेयुश्च। सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रै- वावतिष्ठेरन्। ग हीतं सुवर्ण ध तं च प्रयोगं करणमध्ये दध्यात्। सायं प्रातश्च लक्षितं कर्त कारयित मुद्राभ्यां निदध्यात्।

(१६) क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि। क्षेपणः काचार्पणादीनि। गुणः सूत्रवानादीनि। घनं सुषिरं प षतादियुक्तं क्षुद्रकमिति।

(१७) अर्पयेत् काचकर्मणः प चभागं का चनं दशभागं कटुमानम्। ताम्रपादयुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतकं तस्माद्रक्षेत्।

(१८) प षतकाचकर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम्। चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम्।

(१९) त्वष्टृकर्मणः। शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत्। रूप्यभाण्डं घनं घनसुषिरं वा सुवर्णार्धेन अवलेपयेत्। चतुर्भागसुवर्णं वा बालुकाहिङ्गुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत्।

(२०) तपनीयं ज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं, समसीसातिक्रान्तं पाकपत्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुकपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति। तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभङ्गं चिमिचिमायितं पीतचूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः।

(२१) तारमुपशुद्धं वा। अस्थितुत्थे चतुः, समसीसे चतुः, शुष्कतुत्थे चतुः, कपाले त्रिर्गोमये द्विः, एवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम्। एतस्मात्काकण्युत्तरापसारिता। आ द्विमाषादिति सुवर्णे देयं, पश्चाद्रागयोगः। श्वेततारं भवति।

(२२) त्रयों शाः तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्च्छितं तत् श्वेतलोहितकं भवति। ताम्रं पीतकं करोति।

(२३) तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात्। पीतरागं भवति।

(२४) श्वेततारभागौ द्वावेकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति।

(२५) कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति। प्रतिलेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्रवर्णं भवति। तस्यारम्भे रागविशेषेषु प्रतिवर्णिकां ग हृणीयात्।

(२६) तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुध्येत। तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणामपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डबन्धप्रमाणानि चेति।

(२७) समरागं समद्वन्द्वमशक्तं प षतं स्थिरम्।
सुप्रम ष्टमसंपीतं विभक्तं धारणे सुखम्।।
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम्।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्म ताः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षं नाम त्रयोदशो ध्यायः, आदितस्त्रयस्त्रिशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) सुवर्णाध्यक्ष को चाहिए कि वह सोने-चाँदी के प्रत्येक कार्य को करने के लिए एक अक्षशाला का निर्माण करवाये, उसमें एक ही प्रधान द्वार होना चाहिए, उसके चारों ओर, एक दूसरे से अलग, चार बड़े भवन होने चाहिये। विशिखा में चतुर, कुलीन, विश्वस्त और पारखी सर्राफों को बसाया जाये।

(२) सोना पाँच प्रकार का होता है; उसके रंग भी पाँच होते हैं : १. जाम्बूनद, २. शातकुम्भ, ३. हाटक, ४. वैणव और ५. श गिशुक्तिज। सुवर्ण के तीन प्रकार : १. जातरूप, २. रसविद्ध और ३. आकारोद्गत।

(३) कमलरज की आकृति का, म दु, स्निग्ध, शब्दरहित और चमकदार सोना सर्वोत्तम; लाल-पीत वर्ण मिश्रित सोना मध्यम और केवल लाल वर्ण का निकृष्ट होता है।

(४) उत्तम कोटि के सुवर्ण में से जिसमें कुछ पीलाई एवं सफेदी हो वह अप्राप्तक कहलाता है। उस सोने में जितना मैल मिला हो, उससे चौगुना शीशा डालकर उसे शुद्ध करना चाहिये। शीशा मिला देने से यदि वह फटने लगे तो उसे जंगली कण्डों की आग में तपाना चाहिये। यदि शुद्ध करते समय रूखापन आ जाने से वह फटने लगे तो तेल और गोबर को मिलाकर बार-बार उसमें भावना देनी चाहिये।

(५) खान से निकाले हुए सोने को भी शीशा मिलाकर शुद्ध किया जाना चाहिएं यदि शीशा मिलाने से वह फटने लगे तो उसके साथ पके हुए पत्ते मिला लिये जायें और तब उसको लकड़ी के तख्ते पर रखकर खूब कूटा जाना चाहिए। अथवा कन्दलीलता, श्रीवेर और कमलजड़ का क्वाथ बनाकर तब तक उसे सुवर्ण को उसमें भिगोया जाये, जब तक कि उसका फटना दूर नहीं होता है।

(६) चाँदी चार प्रकार की होती है : १. तुत्थोद्गत, २. गौडिक, ३. कांबुक और ४. चाक्रवालिक। श्वेत, स्निग्ध और मुलायम चाँदी सर्वोत्तम समझी जाती है। इनके विपरीत काली, रूक्ष, खरखरी और फटी हुई चाँदी खराब होती है। खराब चाँदी में चौथाई शीशा डालकर उसको शुद्ध करना चाहिये।

(७) जिसमें बुदबुदे उठे हों, जो स्वच्छ, चमकदार और दही के समान श्वेत हो, वह शुद्ध चाँदी होती है।

(८) हल्दी के समान स्वच्छ, शुद्ध सुवर्ण का सोलह माष का वर्णक शुद्ध वर्णक कहलाता है। उसमें चतुर्थांश ताँबा मिला दिया जाये और उतना ही हिस्सा सुवर्ण कम कर दिया जाये, इसी तरह सोने का हिस्सा कम करके और तांबे का हिस्सा मिलाकर सोलह वर्णक बन जाते हैं। ये सोलहों मिश्र वर्णक कहलाते हैं और उनमें शुद्ध वर्णक को जोड़ दिया जाये तो सत्रह वर्णक हो जाते हैं।

(६) वर्णक की परीक्षा करने से पूर्व सुवर्ण की परीक्षा कर लेनी चाहिये; सोने को पहले कसौटी पर घिसना चाहिये और तत्पश्चात् वर्णक को घिसने के बाद उनमें समान वर्ण तथा समान रेखाएं दिखाई दें, घिसने से ऊँचा-नीचा न हो तो वर्णक को ठीक समझना चाहिये। १. यदि विक्रेता वर्णक को उत्कृष्ट बताने के उद्देश्य से कसौटी को उस पर जोर से रगड़ें, अथवा ३. नाखून में गेरु आदि कोई लाल-पीली वस्तु छिपाकर सोने के साथ कसौटी पर रेखा बना दे, तो इस प्रकार से यह तीनों प्रकार का कपटपूर्ण व्यवहार कहा जाता है। कपटी सर्राफ सोने को घटिया सिद्ध करने के लिए गो-मूत्र में भावना दिये गये एक विशेष प्रकार के सिंगरफ के साथ कुछ पीले रंग के हरताल के साथ लिपटे हुए लेप को हाथ के अग्रभाग के स्पर्श से सोने का रंग फीका कर देते हैं।

(१०) केसर के समान रंग वाली, स्निग्ध, म दु और चमकदार रेखा जिस कसौटी पर खिंचे, उसे सर्वोत्तम समझना चाहिये।

(११) कलिंग देश के महेन्द्र पर्वत से अथवा तापी नदी से उत्पन्न, मूंग के समान आकृति वाली कसौटी सर्वोत्तम समझनी चाहिये। सोने के रंग को ठीक तरह से ग्रहण करने वाली कसौटी क्रेता-विक्रेता, दोनों के लिए उचित है। हस्तिचर्म के समान खरखरी, हरे रंग की और विपरीत रंग को बताने वाली कसौटी सोना बेचने वालों के हक में अच्छी है। इस प्रकार ठोस, कठोर, खरखरी, तरह-तरह के रंगों वाली और असली रंग को न बताने वाली कसौटी सोना खरीदने वालों के लिए अच्छी नहीं है।

(१२) चिकना, बाहर-भीतर एक रंग वाला, स्निग्ध, म दु और चमकदार, सोने का टुकड़ा श्रेष्ठ समझा जाता है।

(१३) यदि सोने का टुकड़ा, तपाये जाने पर, बाहर भीतर एक ही रंग दे या वह कमलरज के समान दिखाई दे या वह कुरण्ड के फूल की भाँति हो जाये तो उसे भी श्रेष्ठ समझना चाहिये। यदि तपाने से उसमें फर्क पड़ जाये, उस पर नीलिमा छा जाये तो समझना चाहिये कि वह खोटा है।

(१४) सोना-चाँदी तोलने का विधान आगे चलकर 'पौतवाध्यक्ष' प्रकरण में कहा जायेगा। उस

प्रकरण में निर्दिष्ट तौल के अनुसार ही सोना-चाँदी देने और लेने चाहिए।

(१५) अक्षशाला में वे ही व्यक्ति प्रवेश करें, जो वहाँ कार्य करने के लिए नियुक्त किये गये हैं। निषेध करने पर भी यदि कोई प्रवेश करते हुए पकड़ा जाये तो उसका सर्वस्व अपहरण कर लेना चाहिये। अक्षशाला में कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति यदि अपने साथ सोना चाँदी ले जाता हुआ पकड़ा जाये तो उसे भी यथायोग्य दण्ड देना चाहिये। रसप्रयोग से सोना बनाने वाले, तरह-तरह के आभूषण बनाने वाले, छोटी-छोटी गोली बनाने वाले, बड़े-बड़े पात्र बनाने वाले, तरह-तरह के आभूषण बनाने वाले, झाड़ू देने वाले तथा अन्य परिचारक, अपनी-अपनी वर्दी पहने तलाशी देकर अक्षशाला में प्रवेश करें और बाहर निकलें। इन कारीगरों के औजार एवं आधे बनाये हुये आभूषण आदि अक्षशाला में ही रहें, बाहर कदापि न जाने पावें। भांडागार से तोल कर लिया गया सोना तथा उससे बने हुए आभूषण आदि, कार्य करने के अनन्तर, भांडागार के लेखक को भली भांति तोल कर सौंप देना चाहिए और विधिवत् उसको रजिस्टर में दर्ज करवा देना चाहिये। सायं और प्रातः प्रतिदिन, काम खत्म होने और शुरु होने पर सौवर्णिक तथा सुवर्णाध्यक्ष से मुहर लगाकर भण्डार का लेखक उस सुवर्ण को भण्डार में बन्द करके रख दे।

(१६) आभूषण सम्बन्धी कार्य तीन प्रकार के होते हैं : १. क्षेपण, २. गुण और ३. क्षुद्रक। आभूषणों पर मणियों के जोड़ने को क्षेपण कहते हैं। सोने के बारीक सूतों को जोड़ने के लिए गुण कहा जाता है। ठोस तथा पीले, छोटी-छोटी बूंदों या गोलियों से बने आभूषण सम्बन्धी कार्य को क्षुद्रक कहते हैं।

(१७) मणियों की जुड़ाई सम्बन्धी कार्य को काचकर्म कहते हैं। मणि के पाँचवें हिस्से को सोने से पिरो दें; मणि इधर-उधर न होने पावे, उसके लिए चारों ओर से सोने की पट्टी लगी रहती है उसको कटुमान कहा जाता है। मणि का जितना हिस्सा सोने में पिरो दिया जाये उसका आधा हिस्सा कटुवान का होना चाहिये; स्वर्णकार शुद्ध किए हुए सोने में मिलावट कर सकते हैं; चाँदी की जगह ताँबा और सोने की जगह चाँदी भर कर वे उतने अंश को हड़प कर सकते हैं; यह मिलावटी सोना-चाँदी शुद्ध ही जैसा प्रतीत होता है; इसलिए इस सम्बन्ध में अध्यक्ष को पूरी निगरानी रखनी चाहिये।

(१८) मिश्रित काचकर्म के सम्बन्ध में ध्यान रखना चाहिए कि पहले गुटिका आदि से मिश्रित काचकर्म के लिए जितना सुवर्ण निर्धारित हो उसके पाँच भाग किए जायें; उनमें तीन भाग पदम्, स्वस्तिक आदि बनाने के लिए और दो भाग उसका आधारपीठ बनाने के लिए होते हैं; यदि मणि बड़ी हो तो सुवर्ण के सात हिस्से करने चाहिये। जिनमें चार हिस्से आधार के लिए ओर शेष तीन हिस्से स्वस्तिक आदि के लिए काम में लाये जायें।

(१९) ताँबे तथा चाँदी के घनपात्र की विधि इस प्रकार है : जितना ताँबे का पात्र हो उतना ही सोने का पत्र उसके ऊपर चढ़वा देना चाहिए; चाँदी का पात्र चाहे ठोस हो या पीला हो, उस पर उसके भार से आधे, सोने का पानी चढ़वा दे; अथवा चौथा हिस्सा सोना लेकर उसे बालू और शिंगरफ के चूर्ण एवं रस के साथ मिलाकर भूसी अग्नि में पिघलाकर पानी की तरह चढ़वा दे।

(२०) आभूषण आदि के लिए प्रस्तुत, कमलरज के समान स्वच्छ, स्निग्ध और चमकदार सोना उत्तम किस्म का है। वह शुद्ध सोना नील, पीत, श्वेत, हरित और शुकपोत आदि रंग के आभूषणों के योग्य होता है। अशुद्ध सुवर्ण में उसके परिमाण का सीसा डालकर उसे शुद्ध किया जाये; अथवा उसके पतले-पतले पत्र बनाकर फिर अरणे के कण्डों की तपन से उसको शुद्ध किया जाये; या सिंधदेश की मिट्टी के साथ घिसकर उसे शुद्ध किया जाये। इस सुवर्ण के साथ इस्पाती लोहा भी नील, पीत आदि आभूषणों के योग्य होता है। इस्पाती लोहा मोर की गर्दन

के समान आकृति का और काटने पर श्वेत, चमकता हुआ होना चाहिए। यदि गरम करके उसका चूर्ण बनाया जाये और उसको एक काकिणी सोने में मिला दिया जाये तो सोने का रंग खिल उठता हैं

(२१) लोहे के स्थान पर शुद्ध चाँदी भी मिलाई जा सकती है। हड्डी के चूर्ण के साथ मिली हुई मिट्टी से बनी हुई घरिया में चार बार, मिट्टी और सीसे से बनी घरिया में चार बार, शुद्ध मिट्टी से बनी घरिया में तीन बार और गोबर में तीन बार - इस प्रकार सत्रह बार घरिया में बदलने के बाद सिंधदेश की खारी मिट्टी में रगड़ देने से श्वेतवर्ण की शुद्ध रूप्यधातु तैयार हो जाती है। उसमें से एक काकिणी चाँदी सोने में मिलाई जा सकती है। इस प्रकार दो माष तक चाँदी मिलाकर उतना सोना निकाला जा सकता है। इस प्रकार सोने में चाँदी मिला देने से और तदनन्तर उसको चमका देने वाली चीजों के सहयोग से सुवर्ण भी चाँदी की तरह चमकने लगता है।

(२२) बत्तीस भागों में विभक्त साधारण सोने में तीन भाग मिलाकर उनकी जगह तीन भाग शुद्ध सोना और शेष चाँदी को एक साथ मिलाकर घरिया में उलटने-पुलटने से उसका रंग श्वेत-लाल मिश्रित रंग का हो जाता है। यदि पूर्वोक्त रीति से चाँदी के साथ या ताँबे को सोने में मिला दिया जाये तो वह उसके रंग को पीला बना देता है।

(२३) साधारण सोने को खारी मिट्टी से चमका कर उसमें शुद्ध सोने का तीसरा भाग मिला दिया जाये तो उसका रंग लाल-पीला हो जाता है।

(२४) दो भाग शुद्ध चाँदी में एक भाग सोने को मिला कर भावना देने से उसका रंग मूंग के समान हो जाता है।

(२५) सोने का छठा हिस्सा लोहा मिला देने से उसका रंग काला हो जाता है। पिघले हुए लोहे तथा शुद्ध चाँदी से मिला हुआ दुगुना सोना संवापंखी रंग का हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त नील, आदि रंगों के भेद को जानने के लिए प्रत्येक वर्णक को ग्रहण करना चाहिये।

(२६) सोने का रंग बदलने के लिए उपयोग में आने वाले लोहे, ताँबे को शुद्ध करना आवश्यक है; इसलिए उनके शुद्ध करने की विधि भली-भाँति जान लेनी चाहिए। जिससे वज्रमणि, मुक्ता, प्रवाल आदि उत्तम रत्नों में मिलावट न हो सके और सोने-चाँदी आदि के आभूषण में कोई न्यूनाधिक मेल करके गड़बड़ी न कर सके, इसके लिए उत्तम रत्नों और सोना-चाँदी के आभूषणों के सम्बन्ध में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये।

(२७) १. एक सा रंग होना, २. वजन तथा रूप में समान होना, ३. बीच में गांठ आदि का न होना, ४. टिकाऊ होना, ५. अच्छी तरह चमकाया हुआ होना, ६. ठीक तरह बना हुआ होना, ७. अलग-अलग हिस्सों वाला, ८. पहनने में सुखकर, साफ-सुथरा, १०. कांतिमान, ११. अच्छा दिखाई देने वाला, १२. एक जैसी बनावट का, १३. अयुक्त छिद्रों से रहित और १४. मन तथा आँखों को अच्छा लगने वाला, ये चौदह गुण सोने के आभूषणों में होते हैं।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १४
विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः

(१) सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनिभिः कारयेत्। निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः, अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम्।

(२) कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः। कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशः, तद्द्विगुणश्च दण्डः।

(३) यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं ग ह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः, कालान्तरादपि तथाविधमेव प्रतिग ह्णीयुरन्यत्र क्षीणपरिशीर्णाभ्याम्।

(४) आवेशनिभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात्।

(५) तप्तकलधौतकयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः। तीक्ष्णकाकणी रूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः।

(६) वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः, प्रमाणहीने मध्यमः, तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः, कृतभाण्डोपधौ च।

(७) सौवर्णिकेनाद ष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः, कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत्। अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत। कर्तुश्च द्विशतो दण्ड पणछेदनं वा।

(८) तुलाप्रतिमानमाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः। अन्यथा द्वादशपणो दण्डः।

(९) घनं घनसुषिरं संयूह्यमवलेप्यं सङ्घात्यं वासितकं च कारुकर्म।

(१०) तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकः पिङ्कश्चेति हरणोपायाः।

(११) सन्नामिन्युत्कीर्णिका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या वारिवेल्ल्ययस्कान्ता वा दुष्टतुलाः।

(१२) रूप्यस्य द्वौ भागावेकः शुल्बस्य त्रिपुटकम्। तेनाकरोद्गतमपसार्यते। तत्त्रिपुटकापसारितं, शुल्बेन शुल्बापसारितं, वेल्लकेन वेल्लकापसारितं, शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम्।

(१३) मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नाली सन्दंशो जोङ्गनी सुवर्चिकालवणम्। तदेव सुवर्णमित्यपसारणमार्गाः। पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते।

(१४) पश्चाद्बन्धने आचितकपत्रपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम्, पिण्डबालुकानां लोहपिण्डबालुकाभिर्वा।

(१५) गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसङ्घात्येषु क्रियते। सीसरूपं सुवर्णपत्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः। स एव पटलसम्पुटेष्वभ्युद्धार्यः। पत्रमाश्लिष्टं यमकपत्रं वावलेप्येषु क्रियते। शुल्बं तारं वा गर्भः पत्त्राणाम्। संघात्येषु क्रियते शुल्बरूपं सुवर्णपत्त्रसंहतं प्रम ष्टं सुपार्श्वम्। तदेव यमकपत्रसंहतं प्रम ष्टम्। ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः।

(१६) तदुभयं तापनिकषाभ्यां निश्शब्दोल्लेखनाभ्यां वा विद्यात्। अभ्युद्धार्य बदराम्ले लवणोदके वा सादयन्ति इति पेटकः।

(१७) घनसुषिरे वा रूपे सुवर्णम न्मालुकाहिङ्गुलुककल्को वा तप्तो वतिष्ठते। द ढवास्तुके वा रूपे

वालुकामिश्रजतुगान्धारपङ्को वा तप्तो वतिष्ठते। तयोस्तपनमवध्वंसनं वा शुद्धिः। सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते। तस्य क्वाथनं शुद्धिः। अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बध्यते। तस्यापिहितकाचकस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति। पटलान्तरेषु वा सूच्या भिद्यते। मणयो रूप्यं सुवर्णं वा घनसुषिराणां पिङ्कः। तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः। इति पिङ्कः।

(१८) तस्माद्वज्रमणिमुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गललक्षणान्युपलभेत।

(१६) कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः—परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा। पेटकापदेशेन प षतं गुणं पिटका वा यत् परिशातयन्ति तत् परिकुट्टनम्। यद् द्विगुणवास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं प्रक्षिप्याभ्यान्तरमवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम्। यद्घनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम्। हरितालमनःशिलाहिङ्गुलक- चूर्णानामन्यतमेन कुरुविन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयूह्य यत् परिम द्नन्ति तत् परिमर्दनम्। तेन सौवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते। न चैषां कि चिदवरुग्णं भवति।

(२०) भग्नखण्डघ ष्टानां संयूह्यानां सद शेनानुमानं कुर्यात्। अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात्। विरूपाणां वा। तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात्।

(२१) अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाधिकरणी पिच्छः सूत्र चेल्लं बोल्लनं शिर उत्सङ्गो मक्षिका स्वकायेक्षा द तिरुदकशेरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात्।

(२२) राजतानां विस्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीतं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात्।

(२३) एवं नवं च जीर्णं च विरूपं चापि भाण्डकम्।
परीक्षेतात्ययं चैषां यथोद्दिष्टं प्रकल्पयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे विशिखायां सौवर्णिकप्रचारों नाम चतुर्दशो ध्यायः, आदितश्तचतुस्त्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) सौवर्णिक (राज्य का प्रधान आभूषण व्यापारी) को चाहिए कि वह नगरवासियों और जनपदवासियों के सोने-चाँदी के आभूषणों का कार्य शिल्पशाला में बैठकर काम करने वाले सुनारों द्वारा कराये। सुनारों को चाहिए कि वे समय और वेतन को नियत करके ही कार्य करें; यदि कार्य की अधिकता हो या वायदे की अवधि बीत रही हो, तो उन्हें नियत समय से भी अधिक कार्य करना चाहिये।

(२) यदि कोई सुनार वायदे के अनुसार कार्य पूरा न करे तो उसके वेतन का चौथाई भाग जब्त करके उसे वेतन का दुगुना दण्ड दिया जाये। यदि कोई सुनार अभीष्ट जेवर न बनाकर दूसरा ही जेवर बनाकर दे, तो उसकी मजदूरी जब्त कर उसे नियत वेतन का दुगुना दण्ड दिया जाये।

(३) सुनारों को चाहिए कि वे जिस प्रकार और जितने वजन का सोना आदि आभूषण के लिए लें, उसी प्रकार और उतने ही वजन का आभूषण बनाकर वापिस करें। सुनार के परदेश चले जाने अथवा उसकी म त्यु हो जाने के कारण यदि सुनार के घर सोना बहुत दिनों तक पड़ा रह जाये तो उसके उत्तराधिकारियों से वह सोना वापिस ले लेना चाहिये। यदि सोना नष्ट हो गया हो या छीज गया हो तो सुनार से उसका मुआवजा भी लेना चाहियें

(४) सौवर्णिक को चाहिये कि वह सुनारों के द्वारा किये जाने वाले पुद्गल तथा लक्षण आदि कपट प्रयोगों के सम्बन्ध में भी अच्छी जानकारी रखे।

(५) यदि खोटे सोने-चाँदी के आभूषण बनाने के लिए दिए जायें तो सुनार को एक काकणी (एक चौथाई माष) छीजन देनी चाहिये। सोने का रंग बदलने के लिए एक काकणी लोहा और दो काकणी चाँदनी उसमें मिलानी चाहिये। एक काकणी लोहा और दो काकणी चाँदी का छठा भाग छीजन के लिए निकाल लेना चाहिये।

(६) यदि अपनी अज्ञानता के कारण सुनार एक माष सुवर्ण को कांतिहीन कर दे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये; तौल में कम करे तो मध्यम साहस दण्ड; और तराजू-बाट में कपट करे तो उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये, इसी प्रकार सोने-चाँदी के बने हुए पात्र में यदि कोई व्यक्ति हेर-फेर करे तो उसे भी उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(७) सौवर्णिक की अनुमति प्राप्त कर या न प्राप्त कर यदि कोई व्यक्ति शिल्पशाला से बाहर किसी सुनार से आभूषण बनवाये तो उसे बारह पण दण्ड देना चाहिये, और जेवर बनाने वाले सुनार को चौबीस पण। उनके लिए यह दण्ड-व्यवस्था उसी दशा में है यदि उन पर चोरी की आशंका न हो तो और यदि उन पर चोरी किए जाने की आशंका हो तो उन्हें कण्टकशोधक के पास न्याय के लिए ले जाना चाहिये। यदि अपराध सिद्ध हो जाये तो सुनार पर दो-सौ पण दण्ड निर्धारित किया जाये और इतना धन देने से यदि वह इन्कार करे तो उसकी उंगलियाँ कटवा देनी चाहिये।

(८) सुनारों को चाहिये कि वे सोना-चाँदी तोलने के बाट-तराजू कही से न खरीद कर पीतवाध्यक्ष के यहाँ से ही खरीदें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उन पर बारह पण का दण्ड कर देना चाहिये।

(९) सुनारों के १. घन, २. घनसुषिर, ३. संयूह्य, ४. अवलेप्य, ५. संघात्य, और ६. वासितक, ये छह प्रकार के कार्य होते हैं।

(१०) १. तुलाविषम, २. अपसारण, ३. विस्रावण, ४. पेटक और ५. पिङ्ग, ये पाँच तरीके सुनारों के चोरी करने के हैं।

(११) काँटे या तराजू का बढ़ा-घटा होना, जिससे ठीक तरह न तौला जा सके, तुलाविषम कहलाता है। ऐसे काँटे आठ प्रकार के होते हैं : १. सन्नामिनी, २. उत्कीर्णिका, ३. भिन्नमस्तका, ४. उपकंठी, ५. कुशिक्या, ६. सकटुकक्ष्या, ७. पारिवेल्य, ८. आयस्कांता।

(१२) नकली द्रव्य को मिलाकर असली द्रव्य को चुना लेना अपसारण कहलाता है। वह चार प्रकार का होता है : १. दो हिस्सा चाँदी और एक हिस्सा ताँबा मिलाकर जो घोल तैयार किया जाये उसको त्रिपुटक कहते हैं। शुद्ध सोने मे यह त्रिपुटक मिला कर उतना सोना निकाल दिया जाये ओर किसी के खोटा बताने पर कहा जाये कि वह तो खान से ही ऐसा निकला है, इस चोरी का नाम त्रिपुटकापसारित है। २. जिस सोने में ताँबा मिला कर चोरी की जाये उसको शुल्बापसारित कहते हैं। ३. लोहा-चाँदी के मिश्रित घोल को वेल्लक कहते हैं; उस वैल्लक को मिलाकर सोने की जो चोरी की जाती है उसको वेल्लकापसारित कहते हैं। ४. ताँबे के साथ आधा सोना मिलाकर उसके बदले में जो चोरी की जाती है उसे हेमापसारित कहते हैं।

(१३) अपसारण के ढंग इस प्रकार हैं : मूकमूषा, पूतिकिट्ट, करटकमुख, नाली, संदंश, जोंगनी सुवर्चिका और नमक। उनसे जब कहा जाये कि उन्होंने सोना खोटा कर दिया है, तो झट ये कह देते हैं कि यह आप का दिया हुआ सोना है, यह खान से ही ऐसा निकला है। ये अपसारण के तरीके हैं। या पहिले ही से आग में बारीक बालुका-सी डाल दी जाती है और फिर मूषा को अग्नि में रख कर मूषा को टूट जाने का बहाना करता है और तब मालिक के सामने उस बालुका को सोने में मिला दिया जाता है और उतना ही सोना वह होशियारी से मार लेता है।

(१४) किसी बनी हुई वस्तु को पीछे से जोड़ते समय या पात्रों की परीक्षा करते समय खरे सोने की जगह खोटा सोना जोड़ देना विस्रावन कहलाता है। सोने की खान में उत्पन्न बालुका को लोहे की खान में उत्पन्न बालुका से बदल देना भी विस्रावण कहलाता है।

(१५) पेटक दो प्रकार का होता है : १. गांठ और २. अभ्युद्धार्य; इसका प्रयोग संयूह्य, अवलेप्य तथा संघात्य कर्मों में किया जाता है। सीसे के पत्ते को सोने के पत्ते से मढ़ कर बीच में लाख से जोड़ देना ही गाठपेटक कहलाता है। वही बन्धन यदि सरलता से खुलने योग्य हो तो उसे अभ्युद्धार्यपेटक कहते हैं। अवलेप्य क्रियाओं में एक ओर या दोनों ओर सोने का पतला सा पत्रा जोड़ कर सोने को चुराया जा सकता है। अथवा बाहर पत्ता लगाने की बजाय सुवर्ण पत्रों के बीच में ताँबे या चाँदी का पत्ता लगा कर भी सोना चुराया जाता है। संघात्य क्रियाओं में तांबे की वस्तु को एक ओर से सोने के पत्ते से मढकर उस हिस्से को खूब चमकदार एवं सुन्दर बना दिया जाता है। उसी तांबे की वस्तु को दोनों ओर से इसी प्रकार चमकदार एवं सुन्दर सोने के पत्तों से मढ़कर उतना ही असली सोना हड़प लिया जाता है।

(१६) इन दोनों प्रकार के पेटकों की शुद्धता जाँचने के लिए उन्हें अग्नि में तपाये, कसौटी पर घिसवाये या हल्की चोट देकर या रेखा खींचकर या किसी तीक्ष्ण वस्तु से निशान देकर उनकी परीक्षा करे। अभ्युद्धार्य पेटक बेरी के कसैले रंग में अथवा नमक के पानी में डालकर जाना जाये। ऐसा करने से उसका रंग कुछ लाल-सा हो जाता है।

(१७) ठोस या पोले गहनों में सुवर्णभ त्, सुवर्णमालुका और शिंगरफ का चूर्ण अग्नि में तपाकर लगा दिया जाता है और उतना ही शुद्ध सोना निकाल दिया जाता है। जिस आभूषण का आधार मजबूत हो उसमें साधारण धातुओं की बालुका की लाख और सिन्दूर का घोल आग में तपाकर लगा दिया जाता है और उसके बराबर का सोना निकाल दिया जाता है। इसप्रकार के ठोस तथा पोले गहनों को आग में तपाकर उन पर चोट देने से उनकी परीक्षा करनी चाहिये। बूंदेदार मणिबन्ध जैसे गहनों को, नमक की छोटी डलियों के साथ, लपट देने वाली आग में तपाने से उनकी शुद्धि हो जाती है। बेरी के अम्ल रस में उबाल कर भी उनकी शुद्धता को जाँचा जा सकता है। अभ्रक को उसके दुगुने सुवर्ण में लाख आदि से जोड़कर भी असली सोना रख लिया जाता है। उसकी परीक्षा के लिए अभ्रक लगे गहनों को बेरी के अम्ल जल में छोड़ देना चाहिये; अभ्रक लगा हिस्सा पानी में तैरता रहेगा। यदि अभ्रक की जगह ताँबा मिलाया गया हो तो सुई से छेदकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। ठोस या पीले गहनों में काँचमणि, चाँदी और खोटा सोना मिलाकर पिंग नामक उपाय द्वारा शुद्ध सोना चुराया जा सकता है। उसको आग में तपाना तथा उस पर हथौड़े की चोट करना ही उसकी शुद्धता का उपाय है।

(१८) इसलिये सौवर्णिक को चाहिये कि वह, वज्र, मणि, युक्ता और प्रवाल की जाति, उनके रूप, गुण, प्रमाण, पुद्गल और लक्षण आदि को भली-भाँति जाने, जिससे कोई व्यक्ति उनका अपहरण न कर सके।

(१९) पात्र और आभरण आदि के तैयार हो जाने पर, उनकी परीक्षा करते समय भी सोने आदि का चार प्रकार से अपहरण किया जा सकता है : १. परिकुट्टन से, २. अवच्छेदन से, ३. उल्लेखन से और ४. परिमर्दन से। पूर्वोक्त पेटक ढंग से परीक्षा करने के बहाने जो छोटे टुकड़े या छोटी गोली सुनार काट लिया करते हैं, उसे ही परिकुट्टन कहते हैं। पत्रों से जुड़े आभूषणों में सोने मढ़े हुये कुछ सीसे के पत्ते मिलाकर और भीतर से काटकर सोना निकाल लेना ही अवच्छेदन कहलाता है। ठोस गहनों को तेज औजार से खोद देना ही उल्लेखन है। हरताल, सिंगरफ, मैनसिल और कुरुविंद पत्थर के चूर्ण को भी कपड़े के साथ सानकर, उससे आभूषणों को रगड़ा जाना ही परिमर्दन कहलाता है। ऐसा करने से आभरण घिस जाते हैं;

किन्तु उन पर किसी प्रकार की खरोंच या चोट नहीं दिखाई देती है।

(२०) परिकुट्टन अवच्छेदन आदि कपट उपायों से जितने सुवर्ण का अपहरण किया गया हो, उसका ब्योरा, उसके समानजातीय शेष अवयवों से प्राप्त करना चाहिये। जिन आभूषणों पर अवलेप्य का प्रयोग किया गया हो, उस पर से कटे सोने के टुकड़े को देखकर उसकी क्षति का अनुमान किया जाये। जिन आभूषणों में अधिक खोटा माल मिला दिया गया हो उनकी हानि का परिमाण, उनके सद श दूसरे आभूषणों को तौलकर जाना जाये। उनको आग में तपाकर पानी में छोड़ दिया जाये और तब हथौड़े से चोट करके उनकी शुद्धता को जाँचा जाये।

(२१) अपहरण के और भी तरीके हैं : १. अवक्षेप (हाथ की सफाई से खरे माल को लेकर खोटा माल भिड़ा देना), २. प्रतिमान, (बदली करके चुरा लेना) ३. अग्नि के बीच से चुरा लेना, ४. गाण्डिका (पीटने के बहाने), ५. भण्डिका (घरिया में रखने के बहाने), ६. अधिकरणी (लोहे के पात्र में रखने के बहाने), ७. पिच्छ (मोर-पेंच से चुराना), ८. सूत्र (कांटे की डोरी के बहाने), ९. चेल्ल (वस्त्र में छिपा लेना), १०. बोल्लन (कोई किस्सा छेड़कर), ११. उत्संग (गोद या गुप्त अंग में छिपाकर), १२. मक्षिका (मक्खी उड़ाने के बहाने पिघली हुई धातु को अपने अंग में लगा देना) तथा १३. पसीना, १४. धौंकनी, १५. जल का शकोरा और १६. आग में डाले हुये खोटे माल आदि के बहाने सोना-चाँदी चुराया जा सकता है।

(२२) मिलावटी चाँदी के आभूषणों में पाँच प्रकार के दोष होते हैं : १० विस्त्र (दुर्गन्ध) होना, २. मलिन हो जाना, ३. कठोर हो जाना, ४. खुरदरा हो जाना और ५. रंग बदल जाना।

(२३) इस प्रकार नये और पुराने विरूप हुए पात्रों या आभूषणों की भली-भाँति परीक्षा कर लेनी चाहिये; और फिर मिलावट के अनुसार ही अपराधियों पर दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में विशिखा में सौवर्णिक-प्रचार नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १५

कोष्ठागाराध्यक्षः

(१) कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकापमित्यकसिंहनिकान्यजातव्यय-प्रत्यायोपस्थानानिउपलभेत्।

(२ सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता।

(३) पिण्डकरः, षड्भागः सेनाभक्तं, बलिः, करः, उत्सङ्गः, पार्श्वं, पारिहीणिकम्, औपायनिकं, कौष्ठेयकं च राष्ट्रम्।

(४) धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोगप्रत्यादानं च क्रयिमम्।

(५) सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः।

(६) सस्यायचनमन्यतः प्रामित्यकम्।

(७) तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम्।

(८) कुट्टकरोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकेष्विक्षूणां च क्षारकर्म सिंहनिका।

(९) नष्टप्रस्म तादिरन्यजातः।

(१०) विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषं च व्ययप्रत्यायः।

(११) तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्यूषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति।

(१२) धान्यस्नेहक्षारलवणानाम्।

(१३) धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः। सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः।

(१४) फाणितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षारवर्गः।

(१५) सैन्धवसामुद्रविडयवक्षारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः।

(१६) क्षौद्रं मार्द्वीकं च मधु।

(१७) इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवपनसानामन्यतमो मेषश ङ्गीपिप्पलीक्वाथाभिषुतो मासिकः षाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिद्भिटोर्वारुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकावसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः।

(१८) व क्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलुङ्गकोलवदरसौवीरकपरूपकादिः फलाम्लवर्गः।

(१९) दधिधान्याम्लादिर्द्रवाम्लवर्गः।

(२०) पिप्पलीमरिचश ङ्गिवेराजाजीकिराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रुकाण्डादिः कटुकवर्गः।

(२१) शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूलफलशाकादि च शाकवर्गः।

(२२) ततो र्धमापदर्थ जानपदानां स्थापयेत्। अर्धमुपयु जीत। नवेव चानवं शोधयेत्।

(२३) क्षुण्णघ ष्टपिष्टभ ष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां व द्धिक्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत।

(२४) कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः, शालीनामर्धभागोनः, त्रिभागोनो प्रियङ्गूणामर्धं सारो नवभागव द्धिश्च। उदारकस्तुल्यः। यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः।

(२५) तिलायवा मुद्गमाषाश्च घ ष्टाः। प चभागव द्विर्गोधूमः सक्तवश्च। पादोना कलायचमसी। मुद्गमाषाणामर्धपादोना। शैम्बानामर्धं सारः। त्रिभागोनः मसूराणाम्।

(२६) पिष्टमामं कुल्माषश्चाध्यर्धगुणः। द्विगुणो यावकः। पुलाकः पिष्टं च सिद्धम्।

(२७) कोद्रववरकोदारकप्रियङ्गूणां, त्रिगुणमन्नं, चतुर्गुणं ब्रीहीणाम्, प चगुणं शालीनाम्, तिमितमपरान्नं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम्।

(२८) पश्चभागव द्विभ ष्टानाम्। कलायो द्विगुणः लाजा भरुजाश्च। षट्कं तैलमतसीनाम्। निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां प चभागः। चतुर्भागिकास्तिकुसुम्भमधूकेङ्गुदीस्नेहाः।

(२६) कार्पासक्षौमाणां प चपले पलसूत्रम्।

(३०) प चद्रोणे शालीनां द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभोजनम्, एकादशकं व्यालानां, दशकमौपबाह्यानाम्, नवकं सान्नाह्यानाम्, अष्टकं पत्तीनां सप्तकं मुख्यानां, षट्कं देवीकुमाराणाम्, प चकं राज्ञाम्। अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः।

(३१) चतुर्भागः सूपः, सूपषोडशो लवणस्यांशः, चतुर्भागः सर्पिषः तैलस्य वा, एकमार्याभक्तम्। प्रस्थषड्भागः सूपः अर्धस्नेहमवराणाम्। पादोनं स्त्रीणाम्। अर्धं बालानाम्।

(३२) मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडुवः, पलिको लवणस्यांशः, क्षारपलयोगः, द्विधरणिकः कटुकयोगः, दध्नश्चार्धप्रस्थः।

(३३) तेनोत्तरं व्याख्यातम्। शाकानामध्यर्धगुणः, शुष्काणां द्विगुणः, स चैव योगः।

(३४) हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः। बलीवर्दानां माषद्रोणं यवानां वा पुलाकः। शेषमश्वविधानम्। विशेषो-घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा।

(३५) द्विगुणं महिषोष्ट्राणाम्। अर्धद्रोणं खरप षतरोहितानाम्। आढकमेणकुरङ्गाणाम्। अर्धाढकमजैलकवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम्। प्रस्थौदनः शुनाम्। हंसक्रौ चमयूराणामर्धप्रस्थः। शेषाणामतो म गपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत्।

(३६) अङ्गारांस्तुषाम् लोहकर्मान्तभित्तिलेप्यानां हारयेत्। कणिकाः दासकर्मकरसूपकाराणाम्। अतो न्यदौदनिकापूपिकेभ्यः प्रयच्छेत्।

(३७) तुलामानभाण्डं रोचनीद षन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयन्त्रपत्त्रकशूर्पचालनिकाकण्डोलीपिटक-सम्मार्जन्यश्चोपकरणानि।

(३८) मार्जकारक्षकधारकमायकमापकदायकदापकशलाकाप्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टिः।

(३६) उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मूताः क्षारस्य संहताः।
म त्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य प थिवी लवणस्य च।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे कोष्ठागाराध्यक्षो नाम प चदशो ध्यायः, आदितः प चत्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कोष्ठागार (कोठार) के अध्यक्ष को चाहिए कि वह १. सीता, २. राष्ट्र, ३. क्रयिम, ४. परिवर्त्तक, ५. प्रामित्यक, ६. आपमित्यक, ७. सिंहनिका, ८. अन्वजात, ६. व्ययप्रत्याय और १०. उपस्थान, इन दस बातों के संबंध में अच्छी जानकारी प्राप्त करे।

(२) राजकीय कर के रूप में एकत्र धान्य को सीता कहा हाता है; उसको एकत्र करने वाले अधिकारी को सीताध्यक्ष कहते हैं। कोष्ठागार के अध्यक्ष को चाहिए कि वह शुद्ध एवं पूरा सीता लेकर उसको व्यवस्था से रखे।

(३) राष्ट्र के दस भेद होते हैं : १. पिण्डकर, २. षड्भाग, ३. सेनाभक्त, ४. बलि, ५. कर, ६. उत्संग, ७. पार्श्व, ८. पारिहीणिक, ९. औपायनिक और १०. कौष्ठेयक।

(४) क्रयिक तीन प्रकार का होता है : १. धान्यमूलक, २. कोशनिर्हार और ३. प्रयोग-प्रत्यादान।

(५) एक अनाज देकर उसके बदले दूसरा अनाज लेना परिवर्त्तक कहलाता है।

(६) किसी मित्र आदि से सहायता रूप में ऐसा अन्न लेना, जो फिर लौटाया न जाये, प्रामित्यक कहलाता है।

(७) व्याज रहित पुनः लौटा देने के वायदे पर लिया हुआ अन्न आदि कर्ज आपमित्यक कहलाता है।

(८) कूट पीस कर, छान-बीन कर, सत्तू पीस कर, गन्ना आदि को पेर कर, आटा पीस कर, तिलों का तेल निकाल कर, भेड़ों के बाल काट कर और गुड़, राव, शक्कर आदि पर आजीविका निर्भर करने वाले लोगों से जो लिया जाता है, उसे सिंहनिका कहते हैं।

(९) नष्ट हुए तथा भूले हुए धन का नाम अन्यजात है।

(१०) व्ययप्रत्याय तीन प्रकार का होता है : १. विक्षेपशेष, २. व्यधितशेष और ३. अन्तरारम्भशेष।

(११) वाट-तराजू की पसंघा से, तौलने के बाद मुट्ठी-दो-मुट्ठी दिया हुआ अधिक अन्न, तौली हुई या गिनी हुई वस्तु में कोई दूसरी ही वस्तु मिला देना, छीजन के रूप में ली हुई वस्तु, पिछले वर्ष का बकाया और चतुराई से उपार्जित धन उपस्थान कहलाता है।

(१२) अब इसके उपरान्त धान्य, स्नेह, क्षार और लवण का निरूपण किया जाता है।

(१३) इसमें धान्यवर्ग के पदार्थों का विस्त त विवरण आगे 'सीताध्यक्ष' नामक प्रकरण में किया जायेगा। घी, तेल, वसा और मज्जा ये चार प्रकार के स्नेह पदार्थ हैं।

(१४) गन्ने से बने : राब, गुड़, गुड़खांड, खांड और शक्कर में क्षारवर्ग के पदार्थ हैं।

(१५) लवण छह प्रकार का होता है : १. सेंधा, २. समुद्री, ३. बिड, ४. जवाक्षार, ५. सज्जीखार और ६. लोना मिट्टी से बना।

(१६) शहद दो प्रकार का होता है : क्षोद्र और २. मार्द्वीक।

(१७) सिरका शुक्तिवर्ग का पदार्थ है। ईख का रस, गुड़, शहर, राब, जामुन का रस, कटहल का रस, इनमें से किसी एक को मेढ़ासिंगी और पीपल के क्वाथ के साथ मिलाकर एक मास, छह मास तथा वर्ष भर बन्द करके रखा जाये और उसके बाद मीठी ककड़ी, कड़ी ककड़ी, ईख, आम का फल एवं आँवला, ये पांचों चीजें उसमें डाल दी जायें या न भी डाली जायें; इस विधि से जो रस तैयार होगा उसे सिरका कहते हैं। एक मास का सिरका निकृष्ट, छह मास का मध्यम और साल भर का उत्तम कहा जाता है।

(१८) इमली, करौंदा आम, अनार, आवंला; खट्टा नींबू, झरबेर बेर, प्योंदी बेर, उन्नाव और फालसा आदि खट्टे रस के फल अम्लवर्गीय हैं।

(१९) दही, कांजी, मट्ठा आदि पनीली खट्टी चीजें द्रववर्गीय हैं।

(२०) पीपल, मिर्च, अदरख, जीरा चिरायता, सफेद सरसों, धनियां, चोरक, दमनक, मैनफल और सैजन आदि कड़ुवे पदार्थ कटुवर्गीय हैं।

(२१) सूखी मछली, सूखा मांस, कन्द, मूल, फल आदि शाकवर्गीय पदार्थ हैं।

(२२) स्नेहवर्ग से लेकर शाकवर्ग तक जितने पदार्थ गिनाये हैं, राजा को चाहिये कि, उन सब की उपज का आधा भाग आपत्तिकाल में जनपद की सुरक्षा के लिए सुरक्षित रखे। आधी उपज का उपयोग स्वयं कर ले। इसी प्रकार नई फसल या नया सामान आ जाने पर पुराने स्टाक को उपयोग में ले लिया जाये और उसकी जगह नया स्टाक भर दिया जाये।

(२३) कोष्ठागार के अध्यक्ष को चाहिये कि वह कूटा हुआ, साफ किया हुआ, पीसा हुआ, भुना हुआ, भीगा हुआ, सुखाया हुआ और पकाया हुआ; जितना भी धान्य है, अपने सामने तुलवाकर उसकी घट-बढ़ की जांच करे।

(२४) उनकी घट-बढ़ का नियम इस प्रकार है : कोदों और धान में आधी भूसी निकल जाती है; बढ़िया धान का भी आधा भाग भूसी में निकल जाता है, लोभिया आदि अनाजों में तीसरा हिस्सा चोकर का निकल जाता है। काकुन में प्रायः आधा हिस्सा भूसी निकल जाती है, किन्तु कभी-कभी उसका नवां हिस्सा भी बढ़ जाता है। मोटे चावल में आधा ही भाग बन पाता है, जौ और गेहूं में कूटने पर छीजन नहीं आती है।

(२५) तिल, जौ, मूंग और उड़द भी दलने पर बराबर बने रहते हैं गेहूं और भुने हुए जौ पीसने पर प चमांश बढ़ जाते हैं। मटर पीसने पर चौथाई हिस्सा कम हो जाती है। पीसने पर मूंग और उड़द का आठवां हिस्सा कम हो जाता है। ज्वार की फलियों में आधा चोकर निकल जाता है। दलने पर मसूर का तीसरा हिस्सा कम हो जाता है।

(२६) पिसे हुए कच्चे गेहूं तथा मूंग और उड़द आदि पकाये जाने पर ड्योढ़े हो जाते हैं। पकाये जाने पर चालव और सूजी दुगुने हो जाते हैं।

(२७) कोदों, लोभिया, उदारक और कांगनी पकाये जाने पर तिगुने हो जाते हैं। पकाये जाने पर विर जफूल चावल और बासमती पंचगुने हो जाते हैं। खेत से अधकच्ची हालत में काटा गया अन्न और ब्रीहि धान पकाने पर दुगुने ही बढ़ पाते हैं। उन्हें कुछ अच्छी अवस्था में खेत से काटा जाये तो वे ढ़ाई गुना भी बढ़ सकते हैं।

(२८) यदि वे भूने जायें तो उनका पंचमांश बढ़ जाता है। भुने हुए मटर, धान और जौ दुगुने हो जाते हैं। पेरने पर अलसी में छठा भाग ही तेल निकलता है। निंबौरी, कुशा, आम की गुठली और कैथे में पांचवां हिस्सा ही तेल निकलता है। तिल, कुसुम्भ, महुआ और इंगुदी में चौथा हिस्सा ही तेल निकलता है।

(२९) पांच पल कपास और रेशम में एक पल सूत तैयार होता है।

(३०) पांच द्रोण (१० आढक) धान में से कूट-छानकर जब बारह आढ़क चावल शेष रह जाता है तो वह हाथी के बच्चों के खाने योग्य होता है। वही बीस आढ़क धान अधिक साफ कर देने पर जब ग्यारह आढक बचा रह जाये तो उन्मत्त हाथियों के खाने योग्य; जब दसवां हिस्सा रह जाये तो राज-सवारी के हाथियों के खाने योग्य; जब नवां हिस्सा रह जाये तो युद्धोपयोगी हाथियों के खाने योग्य, आठवां हिस्सा रह जाये तो पैदल सेना के भोजन योग्य; जब सातवां हिस्सा रह जाये तो प्रधान सेनापति के योग्य; जब छठा हिस्सा रह जाये तो रानियों एवं राजकुमारों के भोजन योग्य और जब साफ करते करते बीस आढक में से पाँच आढ़क ही बचा रह जाये तो वह राजाओं के भोजन योग्य होता है। अथवा उस बीस आढक में से साफ ओर साबूत एक प्रस्थ दाना निकालकर राजा के उपयोग के लिए लेना चाहिये।

(३१) प्रस्थ का चौथा हिस्सा दाल, दाल का सोलहवां हिस्सा नमक, दाल का चौथा हिस्सा घी या तेल, इतना एक आर्य क भोजन-सामग्री है। छोटी स्थिति के नौकरों के लिए प्रस्थ का षष्ठमांश दाल, प्रस्थ का अष्टमांश घी या तेल और बाकी सामग्री पहले जैसी होनी चाहिये। उसमें चौथाई भाग कम स्त्रियों के लिए और उसका आधा हिस्सा सामान बालकों के लिए होना चाहिये।

(३२) मांस पकाने के लिए बीस पल मांस में आधी कुडुव घी या तेल, एक पल नमक या नमक की जगह एक पल सज्जीखार या जवाखार, दो धरण मसाला, और आधा प्रस्थ दही डालना चाहिये।

(३३) इससे कम-ज्यादा मांस पकाना हो तो उक्त अनुमान से ही उसमें सामान डालना चाहिये। हरे शाक में, मांस के लिए ऊपर जो अनुपात बताया गया है, उसकी ड्योढ़ी मात्रा उपयोग में लानी चाहिये। सूखे शाक अथवा सूखे मांस में वही सामग्री दुगुनी करके डालनी चाहिये।

(३४) हाथी और घोड़े की खुराक का वर्णन आगे चलकर 'अश्वाध्यक्ष' तथा 'हस्त्यध्यक्ष' प्रकरण में किया जायेगा। बैलों के लिए एक द्रोण उड़द तथा उतने ही अध उबले जौ देने चाहियें। बाकी खुराक उनकी घोड़ों की खुराक जैसी है। घोड़ों की अपेक्षा बैलों को सूखे तिलों के कल्क के सौ पल और दस आढक चावलों की बनी भूसी अधिक देनी चाहिये।

(३५) भैंसों और ऊँटों के लिए बैलों से दुगुनी खुराक होनी चाहिये। गधा और हिरणों को वही सामग्री आधा द्रोण (दो आढ़क) देनी चाहिये। एण और कुरंग जाति के हिरणों को वही भोजन एक आढ़क देना चाहिये। वही खुराक बकरी भेड़ तथा सूअरों को आधा आढक; अथवा चावल की कनकी और भूसी मिलाकर एक आढक खुराक देनी चाहिये। कुत्तों को एक प्रस्थ भात देना चाहिये। हंस, क्रोंच और मोरों की आधा प्रस्थ खुराक है। इनके अतिरिक्त जंगली या पालतू जितने भी पशु पक्षी हैं, उनको एक दिन खिलाकर, उसी अनुपात से उनकी खुराक निर्धारित कर लेनी चाहिये।

(३६) कोयला, चोकर और भूसी आदि सामग्री लुहारों तथा मकान पोतने वालों को दे देनी चाहिये। चावलों की कनकी क्रीतदासों, दूसरे कर्मकरो तथा रसाइयों को दे देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जो कुछ बचे, वह साधारण अन्न पकाने वालों तथा पकवान बनाने वाले नौकरों में वितरित कर देनी चाहिये।

(३७) भोजनालय में नियमित रूप से उपयोग में आनेवाली सामग्री की तालिका इस प्रकार है : तराजू, बाट, चक्की, सिल-लोढा, मूसल, ओखली, धान कूटने का मूसल, आटा पीसने की चक्की, सूप, छलनी, कड़ी, पिटारी और झाड़ू।

(३८) झाड़ू लगाने वाला, कोष्ठागार कर रक्षक, तोलने वाला, तुलवाने वाला अधिकारी, सामान देने वाला, देने वाला अधिकारी, बोझ उठाने वाला, क्रीतदास और चाकर, ये सब विष्टि कहलाते हैं।

(३९) अनाज को जमीन के स्पर्श से ऊपर रखना चाहिये, गुड़ और राब आदि चीजें ऐसी जगह रखनी चाहिए, जहां सील न पहुंच सके; घी और तेल के रखने के लिए म तदान या लकड़ी के पात्र होने चाहिये और नमक को जमीन पर किसी बर्तन पर रख लेना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में कोष्ठागाराध्यक्ष नामक पन्द्रहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १६

पण्याध्यक्षः

(१) पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथवारिपथोपयातानां सारफल्वर्घान्तरं प्रियाप्रियता च विद्यात्। तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान्।

(२) यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्तदेकीकृत्यार्घमारोपयेत्। प्राप्ते र्घे वार्घान्तरं कारयेत्।

(३) स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत्, परभूमिजानामनेकमुखम्। उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत्। स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत्। अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत्।

(४) बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः, कृतार्घं विक्रीणीरन्। छेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः।

(५) षोडशभागो मानव्याजी। विंशतिभागस्तुलामानम्। गण्यपण्यानामेकादशभागः।

(६) परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत्। नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात्। अनभियोगश्चार्थिष्वागन्तूनामन्यत्र- सभ्योपकारिभ्यः।

(७) पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापिधानायां निदध्युः। अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्पयेयुः इदं विक्रीतमिदं शेषमिति। तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः। इति स्वविषये व्याख्यातम्।

(८) परविषये तु—पण्यप्रतिपण्ययोरर्घं मूल्यं च आगमय्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्त-भाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत्। असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत्। ततः सारपादेन स्थल-व्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम्।

(९) आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत्। आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत्।

(१०) वारिपथे च यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तन-चारित्राण्युपलभेत्।

(११) नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः।
यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे पण्याध्यक्षो नाम षोडशो ध्यायः, आदितः षट्त्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) पण्य के अध्यक्ष को चाहिये कि वह स्थल-जल में उत्पन्न तथा स्थल-जलमार्ग से बिक्री के लिये आई हुई अनेक प्रकार की बहुमूल्य एवं अल्पमूल्य वस्तुओं के तारमत्य और उनकी लोकप्रियता तथा अप्रियता आदि के सम्बन्ध में अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करे। उसको इस बात का भी पता होना चाहिये कि कम चीज को बढ़ाने, बढ़ी हुई को घटाने, बेची जाने योग्य वस्तु को खरीदने एवं खरीदी हुई वस्तु को बेच देने का उपयुक्त समय कौन है।

(२) जो विक्रेय वस्तु अधिक तादात में उपलब्ध हो, पण्याध्यक्ष को चाहिये कि उसे एकत्र कर व्यापार-कौशल से पहिले तो उसका दाम बढ़ा दे और जब समझ ले कि उसमें उचित लाभ

हो गया है तो फिर उसका भाव कम करके उसको बेचे।

(३) अपने राज्य में उत्पन्न सरकारी वस्तुओं की बिक्री का प्रबन्ध एक ही जगह किसी नियत स्थान पर करना चाहिये। दूसरे देश में उत्पन्न वस्तुओं का विक्रय अनेक स्थानों में करना चाहिये। स्वदेश और परदेश की वस्तुओं की बिक्री का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो। यदि किसी वस्तु में अधिक लाभ की संभावना हो, किन्तु उससे प्रजा को कष्ट पहुंचता हो, तो राजा को वह कार्य तत्काल रुकवा देना चाहिये। जल्दी ही बिक जाने योग्य वस्तुओं को रोके रखना अथवा उनको बेचने का ठेका किसी एक व्यक्ति को देकर पुनः लोभवश वह ठेका दूसरे को देना, सर्वथा अनुचित है।

(४) अनेक स्थानों पर बिकने वाली राजकीय वस्तुओं को सभी व्यापारी एक ही भाव से बेचें। यदि बेचते-बेचते मूल्य में कुछ कमी हो जाये तो उस कमी को व्यापारी ही पूरा करें।

(५) गोदाम में सुरक्षित माल का सोलहवां भाग कर रूप में राजा को देना चाहिये, उसे व्याजी या मानव्याजी कहा जाता है। तौले जाने वाले माल का बीसवां भाग और गिने जाने वाले माल का ग्यारहवां भाग राजा के लिए कर में देना चाहिये।

(६) विदेशी माल को मंगाने में कर आदि की कुछ रियायत होनी चाहिये। नाव तथा जहाज आदि से माल मंगाने वाले व्यापारियों पर राजकर की छूट होनी चाहिये। विदेश से आये व्यापारियों को भी राजा बिना ही अभियोग के ऋण देने की व्यवस्था करे; किन्तु विदेशी व्यापारियों के सहयोगियों पर अभियोग होना चाहिये।

(७) राजकीय वस्तुओं को बेचने वाले व्यापारी, सायंकाल बाठवें पहर में पण्याध्यक्ष के पास बिक्री का सब रुपया, लकड़ी की एक बन्द संदूकची में रखकर उपस्थित हों, और बतायें कि इतना माल बिक गया है तथा इतना बाकी है। माप तौल के बाटों को भी पण्याध्यक्ष के सुपुर्द कर दें। यहां तक अपने राज्य की विक्रेय वस्तुओं के सम्बन्ध में कहा गया है।

(८) परदेश में किसी रीति से व्यापार किया जाता है, उसका विधान इस प्रकार है : निर्यात-व्यापार के सम्बन्ध में पण्याध्यक्ष को पहली बात तो यह समझनी चाहिये कि स्वदेश तथा विदेश में बेची जाने वाली किन चीजों के मूल्य में परस्पर न्यूनाधिक्य है; इसके अतिरिक्त बिक्री कर, सीमांत अधिकारी का टैक्स, सुरक्षा के लिए पुलिस को मांगकर, जंगल के रक्षक का कर, नदी पार करने का कर, अपने भोजनादि का व्यय और भाड़ा आदि निकाल कर कितना बच सकेगा; इस पर भी विचार करे। इस प्रकार हिसाब लगाने पर कुछ बचत न दीख पड़े तो अपने माल को विदेश में ले जाकर, भविष्य में लाभ की प्रतीक्षा करते हुए, उसके विक्रय की व्यवस्था करे; अथवा अपने माल से वहां के लोकप्रिय माल को बदल कर उस रूप में अपने लाभ की बात सोचे। यदि विचारित योजना सफल होती दिखाई दे तो लाभ का चौथा भाग व्यय करके सुरक्षित स्थल मार्ग के द्वारा व्यापार करना आरम्भ कर दे। जंगल तथा सीमा के रक्षकों से, नगर-प्रधान और राष्ट्र के प्रतिष्ठित पुरुषों से घनिष्ठता बढ़ानी चाहिये, जिससे कि व्यापार में कोई बाधा न आने पावे।

(९) विदेश में व्यापार करते हुए यदि आपत्ति आ पड़े तो सर्वप्रथम रत्नों की और अपनी रक्षा करनी चाहिये। यदि दोनों की रक्षा संभव न हों तो रत्नों का लोभ छोड़ कर वह अपने को बचाये। जब तक वह अपने देश में न लौट आये तब तक वहाँ के जो सरकारी टैक्स हों उनको नियमपूर्वक अदा करते हुए अपने व्यापार को संभाले रखे।

(१०) जन-मार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारी को यानभाटक, पथ्यदन, पण्य तथा प्रतिपण्य के मूल का प्रमाण, यात्राकाल, भयप्रतीकार और गंतव्य देश के आचार-व्यवहारों की जानकारी आदि के सम्बन्ध में बारीकी से विचार करने के अनन्तर ही यात्रा करनी चाहिये।

(११) इसी प्रकार नदी मार्ग के सम्बन्ध में भी उक्त बातों को ध्यान में रखकर, गंतव्य देश के आचार-विचार, चरित्र आदि का ज्ञान प्राप्त कर, जिस मार्ग से अधिक लाभ की संभावना हो उसी का अनुसरण करे; जहां लाभ की आशा न हो, और कष्ट भी अधिक मिले, उस मार्ग को छोड़ देना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में पण्याध्याक्ष नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १७

कुप्याध्यक्षः

---

(१) कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत्। द्रव्यवनकर्मान्तांश्च प्रयोजयेत् द्रव्यवनच्छिदां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः।

(२) कुप्यवर्गः — शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिंशपारिमेदराजादनशिरीषखदिर-सरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवल्ककशाम्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः।

(३) उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः।

(४) वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लीवर्गः।

(५) मालतीमूर्वार्कशणगवेयुकातस्यादिर्वल्कवर्गः।

(६) मु जबल्बजादि रज्जुभाण्डम्। तालीतालभूर्जानां पत्रम्। किंशुककुसुम्भकुङ्कुमानां पुष्पम्।

(७) कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः।

(८) कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषश ङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितकगौरार्द्रबालकमार्कटहैमवत-कालिङ्कदारदकाङ्कोलसारकोष्ट्रकादीनि विषाणि।

(९) सर्पाः कीटाश्च। त एव कुम्भगताः। विषवर्गः।

(१०) गोधासेरकद्वीपिशिंशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरस मरखड्गगोम गगवयानां चर्मास्थिपित्त-स्नाय्वस्थिदन्तश ङ्गखुरपुच्छानि अन्येषां वापि म गपशुपक्षिव्यालानाम्।

(११) कालायसताम्रव त्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि।

(१२) विदलम तिकामयं भाण्डम्।

(१३) अङ्गारतुषभस्मानि म गपशुपक्षिव्यालवाटाः काष्ठत णवाटाश्चेति।

(१४) बहिरन्तरश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः।

आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविना।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे कुप्याध्यक्षो नाम सप्तदशो ध्यायः, आदितोः सप्तत्रिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कुप्य के अध्यक्ष को चाहिये कि वह जंगल की रक्षा में नियुक्त पुरुषों द्वारा बढ़िया-बढ़िया लकड़ी मंगवाये। लकड़ी से बनने योग्य दूसरे कार्यों को भी वही करवाये। लकड़ी काटकर जीविकोपार्जन करने वाले लोगों को वह वेतन पर नियुक्त कर ले और आज्ञा का उल्लंघन करने पर उनके लिए दण्ड भी निर्धारित कर ले; किन्तु किसी आपत्ति के कारण कार्य में विघ्न उपस्थित हो जाये तो उन्हें दण्ड न दिया जाये।

(२) कुप्यवर्ग में सर्वप्रथम सारदारु वर्ग का निरूपण किया जाता है : शाक, तिनिश, धन्वस, अर्जुन, मधुक, तिलक, साल, शिशपा, अरिमेद, राजावन, शिरीष, खदिर, सरल, ताल, सर्ज, अश्वकर्ण, सोमबल्क, कश, आम, प्रिय, धव आदि सर्वोत्तम लकड़ी सारदारुवर्ग के अन्तर्गत हैं।

(३) उटज, चिमिय, चाप, वेणु, वंश, सातीन, कंटक और भाल्लुक, ये सब बाँसों के भेद हैं।

(४) वेत्र, शीकबल्ली, वाशी, श्यामलता, नागलता आदि सब लताओं के भेद हैं।

(५) मालती, मूर्वा, अर्क, शण, गवेयुका और अतसी, आदि वल्कवर्ग के हैं।

(६) मुंज, बल्वज, ये रज्जु, अर्थात् रस्सी बनाने की घासें हैं। ताली, ताल, भूर्ज, इनका पत्ता लिखने के काम में आता है। किंशुक, कुसुम्भ और कुंकुम से सब वस्त्र आदि रंगने के साधन हैं।

(७) कंद, मूल और फल ये सब औषधिवर्ग हैं।

(८) कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, मेषश ंग, मुस्ता, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गोरार्द्र, बालक, मार्कट, हैमवत, कलिंगक, दारदक, अङ्कोलसारक और उष्ट्रक इत्यादि सब विष हैं।

(९) धारीदार सांप, मेंढक तथा छिपकल आदि की शीशे के घड़े में बन्द करके आगे आने वाले 'औपनिषदिक' प्रकरण में लिखी गई विधि के अनुसार जब संस्कार किया जाता है तो वह भी विष बन जाते हैं।

(१०) गोधा, सेरक, द्वीपी, शिंशुमार, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, चमरगाय, सांभर, गैंडा, गाय, हरिण और नीलगाय इनकी खाल, हड्डी, दाँत पित्ता, नसें, सींग, खुर और पूंछ आदि सभी उपयोग में आने वाली चीजें संग्रह-योग्य हैं; इनके अतिरिक्त अन्य म ग, पशु-पक्षी, सांप आदि जानवरों के चर्म का भी संग्रह करना चाहिये।

(११) काला लोहा, तांबा, कांसा, शीशा, रांगा, इस्पात और पीतल, ये सब लोहे के भेद हैं।

(१२) पात्र दो प्रकार के होते हैं एक विदलमय (पिटारी, टोकरी आदि) और दूसरे म तिकामय (घड़े, शकोरे आदि)।

(१३) कोयला, राख, म ग, पशु-पक्षी तथा अन्य जंगली जानवर, लकड़ी और घास-फूस आदि का ढेर भी कुप्य होने के कारण संग्रह-योग्य है।

(१४) कुप्य के अध्यक्ष को और उसके सहायकों को चाहिये कि वे बाहर जंगलों के पास जनपद और दुर्ग आदि में गाड़ा तथा लकड़ी आदि से बनी हुई चीजों या सवारियों, सब तरह के बर्तन आदि को और अपनी आजीविका तथा नगर, जनपद की रक्षा के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं का भी संग्रह करे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में कुप्याध्यक्ष सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय १८

आयुधागाराध्यक्षः

(१) आयुधागाराध्यक्षः साङ्ग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिघातिकं चक्रयन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत्। स्वभूमौ च स्थापयेत्। स्थानपरिर्वनमातपप्रवातप्रदानं च बहुशः कुर्यात्। ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभि-रुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत्। जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यानिक्षेपैश्चोपलभेत।

(२) सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसङ्घाटीयानकपर्जन्यकबाहूर्ध्वबाह्वार्धबाहूनि स्थितयन्त्राणि।

(३) प चालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालव न्तमुद्गरद्रुघणगदास्प क्तलाकुद्दाला-स्फोटिमोद्घाटिमोत्पाटिम शतघ्नीत्रिशूलचक्राणिचलयन्त्राणि।

(४) शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणपकर्पणत्रासिकादीनि च हलमुखानि।

(५) तालचापदारवशाङ्र्गाणि कार्मुककोदण्डद्रुणा धनूंषि।

(६) मूर्वार्कशणगवेधुवेणुस्नायूनि ज्याः।

(७) वेणुशरशलाकादण्डासननाराचाश्च इषवः। तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवानि।

(८) निर्स्त्रिशमण्डलाग्रासियष्टयः खड्गाः। खड्गमहिषवारणविषाणदारुवेणुमूलानि त्सरवः।

(६) परशुकुठारपट्टसखनित्रकुद्दालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुरकल्पाः।

(१०) यन्त्रगोष्पणमुष्टिपाषाणरोचनीद षदश्चायुधानि।

(११) लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रकङ्कणशिंशुमारकखड्गधेनुकहस्तिगोचर्मखुरश्र ङ्गसंघातं वर्माणि। शिरस्त्राणकण्ठ- त्राणकूर्पासक चुकवारवाणपट्टनागौदरिकाः। पेटीचर्महस्तिकर्णताल-मूलधमनिकाकवाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्चावरणानि।

(१२) हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालङ्कारिकं सन्नाहकल्पनाश्चोपकरणानि। ऐन्द्रजालिक-मौपनिषदिकं च कर्म।

(१३) कर्मान्तानां च,

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्यमम्।

क्षयव्ययौ च जानीयात् कुप्यानामायुधेश्वरः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे आयुधागांराध्यक्षो नाम अष्टादशो ध्यायः; आदितो ष्टचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) आयुधागार के अध्यक्ष को चाहिये कि वह, युद्धोपयोगी सामग्री तैयार करने वाले कारीगरों एवं कुशल शिल्पियों के द्वारा युद्ध में काम देने वाले, दुर्ग की रक्षा के योग्य शत्रु के नगर को विध्वंश कर देने वाले सर्वतोभद्र, जामदग्न्य आदि यन्त्र, शक्ति, धनुष आदि हथियार कवच और सवारी आदि जितने भी साधन हैं, उनका निर्माण करवाये; उन कारीगरों से कितने समय में कितनी मजदूरी देकर कितना काम कराया जाये इत्यादि बातों को वह पहले ही से निश्चित कर ले। तैयार हुए सामान को उसके उपयुक्त स्थान में रखवा दिया जाये अथवा अपने ही

कब्जे में रखा जाये। अध्यक्ष को चाहिये कि जिससे समान पर जंक आदि न लगे, उसको धूप-हवा दिखाता रहे, गर्मी, सील और घुन आदि के कारण जो हथियार खराब हो रहे हों उन्हें वहां से उठवा कर किसी ऐसे स्थान में रखवा दे, कि वे अधिक खराब न होने पावें, उन हथियारों के जाति स्वरूप, लक्षण, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई प्राप्तिस्थान मूल्य और उपयुक्त स्थान आदि के सम्बन्ध में प्रत्येक बात को अच्छी तरह से समझ-बूझ ले।

(२) दस प्रकार के स्थितयंत्र होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है : १. सर्वतोभद्र, २. जामदग्न्य, ३. बहुमुख, ४. विश्वासघाती, ५. संघाटि, ६. यानक, ७. पर्जन्यक, ८. बाहुयन्त्र, ६. ऊर्ध्वबाहु और १०. अर्धबाहु।

(३) चलयंत्र भी अनेक हैं, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है : १. पा चलिक, २. देवदण्ड, ३. सूकरिका, ४. मुसलयष्टि, ५. हस्तिवारक, ६. तालव न्त, ७. मुद्गर, ८. द्रुघण, ६. गदा, १०. स्प क्तला, ११. कुद्दाल, १२. आरस्फोटिम, १३. उद्घाटिम, १४. उत्पाटिम, शतघ्नी, १५. त्रिशूल और १६. चक्र, ये सोलह प्रकार के चलयन्त्र होते हैं।

(४) हलमुख (भाले की तरह) हथियारों के नाम इस प्रकार हैं : १. शक्ति, २ प्रास, ३. कुंत, ४. हाटक, ५. भिण्डिपाल, ६. शूल, ७. तोमर, ८. वराहकर्ण, ६. कणप, १०. कर्पण, ११. त्रासिका, ये सब हथियार हलमुख कहलाते हैं, क्योंकि इन सभी का अग्रभाग हल के अग्रभाग की तरह तेज होता है।

(५) धनुष चार प्रकार से बनाये जाते हैं : १. ताल, २. चाप, ३. दारव, ४. शाङ्‍र्ग; आकृति और क्रिया-भेद से इनके कार्मुक, कोदण्ड और द्रूण आदि नाम हैं।

(६) मूर्वा, आख सन, गबेधुकावेणु ओर ताँत; इनसे मजबूत धनुष की डोरी बनती है।

(७) बाण के भी अनेक भेद हैं, जिनके प्रकार हैं : १. वेणु, २. शर, ३. शालाका, ४. दण्डासन, और ५. नाराच। इन बाणों के अग्रभाग में लोहे, हड्‌डी तथा मजबूत लकड़ी की बनी नोक छेदने, काटने, आघात पहुंचाने वाला रक्तसहित एवं रक्तरहित घाव करने के लिए लगी रहती है।

(८) खड्ग तीन प्रकार के होते हैं : १. निर्स्त्रिश, २. मण्डलाग्र, और ३. असियष्टि। खड्ग के लिए गैंडा, भैंस की सींग, हाथीदांत, मजबूत लकड़ी और बांस की जड़ की मूठ बनवानी चाहिये।

(६) फरसा, कुल्हाड़ा, द्विमुखी त्रिशूल, फावड़ा, कुदाल, आरा और गंडासा; ये सब छुरे की धार की भाँति तेज होने के कारण क्षुरकल्प या क्षुरवर्ग के हथियार कहलाते हैं।

(१०) यन्त्रपाषाण, गोष्फणपाषाण, मुष्टिपाषाण, रोचनी और द षद्; ये सब आयुध कहलाते हैं।

(११) कवच छह प्रकार से बनाये जाते हैं, जिनके तरीके इस प्रकार हैं : १. लोहजाल, २. लोहजालिका, ३. लोहपट्ट, ४. लोहकवच, ५. सूत्रकंकण, और ६. मछली, गैंडा, नीलगाय, हाथी तथा बैल, इन पाँचों के चमड़े, खुर एवं सींगों को मिलाकर बनाया हुआ कवच। इनके अतिरिक्त शिरस्त्राण, कंठत्राण, कूर्पास, कंचुक, वारवाण, पट्ट, नागोदरिका; ये सात प्रकार के आवरण देह पर धारण किये जाने योग्य हैं। चमड़े की पेटी, मुंह ढकने का आवरण, लकड़ी की पेटी, सूत की पेटी, लकड़ी का पट्टा, चमड़ा एवं बांस को कूट कर बनाई गई पेटी, पूरे हाथों को ढकने वाला आवरण और किनारों पर लोहे के पत्तों से बँधा आवरण; आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

(१२) हाथी, घोड़ा, रथ आदि को शिक्षा एवं सजावट के साधन; अंकुश, कोड़े, पताका, कवच और शरीर की रक्षा करने वाले अन्य आवरण; ये सब उपकरण कहलाते हैं। ऐन्द्रजालिक और औपनिषदिक आदि जादू एवं प्रयोग-क्रियायें भी उपकरण कहलाती हैं।

(१३) कुप्य के अध्यक्ष को चाहिये कि वह पिछले दो अध्यायों में निर्दिष्ट द्रव्य-व्यापारों से सम्बद्ध

कार्यों का आरम्भ एवं उनकी समाप्ति राजा की इच्छा तथा रुचि के अनुसार ही करे; उन विषयों ओर कार्यों की उपयोगिता तथा हानि-लाभ को भी वह भली-भाँति समझे; आयुधागार के अध्यक्ष के लिए भी इन बातों का जानना आवश्यक है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में आयुधागाध्यक्ष्य नामक अठारहवां अध्याय समाप्त।

अध्याय १६

तुलामानपौतवम्

(१) पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान् कारयेत्।

(२) धान्यमाषा दश सुवर्णमाषकः। प च वा गु जाः। ते षोडश सुवर्णः कर्षो वा। चतुष्कर्षं पलम्।

(३) अष्टाशीतिगौर्रसर्षपा रूप्यमाषकः। ते षोड्श धरणम्। शैम्ब्यानि वा विंशतिः।

(४) विंशतितण्डुलं वज्रधरणम्।

(५) अर्धमाषकः, माषकः, द्वौ, चत्वारः, अष्टौ माषकाः, सुवर्णो, द्वौ, चत्वारः, अष्टौ सुवर्णाः, दश, विंशतिः, चत्वारिंशत्, शतमिति।

(६) तेन धरणानि व्याख्यातानि।

(७) प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि, यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां व द्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा ह्रासम्।

(८) षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तराः दश तुलाः कारयेल्लोहपलादूर्ध्वकपलोत्तराः। यन्त्रमुभयतः। शिक्यं वा।

(९) प चविंशत्पललोहां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समव त्तां कारयेत्। तस्याः प चपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत्। ततः कर्षोत्तरं पलं, पलोत्तरं दशपलं, द्वादश प चदश विंशतिरिति पदानि कारयेत्। तत आ शताद् दशोत्तरं कारयेत्। अक्षेषु नद्ध्रीपिनद्धं कारयेत्।

(१०) द्विगुणलोहां तुलामतः षण्णवत्यङ्गुलायामां परिमाणीं कारयेत्। तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः, प चाशत्, शतमिति पदानि कारयेत्।

(११) विंशतितौलिको भारः।

(१२) दशधरणिकं पलम्। तत्पलशतमायमानी।

(१३) प चपलावरा व्यावहारिकी भाजन्यन्तःपुरभाजनी च।

(१४) तासामर्धधरणावरं पलम्। द्विपलावरमुत्तरलोहम्। षडङ्गुलावराश्चायामाः।

(१५) पूर्वयोः प चपलिकः प्रयामो मांसलोहलवणमणिवर्जम्।

(१६) काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठाना।

(१७) काष्ठप चविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम्। एष प्रदेशो बह्वल्पयोः।

(१८) इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम्।

(१९) अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम्। सप्ताशीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम्। प चसप्ततिपलशतं भाजनीयम्। द्विषष्टिपलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम्।

(२०) तेषामाढकप्रस्थकुडवाश्चकुडवाश्चतुर्भागावराः।

(२१) षोडशद्रोणा खारी, विंशतिद्रोणिकः कुम्भः, कुम्भैर्दशभिर्वहः।

(२२) शुष्कसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत्। अन्तःशिखं वा। रसस्य तु।

(२३) सुरायाः पुष्पफलयोः तुषाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा व द्धिः।

(२४) सपादपणो द्रोणमूल्यम्। आढकस्य पादोनः। षण्माषकाः प्रस्थस्य। माषकः कुडवस्य।

(२५) द्विगुणं रसादीनां मानमूल्यम्।

(२६) विंशतिपणाः प्रतिमानस्य। तुलामूल्यं त्रिभागः।

(२७) चातुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत्। अप्रतिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः। प्रातिवेधनिकं काकणिकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः।

(२८) द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुःषष्टिभागस्तैलस्य। प चाशद्भागो मानस्रावो द्रवाणाम्।

(२९) कुडवार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत्।

(३०) कुडवाश्चतुराशीतिर्वारकः सर्पिषो मतः।
चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकानयोः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे तुलामानपौतवं नामैकोनविंशो ध्यायः, आदित एकोनचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) पौतवाध्यक्ष (तोल-माप की जाचं करने वाला सरकारी अफसर) को चाहिये कि वह शास्त्रोक्त विधि से तोलने-मापने के साधन तराजू, बाट आदि बनवाये।

(२) इस उड़द के दाने अथवा पांच रत्ती परिमाण का एक सुवर्णमाषक होता है। सोलह माष का एक सुवर्ण या एक कर्ष होता है। चार कर्ष का एक पल होता है; अर्थात् :

१० उर्द के दाने या ५ रत्ती	=	१ सुवर्णमापक
१६ माष	=	१ सुवर्ण या १ कर्ष
४ कर्ष	=	१ पल

(३) अठ्ठासी सफेद सरसों परिमाण का एक रूप्यमापक होता है। सोलह रूप्यमापक या बीस मूली के बीच परिमाण का एक धरण होता है; जैसे-

८८ सफेद सरसों	=	१ रूप्यमाषक
१६ रूप्यमाषक या २० मूली के बीज	=	१ धरण

(४) बीस चावल परिमाण का एक वज्रधरण होता है :

२० चावल	=	वज्रधरण

(५) तोलने के बाटों का निर्माण इस क्रम से होना चाहिये : आधा माषक, माषक, दो माषक, चार माषक, आठा माषक, सुवर्ण, दो सुवर्ण, चार सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस सुवर्ण, बीस सुवर्ण, तीस सुवर्ण, चालीस सुवर्ण, सौ सुवर्ण, सोना तोलने के लिए ये १४ बाट होने चाहिये।

(६) इसी क्रम में चाँदी तोलने के लिए धरण एवं रूप्यमाषक बाटों का भी निर्माण करवाना चाहिये; अर्थात् धरण, दो धरण, चार धरण, आठ धरण, दस धरण, बीस धरण, तीस धरण, चालीस धरण और सौ धरण, एवं अर्ध माषक, माषक, दो माषक, चार माषक, आठ माषक, आदि १४ बाटों का क्रम है।

(७) तौलने के बाट लोहे के बनने चाहियें या मगध तथा मेकल देश के पत्थर के होने चाहियें; या ऐसी वस्तुओं के बनने चाहिये, जो पानी पड़ने तथा लेप लगने से वजनी न हो जायें और गर्मी के प्रभाव से हल्के न पड़ जायें

(८) सोना-चाँदी तोलने के लिये छोटी-बड़ी दस तुलायें बनवानी चाहिये, जिनका क्रम इस प्रकार है : १. छह अंगुल की, २. चौदह अंगुल की, ३. बाईस अंगुल की, ४. तीस अंगुल की, ५. अड़तीस अंगुल की, ६. छियालीस अंगुल की, ७. चौवन अंगुल की, ८. बासठ अंगुल की, ६. सत्तर अंगुल की और १०. अठहत्तर अंगुल की; उनका वजन क्रमशः एक पल से १० पल तक होना चाहिये, उनके दोनों ओर पलड़े लगे होने चाहियें।

(६) सोना-चाँदी के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों को तोलने के लिए जो तुलाएं बनवायी जाये, उनका आकार-प्रकार इस तरह होना चाहिये; पैंतीस पल लोहे से बनी हुई, तीन हााथ लम्बी समव त्ता (गोलाकार) नामक तुला अन्य पदार्थों को तोलने के लिये बनवानी चाहिये। उसके बीच में पांच पल का कांटा लगवाकर ठीक मध्य में एक चिह्न भी करवा देना चाहिये। उसके बाद कांटे की गोलाकार परिधि में उस चिह्न से क्रमशः एक कर्ष, दो कर्ष, तीन कर्ष, चार कर्ष, एक पल, दो पल, इस प्रकार दस पल तक; दस पल के बाद बारह पल, पन्द्रह पल और बीस पल के चिह्न लगवाये जायें। फिर बीस पल के आगे दस-दस पल का अन्तर देकर सौ पल तक के चिह्न होने चाहियें। प्रत्येक पांच पल के बाद, मोटी जानकारी के लिये, लम्बी रेखा बनवा देनी चाहिये।

(१०) उक्त समव त्ता तुला से दुगुने लोहे से बनी छियानवे अंगुल लम्बी तुला का नाम परिमाणी है। उस पर भी समव्‌ त्ता तुला के ही अनुसार सौ पल तक चिह्न लगाने के बाद एक सौ बीस, एक सौ पच्ची और दो सौ पल तक के चिह्न लगने चाहिये।

(११) सौ पल परिमाण की एक तुला और बीस तुला परिमाण का एक भार होता है, यथा :

१०० पल	=	१ तुला
२० तुला	=	१ भार

(१२) दस धरणि का एक पल और सौ पल परिमाण की आयमानी नामक तुला होती है, आयमानी अर्थात् आमदनी की वस्तुओं को तोलने वाली तुला। जैसे :

१०० धरणि	=	१ पल
१०० पल	=	१ आयमानी

(१३) आयमानी से पांच पल कम (६५ पल) परिमाण की तुला का नाम व्यावहारिकी है, उसमें पांच पल कम (६० पल) की तुला का नाम भाजनी, ओर उससे भी पांच पल कम (८५ पल) परिमाण की तुला का नाम अन्तःपुरभाजनी है, अर्थात्

६५ पल	=	१ व्यावहारिकी
६० पल	=	१ भाजनी
८५ पल	=	१ अन्तःपुरभाजनी

(१४) व्यावहारिकी, भाजनी और अन्तःपुरभाजनी, इन तीनों तुलाओं में उत्तरोत्तर आधा-आधा धरण कम हो जाता है। अर्थात् आयमानी तुला के दस धरण का एक पल होता है तो व्यावहारिकी का ६१/२ धरण का एक पल भाजनी का ६ धरण का एक पल और अन्तःपुरभाजनी का ८१/२ धरण का एक पल होना चाहिये। इसी प्रकार इन तुलाओं के बनाने में लोहा भी उत्तरोत्तर दो-दो पल कम लगना चाहिये, अर्थात् आयमानी तुला यदि पैंतीस पल लोहे की बनाई जाये तो व्यावहारिकी तुला पैंतीस पल की, भाजनी इकत्तीस पल की, और अन्तःपुरभाजनी उनतीस पल की बनायी जाये। इनकी लम्बाई भी पूर्वोपेक्षया उत्तरोत्तर छः-छः अंगुल कम होनी चाहिये, यदि आयमानी तुला बहत्तर अंगुल लम्बी बनाई जाये तो व्यावहारिकी छियासठ अंगुल की, भाजनी साठ अंगुल की और अन्तःपुरभाजनी चौवन अंगुल की ही हो।

(१५) परिमाणी और आयमानी तुलाओं में मांस, लोहा, नमक और मणियों को छोड़ कर अन्य वस्तुओं को तोलने पर पांच पल अधिक तोला जाता है, इसी को प्रयाम कहते हैं।

(१६) लकड़ी की तुला आठ हाथ की होनी चाहिये, जिसमें एक, दो, तीन आदि गिनती के चिह्न बने होने चाहिये, इसके बाट पत्थर के और इसका आकार मोर के पैरों जैसा होना चाहिये।

(१७) एक प्रस्थ चावलों को पकाने के लिए पच्चीस पल लकड़ी पर्याप्त हैं। इसी हिसाब से कम ज्यादा लकड़ी का उपयोग करना चाहिये।

(१८) यहां तक सोलह प्रकार की तुलायें और चौदह प्रकार के बाटों का निरुपण किया गया है।

(१९) इसके आगे द्रोण, आढक आदि मापने के साधनों का निरूपण किया जाता है :- दो-सौ पल धान्यमाष-परिमाण का एक आयमान द्रोण होता है। एक-सौ साढ़े सत्तासी पल का एक व्यावहारिक द्रोण होता है। एक-सौ पचहत्तर पल का एक भाजनीय द्रोण होता है, और एक-सौ साढ़े-बासठ पल का अन्तःपुरभाजनीय द्रोण कहा जाता है, अर्थात्;

२०० पल धान्यमाषक	=	१ आयमानद्रोण
१८७$^{१}/_{२}$ पल धान्यमाषक	=	१ व्यावहारिकद्रोण
१७५ पल धान्यमाषक	=	१ भाजनीयद्रोण
१६२$^{१}/_{२}$ पल धान्यमाषक	=	१ अन्तःपुरभाजनीय द्रोण

(२०) द्रोण का चौथाई आढक, आढक का चौथाई प्रस्थ और प्रस्थ का चौथाई कुडव होता है।

(२१) सोलह द्रोण की एक खारी, बीस द्रोण का एक कुम्भ और दस कुम्भ परिमाण का एक वह होता है, यथा :

१६ द्रोण	=	१ खारी
२० द्रोण या १$^{१}/_{४}$ खारी	=	१ कुम्भ
१० कुम्भ	=	१ वह

(२२) अनाज मापने के लिए बढ़िया सूखी लकड़ी का ऐसा माप बनवाया जाये कि जितना अनाज उसमें समा सके, उसका चतुर्थांश उसकी गर्दन में आ जाये, अथवा गर्दन बनाकर ऊपर से नीचे तक एक जैसी बनावट रहे, उसका मुँह खुला रहना चाहिये। घी-तेल मापने के लिए भी ऐसा ही माप बनवाया जाये।

(२३) शराब, फल, फूल, भूसी, कोयला और चूना-कलई, इन छह पदार्थों को मापने के लिए जो बर्तन बनवाया जाये उसके ऊपर का हिस्सा, नीचे के हिस्से से दुगुना चौड़ा होना चाहिये और उस पर गर्दन भी बनी होनी चाहिये।

(२४) लकड़ी के बने एक द्रोण परिमाण बर्तन का मूल्य सवा पण होना चाहिये। इसी प्रकार एक आढक परिमाण के बर्तन की कीमत पौन पण, एक प्रस्थ के बर्तन की छह माषक और एक कुडव परिमाण वाले बर्तन की कीमत एक माषक होनी चाहिये।

(२५) घी-तेल आदि द्रव पदार्थों को मापने वाले बर्तनों की कीमत अनाज मापने वाले बर्तनों से दुगुनी होनी चाहिये।

(२६) चौदह प्रकार के सम्पूर्ण बाटों की कीमत बीस पण और सम्पूर्ण तुलाओं की कीमत उसके तिहाई अर्थात् ६$^{२}/_{३}$ पण होती है।

(२७) पौतवाध्यक्ष को चाहिये कि हर चौथे मास वह तुला, बाट, द्रोण आदि का निरीक्षण करे। जो व्यापारी निर्धारित समय पर जाँच न करवावे उसे सवा सत्ताईस पण जुर्माना देना चाहिये। व्यापारियों को चाहिये कि वे एक काकणी प्रतिदिन के हिसाब से चार मास की एक-सौ-बीस

काकणी निरीक्षण-कर के रूप में पौतवाध्यक्ष को दें।

(२८) यदि गरम घी खरीदा जाये तो उसका बत्तीसवाँ हिस्सा और तेल खरीदा जाये तो उसका चौसठवाँ हिस्सा छीजन के रूप में अधिक लेना चाहिये। द्रव पदार्थों में पाँचवां हिस्सा छीजन होती है।

(२९) छोटी तोल के लिए एक कुडव, आधा कुडव, चौथाई कुडव तथा आठवाँ हिस्सा कुडव, ये चार प्रकार के बाट और माप बनवाने चाहिये।

(३०) घी तोलने के लिए चौरासी कुडव परिमाण का एक वारक और तेल तोलने के लिए चौसठ कुडव का एक वारक माना गया है। इक्कीस कुडव की एक घ तवाटिका और सोलह कुडव की एक तैलघटिका होती है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में तुलामानपौतव नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २०

देशकालमानम्

(१) मानाध्यक्षो देशकालमानं विद्यात्।

(२) अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट्। ता अष्टौ लिक्षा। ता अष्टौ यूकामध्यः। ते अष्टौ यवमध्यः। अष्टौ यवमध्याः अङ्गुलम्।

(३) मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अङ्गुल्या मध्यप्रकर्षो वाङ्गुलम्।

(४) चतुरङ्गुलो धनुर्ग्रहः। अष्टाङ्गुला धनुर्मुष्टिः।

(५) द्वादशांङ्गुला वितस्तिः, छायापौरुषं च। चतुर्दशाङ्गुलं शमः शलः परिरयः पदं च। द्विवितस्तिररत्निः प्राजापत्यो हस्तः।

(६) सधनुर्ग्रहः पौतवविवीतमानम्। सधनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा।

(७) द्विचत्वारिंशदङ्गुलस्तक्ष्णः क्राकचिककिष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम्। चतुःप चाशदङ्गुलः कुप्यवनहस्तः।

(८) चतुरशीत्यङ्गुलो व्यामो रज्जुमानं खातपौरुषं च।

(९) चतुररत्निर्दण्डो धनुर्नालिका पौरुषं च।

(१०) गार्हपत्यमष्टशताङ्गुलं धनुः पथिप्राकारमानम्। पौरुषं च अग्निचित्यानाम्।

(११) षट्कंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम्। दशदण्डा रज्जुः। द्विरज्जुकः परिदेशः। त्रिरज्जुकं निवर्तनम्।

(१२) एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः द्विधनुसहस्रं गोरुतम्। चतुर्गोरुतं योजनम्। इति देशमानम्।

(१३) कालमानमत ऊर्ध्वम्। तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नालिका मुहूर्तः पूर्वापरभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः

(१४) निमेषचतुर्भागस्तुटः।

(१५) द्वौ तुटौ लवः।

(१६) द्वौ लवौ निमेषः।

(१७) प च निमेषाः काष्ठाः।

(१८) त्रिंशत् काष्ठाः कला।

(१९) चत्वारिंशत् कला नाडिका।

(२०) सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरंगुलायामाः कुम्भच्छिद्रकाढकमम्भसो वा नालिका।

(२१) द्विनालिको मुहूर्तः। प चदशमुहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्वयुजे च मासि भवतः। ततः परं त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासं वर्धते ह्रसते चेति।

(२२) छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागच्छेदः, षट्पौरुष्यां चतुर्दशभागः, चतुष्पौरुष्यामष्टभागः, द्विपौरुष्यां षड्भागः, पौरुष्यां चतुर्भागः, अष्टाङ्गुलायां दशभागेषु त तीयभागः चतुरङ्गुलायाम् अष्टभागेषु त तीयभागः, अच्छायो मध्याह्न इति।

(२३) पराव त्ते दिवसे शेषमेव विद्यात्।

(२४) आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति। अतः परं श्रावणादीनां षण्मासानां द्व्यङ्गुलोत्तरा माघादीनां द्व्यङ्गुलावराछाया इति।

(२५) प चदशाहोरात्राः पक्षः। सोमाप्यायनः शुक्लः सोमावच्छेदनो बहुलः।

(२६) द्विपक्षो मासः। त्रिंशदहोरात्रः प्रकर्ममासः। सार्धः सौरः। अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः। सप्तविंशतिर्नक्षत्रमासः। द्वात्रिंशद् मलमासः। प चत्रिंशदश्ववाहायाः। चत्वारिंशद्धस्तिवाहायाः।

(२७) द्वौ मासाव तुः। श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षाः। आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत्। मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः। माघः फाल्गुनश्च शिशिरः। चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः। ज्येष्ठामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः।

(२८) शिशिराद्युत्तरायणम्। वर्षादि दक्षिणायनम्।

(२९) द्व्ययनः संवत्सरः। प चसंवत्सरो युगमिति।

(३०) दिवसस्य हरत्यर्कः षष्टिभागम तौ ततः।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः।।
एवमर्धत तीयानामब्दानामधिमासकम्।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं प चाब्दान्ते च पश्चिमम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे देशकालमानं नाम विंशो ध्यायः, आदितश्चत्वारिशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) पौतवाध्यक्ष को चाहिये कि वह देश और काल का मान भी अच्छी तरह से जान ले। उसकी जानकारी के सूत्र इस प्रकार हैं :

(२)	८ परमाणु	=	१ धूलकण
	८ धूलकण	=	१ लिक्षा
	८ लिक्षा	=	१ यूकामध्य
	८ यूकामध्य	=	१ यवमध्य
	८ यवमध्य	=	१ अंगुल

(३) अथवा मध्यम कोटि के पुरुष की मध्यमा की मोटाई का माप एक अंगुल बराबर होता है।

(४)	४ अंगुल	=	१ धनुर्ग्रह
	८ अंगुल/२ धनुर्गह	=	१ धनुर्मुष्टि
(५)	१२ अंगुल/३ धनुर्ग्रह		
	या $1^1/_2$ धनुर्मुष्टि	=	१ वितस्ति या १ छायापुरुष
	१४ अंगुल	=	१ शम, शल परिरय या पद (पैर)
	२ वितस्ति	=	१ अरत्नि, प्राजापत्य हाथ
(६)	२८ अंगुल	=	१ हाथ (विवीत और पौतव नापने के लिये)
	३२ अंगुल	=	१ किष्कु या कंस
(७)	४२ अंगुल	=	१ हाथ (छावनी आदि में बढ़ई के उपयोगार्थ)
	३२ अंगुल	=	१ किष्कु या कंस (छावनी आदि में लकड़ी चीरने के लिये)

५४ अंगुल = १ हाथ (जंगली लकड़ी और पदार्थ नापने के लिये)

(८) ८४ अंगुल = १ हाथ (रस्सी, खाई और कुआं नापने के लिये)

(९) ४ अरत्नि = १ दण्ड, धनु, नालिका, पौरुष

(१०) १०८ अंगुल = १ गार्हपत्यधनु (विश्वकर्मा द्वारा निश्चित, सड़क किला एवं परकोटा नापने के लिए)

१०८ अंगुल = १ पौरुष (यज्ञसम्बन्धी कार्यों के लिये)

(११) ६ कंस / ८ हाथ = १ दण्ड (ब्राह्मण आदि को भूमिदान देने के लिए)

१० दण्ड / ४ अरत्नि = १ रज्जु

२ रज्जु = १ परिदेश

२ रज्जु/१$^{१}/_{२}$ परिदेश = १ निवर्त्तन

(१२) ३०+३२ दण्ड = १ बाहु (पूरा हाथ)

६६$^{१}/_{२}$ निवर्त्तन/२००० धनु = १ गोरुत (१ कोश)

४ गारुत = १ योजन

यहाँ तक देश-मान का निरूपण किया गया है।

(१३) इसके बाद काल-मान का निरूपण किया जाता है। तुट, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नालिका, मुहूर्त्त, पूर्वाह्न, अपराह्न, दिन, रात, पक्ष मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग, काल के ये सत्रह विभाग हैं।

(१४) निमेष = पलक मारने तक का समय,

त्रुटि = निमेष वा चौथा हिस्सा

(१५) २ त्रुटि = १ लव

(१६) २ लव = १ निमेष

(१७) ५ निमेष = १ काष्ठा

(१८) ३० काष्ठा = १ कला

(१९) ४० कला = १ नालिका

(२०) अथवा एक घड़े में चार सुवर्णमाषक के बराबर चौड़ा और चार अंगुल लम्बा छेद बनाकर इतने ही परिमाण की एक नली घड़े में लगा दी जाये, उस घड़े में एक आढ़क जी भर दिया जाये। वह जल उस नली के द्वारा जितने समय में बाहर निकले, उतने समय को नलिका कहते हैं।

५ नालिका = १ मुहूर्त

१५ मुहूर्त = १ दिन या १ रात

(२१) इस मान के दिन और रात केवल चैत तथा आश्विन मास में होते हैं। इसके बाद छह-मास तक दिन बढ़ता और रात्रि घटती है, दूसरे छह महीने तक रात्रि बढ़ती है और दिन घटता रहता है।

(२२) जब धूपघड़ी की छाया ९६ अंगुल लम्बी हो तो दिन का अठारहवाँ भाग समाप्त हुआ समझना चाहिये, ७२ अंगुल छाया रहने पर दिन का चौदहवाँ भाग, ४८ अंगुल लम्बी रहने पर आठवाँ हिस्सा, २४ अंगुल लम्बी रहने पर छठा हिस्सा, १२ अंगुल लम्बी रहने पर चौथा हिस्सा, ८ अंगुल लम्बी रहने पर दिन के दस भागों में तीसरा हिस्सा, चार अंगुल लम्बी रह जाने पर

आठ भागों में तीसरा हिस्सा और जब छाया बिल्कुल न रहे तो मध्याह्न समझना चाहिये।

(२३) मध्याह्न अर्थात् बारह बजे के बाद उक्त छाया-मान के अनुसार दिन का शेष भाग समझना चाहिये।

(२४) आषाढ़ के महीने की दोपहरी छायारहित होती है। श्रावण से पौष तक मध्याह्न में दो अंगुल छाया अधिक रहती है, और फिर माघ से ज्येष्ठ तक दो अंगुल कम हो जाती है।

(२५) पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष होता है। जिस पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता रहता है उसे शुक्लपक्ष और जिस पक्ष में चन्द्रमा घटता है उसे कृष्ण पक्ष कहते हैं।

(२६) दो पक्ष का एक महीना होता है। वेतन देने के लिए तीस दिन-रात का एक महीना माना जाता है। साढ़े तीस दिन-रात का एक सौर मास होता है। साढ़े उनतीस दिन-रात का एक चान्द्रमास होता है। सत्ताईस दिन-रात का एक नक्षत्र-मास होता है। बत्तीस दिन-रात का एक मलीमास होता है। पैंतीस दिन-रात का महीना घोड़ों के सइसों को वेतन देने के उपयोग में लाया जाता है। हाथियों की सेवा में नियुक्त कर्मचारियों का एक महीना, चालीस दिन-रात का होता है।

(२७) दो मास की एक ऋतु होती है। श्रावण-भादों में वर्षा ऋतु होती है। आश्विन-कार्तिक में शरद् ऋतु होती है। मार्गशीर्ष-पौष में हेमन्त ऋतु होती है। माघ-फाल्गुन में शिशिर ऋतु होती है। चैत्र-वैशाख में वसन्त ऋतु होती है। ज्येष्ठ-आषाढ में ग्रीष्म ऋतु होती है।

(२८) शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म उत्तरायण और वर्षा, शरद् तथा हेमन्त दक्षिणायन कहलाते हैं।

(२९) उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों का एक संवत्सर होता है। पाँच संवत्सरों का एक युग होता है।

(३०) प्रतिदिन सूर्य एक घटिका छेद करता है, इस क्रम से वह एक वर्ष में छह दिन, दो वर्ष में बारह दिन और ढाई वर्ष में पन्द्रह दिन अधिक बना लेता है। इसी प्रकार चन्द्र भी प्रत्येक ऋतु में एक-एक दिन कम करता जाता है, जिससे ढाई वर्ष में पन्द्रह दिन कम हो जाते हैं। इस द ष्टि से सूर्य और चन्द्रमा की गति के अनुसार एक महीने की कमी-बेशी हो जाती है। इस गणना के अनुपात से प्रति ढाई वर्ष बाद ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मलिमास और प्रति पाँच वर्ष के बाद हेमन्त ऋतु में दूसरा मलिमास, सूर्य तथा चन्द्रमा बनाते हैं। यही मलिमास अधिकमास कहलाता है, जो ढाई वर्ष में एक महीने के अन्तर को पूरा कर देता है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में दशमालमान नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २१

शुल्काध्यक्षः

(१) शुल्काध्यक्षः शुल्कशालां ध्वजं च प्राङ्मुखम् उदङ्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत्।

(२) शुल्कादायिनश्चत्वारः प च वा सार्थोपयातान् वणिजो लिखेयुः - के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृतेति।

(३) अमुद्राणामत्ययो देयद्विगुणः।

(४) कूटमुद्राणां शुल्काष्टगुणो दण्डः।

(५) भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकाः स्थाने स्थानम्।

(६) राजमुद्रापरिवर्तने नामकृते सपादपणिकं वहनं दापयेत्।

(७) ध्वजमूलोपस्थितस्य प्रमाणमर्घं च वैदेहकाः पण्यस्य ब्रूयुः — एतत्प्रमाणेनार्घेण पण्यमिदं कः क्रेतेति। त्रिरुद्धोषितमर्थिभ्यो दद्यात् क्रेत संघर्षे मूल्यव द्धिः। सशुल्का कोशं गच्छेत्।

(८) शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत्। शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात्।

(९) तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्णकेनार्घापकर्षेण सारभाण्डस्य फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात्।

(१०) प्रतिक्रेत भयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतो मूल्यव द्धिं राजा हरेत्। द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात्।

(११) तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य छादयतः।

(१२) तस्माद्विक्रयः पण्यानां ध तो मितो गणितो वा कार्यः। तर्कः फल्गुभाण्डानामानुग्राहिकाणां च।

(१३) ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्टगुणो दण्डः। पथिकोत्पथिकास्तद्विद्युः।

(१४) वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनयनगोदानव्रतदीक्षणादिषु क्रियाविशेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत्।

(१५) अन्यथावादिनः स्तेयदण्डः।

(१६) कृतशुल्केनाकृतशुल्कं निर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भित्त्वा पण्यपुटमपहरतो वैदहकस्य तच्च तावच्च दण्डः।

(१७) शुल्कस्थानाद्गोमयपलालं प्रमाणं कृत्वा अपहरत उत्तमः साहसदण्डः।

(१८) शस्त्रवर्मकवचलोहरथरत्नधान्यपशूनामन्यतमानिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च।

(१९) तेषामन्यतमस्यानयने बहिरेवोच्छुल्को विक्रयः।

(२०) अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं ग ह्णीयात् पण्यवहनस्य, पणिकामेकमुखरस्य, पशूनामर्धपणिकां, क्षुद्रपशूनां पादिकाम्, असभारस्य माषिकाम्। नष्टापहृतं च प्रतिविदध्यात्।

(२१) वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्त्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य।

(२२) वैदेहकव्य जनो वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेषयेत्। तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेरोत्सर्वज्ञत्वख्यापनार्थम्। ततः सार्थमध्यक्षो भिगम्य ब्रूयात्—'इदममुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहतव्यम्, एष राज्ञः प्रभावः' इति।

(२३) निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्ड, सारभाण्डं सर्वापहारः।

(२४) राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत्।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्बीजं तु दुर्लभम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे शुल्काध्यक्षो नाम एकविंशो ध्यायः, आदित एकचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) शुल्क का अध्यक्ष शुल्कशाला का निर्माण करवावे, उसके पूर्व तथा उत्तर की ओर, प्रधान द्वार के पास, शुल्कशाला की पहिचान के लिए एक पताका लगवा दे।

(२) शुल्कशाला में चार-पाँच कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये, जो माल को लाने ले जाने वाले व्यापारियों का नाम, उनकी जाति, उनका निवास स्थान, माल का विवरण और उस पर कहाँ-कहाँ मुहर लगी है, इसका विवरण लिखें

(३) जिन व्यापारियों के माल पर मुहर न लगी हो, उनको जितनी चुंगी (शुल्क) देनी चाहिये, उन पर उसका दुगुना जुर्माना किया जाये।

(४) जिन व्यापारियों ने अपने माल पर नकली मुहर लगाई है उन पर चुंगी का आठ गुना जुर्माना ठोकना चाहिये।

(५) जो व्यापारी मुहर लगाकर उसको मिटा दे, उन्हें तीन घड़ी तक ऐसे स्थान पर बैठाया जाये, जहाँ पर कि आने-जाने वाले सभी व्यापारी उनके अपराध को जान सकें।

(६) माल का नाम बदलने वाले व्यापारी पर सवापण दण्ड करना चाहिये।

(७) शुल्कशाला की ध्वजा के नीचे एकत्र होकर व्यापारी लोग अपने माल का नाम, उसकी कीमत और उसके वजन आदि की बोली बोलें। तीन बार आवाज लगाने पर जो भी खरीद ले, उसे माल दे देना चाहिये, यदि खरीदने वालों में होड़ लग जाये तो माल का मूल्य बढ़ा कर बोली बोली जाये और निर्धारित आमदनी से अधिक मूल्य एवं उसकी चुंगी राजकीय कोष में जमा कर दी जाये।

(८) अधिक चुंगी देने के डर से जो व्यापारी अपने माल और उसके मूल्य को कम करके बताये, उस अतिरिक्त माल को राजा ले ले, अथवा व्यापारी से आठ गुना शुल्क वसूल किया जाये।

(९) यही दण्ड उस व्यापारी को भी देना चाहिये जो कि बढ़िया माल की जगह, उसी प्रकार की दूसरी पेटी आदि में घटिया माल रख कर उसका मूल्य कम कर दे अथवा जो व्यापारी नीचे के हिस्से में अच्छा माल भर कर ऊपर से सस्ता माल भर दे और उसी के अनुसार चुंगी दे।

(१०) प्रतिद्वन्द्विता के कारण जो ग्राहक किसी चीज का मूल्य बढ़ा दे, उस बढ़े हुए मूल्य को राजा ले ले अथवा उस मूल्य बढ़ाने वाले खरीददार से दुगुनी चुँगी वसूल कर ली जाये।

(११) मित्रता या रिश्वत के कारण यदि अध्यक्ष किसी अपराधी व्यापारी को माफ कर दे तो अपराध के अनुपात से आठ गुना दण्ड अध्यक्ष को दिया जाये।

(१२) इसलिए माल की बिक्री तौल कर अथवा गिन कर भली भाँति करनी चाहिये, जिससे छल-कपट न हो सके। कोयला, नमक आदि कम चुंगी वाली वस्तुओं पर अन्दाज से ही कर लेना चाहिये, उन्हें तौलने की आवश्यकता नहीं है।

(१३) जो व्यापारी छिपकर किसी छल से चुँगी दिए बिना ही चुंगीघर को लाँघ कर चले जायें उन्हें नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क देना चाहिये। असली रास्ता छोड़ कर इधर-उधर से निकल जाने वाले लकड़हारे और ग्वाले आदि पर भी निगरानी रखनी चाहिये।

(१४) विवाहसम्बन्धी, विवाह में प्राप्त, सदावर्त्त या क्षेत्रों के लिये दिया गया दान, यज्ञकर्म एवं जन्मोत्सव के लिए भेजा हुआ देवपूजा, मुंडन, जनेऊ, गोदान और व्रत आदि धार्मिक कार्यों से सम्बद्ध माल पर चुंगी न ली जानी चाहिये।

(१५) किन्तु चुंगी के भय से जो व्यक्ति अपने माल का सम्बन्ध उक्त कार्यों से बतायें तो उसे चोरी का दण्ड दिया जाये।

(१६) यदि कोई व्यापारी चुंगी दिए माल के साथ बिना चुंगी दिए माल को निकाल ले जाये या इसी प्रकार बिना मुहर लगे माल को निकाल ले जाये, अथवा चुंगी दिये माल में बिना चुंगी का माल मिला दे, उस व्यापारी का वह बिना चुंगी का माल जब्त कर दिया जाये और उस पर उतना ही दण्ड निर्धारित किया जाये।

(१७) जो व्यापारी चुंगी देने के भय से अपने अच्छे माल को घटिया बताकर धोखे से निकाल ले जाने की चेष्टा करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१८) शस्त्र, कवच, लोहा, रथ, रत्न, अन्न और पशु आदि किसी भी प्रतिबन्ध लगी वस्तु को लाने-ले जाने वाले व्यापारी को पूर्व निर्धारित दण्ड दिया जाये और उसकी उस वस्तु को जब्त कर लिया जाये।

(१९) इनमें से कोई वस्तु यदि बाहर लायी जाये तो वह बिना चुंगी दिये भी नगर-सीमाओं के बाहर बेची जा सकती है।

(२०) सीमा रक्षक अन्तपाल को चाहिये कि वह माल ढोने वाली प्रति गाड़ी से मार्गरक्षा-कर के रूप में सवा पण कर वसूल करे। घोड़े, खच्चर, गधे आदि एक खुर वाले पशुओं की गाड़ी पर एक पण, बैल आदि पशुओं पर आधा पण, बकरी, भेड़ आदि छोटे पशुओं पर चौथाई पण और कंधे पर भार ढोने वाले व्यक्तियों पर एक माष (तांबे का सिक्का) कर लेना चाहिये। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु गुम हो गई या चोरी हो गई हो तो अन्तपाल उसका पता लगाये। नष्ट हुई वस्तु मिल जाये तो दे दे, अन्यथा अपने ही पास से दे।

(२१) अन्तपाल को चाहिये कि वह विदेशी व्यापारियों के माल की भली-भाँति जाँच कर उस पर मुहर लगाये और रमन्ना (पास) काटकर उन्हें चुंगी के अध्यक्ष के पास भेज दे।

(२२) उन विदेशी व्यापारियों के साथ गुप्त व्यापारी का भेष धारण किये राजा का खुफिया व्यापारियों के सम्बन्ध की सारी सूचनाएं पहले ही राजा तक पहुँचा दे। इस सूचना को तथा व्यापारियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी राजा, शुल्काध्यक्ष के पास भेज दे, जिससे कि राजा की जानकारी पर विश्वास किया जा सके और राजा की बात को विश्वासपूर्वक कहा जा सके। तदनुसार शुल्काध्यक्ष व्यापारियों से कहे 'आप लोगों में से अमुक-अमुक व्यापारी के पास इतना घटिया और इतना बढ़िया माल है, आप लोगों को कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये। देखिये, राजा का इतना प्रभाव है कि उससे कोई बात छिपी नहीं रह सकती है।'

(२३) जो व्यापारी घटिया माल को छिपाने का यत्न करे, उस पर चुंगी से आठ गुना जुर्माना और जो बढ़िया माल को छिपाये उसका सारा माल जब्त कर लेना चाहिये।

(२४) राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाले विष या फल आदि माल को राजा नष्ट कर दे और यदि प्रजा का उपकार करने वाला तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाला धान्य आदि माल हो तो उस पर चुंगी न लगाई जाये, जिससे उस माल का अपने देश में अधिक आयात हो।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २२

शुल्कव्यहारः

(१) शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम्; निष्क्राम्यं, प्रवेश्यं च शुल्कम्।

(२) प्रवेश्यानां मूल्यप चभागः।

(३) पुष्पफलशाकमूलकन्दवल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं ग हृणीयात्।

(४) शंखवज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत्, कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः।

(५) क्षौमदुकूलक्रिमितानकङ्कटहरितालमनःशिलाहिङ्गुलुकलोहवर्णधातूनां चन्दनागरुकटुक-किण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामजैलकस्य च दशभागः, प चदशभागो वा।

(६) वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्ध भैषज्यकाष्ठवेणुवल्कचर्मम द्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षार लवण मद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः प चविंशतिभागो वा।

(७) द्वाराद्वेयं शुल्कप चभागः आनुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत्।

(८) जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः।

(६) खनिभ्यो धातुपण्यादाने षट्छतमत्ययः।

(१०) पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्प चाशत्पणो दण्डः।

(११) षण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विप चाशत्पणः।

(१२) क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिप चाशत्पणः, पणो ध्यर्धपणश्च सीतात्ययः।

(१३) अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः।
पण्यानां स्थायेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकारणे शुल्कव्यवहारो नाम द्वाविंशो ध्यायः, आदितो द्विचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) शुल्कव्यवहार के तीन प्रकार हैं : १. बाह्य, २. आभ्यन्तर, और ३. आतिथ्य। इनके दो भाग हैं : १. निष्क्राम्य और २. प्रवेश्य। बाहर जाने वाले माल पर लगाई गई चुंगी को निष्क्राम्य और बाहर से आने वाले माल पर लगाई चुंगी को प्रवेश्य कहते हैं।

(२) आयात माल पर सामान्यतः उसकी लागत का पाँचवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये।

(३) फूल, फल, साग, गाजर, मूल, शकरकन्द, धान्य, सूखी मछली और मांस, इन वस्तुओं पर उनकी लागत का छठा हिस्सा चुंगी लेनी चाहिये।

(४) शंख, हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल और हार, इन मूल्यवान् वस्तुओं की चुंगी उनके विशेषज्ञों, पारखियों अथवा विशिष्ट रूप से नियत समय के लिए नियत वेतन पर नियुक्त व्यक्तियों द्वारा निर्धारित करनी चाहिये।

(५) मोटे तथा महीन रेशमी कपड़ों, कीमखाब, सूती कवच, हरताल, मैनसिल, हिंगुल, लोहा, गेरू, चन्दन, अगर पीपल, मादक बीजों से निकाला गया द्रव्य, शराब, हाथदाँत, म गचर्म, रेशमी तागे,

बिछौना, ओढ़ना, अन्य रेशमी वस्त्र और बकरी तथा भेड़ की ऊन के बने कपड़ों आदि पर उनके मूल्य का पन्द्रहवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये।

(६) मामूली सूती कपड़ों, चौपायों, दुपायों, सूत, कपास, दवाई, लकड़ी, बांस, छाल, बैल आदि का चमड़ा, मिट्टी के बर्तन, अनाज, घी, तेल, खारा नमक, शराब और पके हुए अनाजों पर उनकी कीमत का बीसवाँ या पच्चीसवाँ भाग चुंगी लेनी चाहिये।

(७) द्वारपाल को चाहिये कि वह, नगर के प्रधान द्वार से प्रविष्ट होने वाली वस्तुओं पर, उनके नियत कर का पांचवां हिस्सा टैक्स वसूल करे। हर प्रकार का कर इस ढंग से नियत करना चाहिये, जिससे देश का उपकार हो।

(८) जिन प्रदेशों में जो चीजें पैदा होती हैं वहीं उनको बेचना नहीं चाहिये।

(६) खानों से तैयार किया हुआ कच्चा माल खरीदने-बेचने वालों को ६०० पण दण्ड देना चाहिये।

(१०) फूल-फल के बगीचों में ही फूल-फल खरीदने-बेचने वालों को ५४ पण दण्ड देना चाहिये।

(११) साक-भाजी के खेतों में ही साक, भाजी, तथा कन्द-मूल खरीदने-बेचने वालों को ५२$^{३}/_{४}$ पण दण्ड देना चाहिये।

(१२) इसी प्रकार अनाज के खेतों में ही अनाज खरीदने वालों को ५३ पण दण्ड देना चाहिये और अनाज को खेत से ही खरीदने-बेचने वालों को क्रमशः एक पण तथा डेढ़ पण दण्ड देना चाहिये।

(१३) इसलिए राजा को चाहिये कि वह देश, जाति तथा आचार के अनुसार नये एवं पुराने हर पदार्थों पर कर की व्यवस्था करे और उनमें जहाँ से नुकसान की संभावना हो, उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था भी करे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में शुल्कव्यवहार नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २३

सूत्राध्यक्षः

(१) सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत्।

(२) ऊर्णावल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डाप्रतिकारिणीभिरूपाजीवामात काभिर्वृद्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत्।

(३) श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत्। बह्वल्पतां च। सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुग ह्णीयात्।

(४) तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कार्याणि कारयितव्यानि। सूत्रह्रासे वेतनह्रासो द्रव्यसारात्।

(५) कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्च कर्म कारयेत्, प्रतिसंसर्गं च गच्छेत्।

(६) क्षौमदुकूलक्रिमितानराङ्कवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयु जानो गन्धमाल्यदानैरन्यैश्चौपग्राहिकंराराधयेत्। वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत्।

(७) कंकटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत्।

(८) याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा व्यङ्गाः कन्यका वा त्मानं बिभ युस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्माणि कारयितव्यानि।

(९) स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतनविनिमयं कारयेत्। सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः।

(१०) स्त्रिया मुखसन्दर्शने न्यकार्यसम्भाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः। वेतनकालातिपातने मध्यमः, अकृतकर्मवेतनप्रदाने च।

(११) ग हीत्वा वेतनं कर्माकुर्वन्त्यः अङ्गुष्ठसन्दंशनं दापयेत्। भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च। वेतनेषु च कर्मकाराणामपराधतो दण्डः।

(१२) रज्जुवर्त्तकैश्चर्मकारैश्च स्वयं संस ज्येत। भाण्डानि च वरत्रादीनि वर्तयेत्।

(१३) सूत्रवल्कमयी रज्जूर्वरत्रा वैत्रवैणवीः।
सान्नाह्या बन्धनीयाश्चं यानयुग्यस्य कारयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे सूत्राध्यक्षो नाम त्रयोविंशो ध्यायः, आदितस्त्रयश्चत्वारिशंः।

हिन्दी अनुवाद

(१) सूत-व्यवसाय के अध्यक्ष को चाहिये कि वह सूत, कवच, कपड़ा और रस्सी आदि के कातने, बुनने तथा बटने वाले निपुण कारीगरों से उनके इन कार्यों की जानकारी प्राप्त करे।

(२) ऊन, बल्क, कपास, सेंमल, सन और जूट आदि को कतवाने के लिए विधवाओं, अंगहीन स्त्रियों, कन्याओं, संन्यासिनों, सजायाफ्ता स्त्रियों, वेश्याओं की खालाओं, बूढ़ी दासियों और मन्दिर की दासियों को नियुक्त करना चाहिये।

(३) सूत की एकसारता, मोटाई और मध्यमता की अच्छी तरह जांच करने के बाद उक्त महिलाओं की मजदूरी नियत करनी चाहिये। कम-ज्यादा सूत कातने वाली स्त्रियों को उनके कार्य के

अनुसार वेतन देना चाहिये। सूत का वजन अथवा लम्बाई को जानकर पुरस्कार रूप में उन्हें तेल, आँवला और उबटन देना चाहिये, जिससे वे प्रसन्न होकर अधिक कार्य करें।

(४) त्यौहारों और छुट्टी के दिनों में उन्हें भोजन, दान या समान देकर उनसे कार्य करवाना चाहिये। निर्धारित मात्रा से सूत कम काता जाये तो सूत के मूल्य के अनुसार उनका वेतन काटना चाहिये।

(५) नियत कार्य-काल और निश्चित वेतन के अनुसार ही कारीगरों को नियुक्त किया जाना चाहिये और उनसे सम्पर्क बनाये रखना चाहिये, जिससे कि कार्य में किसी प्रकार का कपट न होने पाये।

(६) अध्यक्ष को चाहिये कि मोटे-महीन रेशमी कपड़े, चीनी, रेशम, रंकु म ग की ऊन और कपास का सूत कातने-बनने वाले कारीगरों को इत्र, फुलेल तथा अन्य पारितोषिक देकर सदा प्रसन्न चित्त रखे। उनसे वह ओढ़ने, बिछाने एवं पहनने के डिजाइनदार वस्त्र बनवाये।

(७) निपुण कारीगरों से मोटे महीन सूत के कवच बनवाने चाहिये।

(८) जो स्त्रियाँ परदानसीन हों, जिनके पति परदेश गये हों, विधवा हों, जो लूली-लंगड़ी हों, जिनका विवाह न हुआ हो, जो आत्मनिर्भर रहना चाहती हों, ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में अध्यक्ष को चाहिये कि वह दासियों द्वारा सूत भेज कर उनसे कतवाये और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे।

(९) घर पर काते हुये सूत को लेकर जो स्त्रियाँ स्वयं या दासियों को साथ लेकर प्रातःकाल ही पुतलीघर (सूत्रशाला) में उपस्थित हों, उन्हें यथोचित मजदूरी दी जानी चाहिये। सूत्रशाला में अधिक सवेरा होने के कारण यदि कुछ अन्धेरा हो तो वहाँ उतना ही प्रकाश किया जाये, जिससे सूत अच्छी तरह देखा जा सके।

(१०) स्त्री का मुख देखने या कार्य के अलावा इधर-उधर की बात करने वाले परीक्षक को प्रथम साहस दण्ड और कार्य न करने पर भी यदि वेतन दिया जाये तब भी मध्यम साहस दण्ड देना चाहिये।

(११) जो स्त्री वेतन लेकर भी कार्य न करे, उसका अंगूठा कटवा देना चाहिये। यही दण्ड उसको भी देना चाहिये, जो माल को चुराये, खो दे अथवा लेकर भाग जाये। प्रत्येक कर्मचारी को उसके अपराध के अनुसार शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१२) सूत्राध्यक्ष को चाहिये कि वह रस्सी बाटकर जीविकोपार्जन करने वाले तथा चमड़े का कार्य करने वाले कारीगरों से सम्पर्क बनाये रखे। उनसे वह गाय आदि बाँधने के लिए रस्सी तथा हर तरह का चमड़े आदि का सामान बनवाता रहे।

(१३) सूत्राध्यक्ष को चाहिये कि वह सूत, सन आदि की रस्सियाँ और कवच बनाने तथा घोड़ा बाँधने के उपयोगी बेत एवं बाँस की रस्सियाँ बनवाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में सूत्राध्यक्ष नामक तेईसवां अध्याय समाप्त।

अध्याय २४

सीताध्यक्षः

(१) सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्बव क्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूल-वाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं ग ह्णीयात्।

(२) बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्त भिर्वापयेत्।

(३) कर्षणयन्त्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसङ्गं कारयेत्। कारुभिश्च कर्मारकुट्टाकमेदकरज्जु-बर्तकसर्पग्राहादिभिश्च।

(४) तेषां कर्मफलविनिपाते तत्फलहानं दण्डः।

(५) षोडशद्रोणं जांगलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानाम्। देशवापानाम्। अर्धत्रयोदशाश्मकानां, त्रयोविंशतिरवन्तीनाम्, अमितमपरान्तानाम्, हैमन्यानां च कुल्यावापानां च कालतः।

(६) वर्षत्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोः, द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुषमारूपम् ।

(७) तस्योपलब्धिर्ब हस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च।

(८) सूर्याद्बीजसिद्धिः। ब हस्पतेः सस्यानां स्तम्बकारिता। शुक्राद्व ष्टिरिति।

(९) त्रयः साप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः।

षष्टिरातपमेघानामेषा व ष्टिः समाहिता।।

(१०) वातमातपयोगं च विभजन् यत्र वर्षति।

त्रीन् कर्षकांश्च जनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः।।

(११) ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत्।

(१२) शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गुदारकवरकाः पूर्ववापाः। मुद्गमाषशैम्ब्या मध्यवापा। कुसुम्भमसूरकुलत्थयवगोधूलायातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः।

(१३) यथर्तुवशेन वा बीजवापाः।

(१४) वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः। स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थ-प चभागिकाः। यथेष्टमनवसितभागं दद्युरन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः।

(१५) स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्तितमुदकभागं पंचमं दद्युः। स्कन्दप्रावर्तिमं चतुर्थम्। स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिमं च त तीयम्।

(१६) चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम्।

(१७) कर्मोदकप्रमाणेन कैदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत्।

(१८) शाल्यादि ज्येष्ठम्। षण्डो मध्यमः। इक्षुः प्रत्यवरः। इक्षवो हि बह्वाबाधाव्ययग्राहणिश्च।

(१९) फेनाघातो वल्लीफलानाम्, परीवाहान्ताः पिप्पलीम द्वीकेक्षूणाम्, कूपपर्यन्ताः शाकमूलानाम्, हरिणिपर्यन्ता हरितकानाम्, लाल्यो लवानां गन्धभैषज्योशीरहीबेरपिण्डालुकादीनाम्। यथास्वं भूमिषु च स्थूल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत्।

(२०) तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां, त्रिरात्रं पंचरात्रे वा कोशीधान्यानां, मधुघ तसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेदलेपो मधुघ तेन कन्दानाम्। अस्थिबीजानां

शकृदालेपः। शाखिनां गर्तदाहो गो स्थिशकृद्भिः काले दौह्वदं च।

(२१) प्ररूढाँश्चाशुष्ककटुमत्स्याँश्च स्नुहिक्षीरेण वापयेत्।

(२२) कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्य च समाहरेत्।

न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति।।

(२३) सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत् अमुं च मन्त्रं ब्रूयात्-

'प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा।

सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च'।।

(२४) षण्डवाटगोपालकदासकर्मकरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्तं कुर्यात्। सपादपणिक मासं दद्यात्। कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम्।

(२५) प्रशीर्णं पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः। राशिमूलमुच्छव त्तयः।

(२६) यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत्।

न क्षेत्रे स्थापयेत् किंचित् पलालमपि पण्डितः।

(२७) प्रकराणां समुच्छ्रायान् वलभीर्वा तथाविधाः।

न संहतानिकुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च।।

(२८) खलस्य प्रकरान् कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान्।

अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे सीताध्यक्षो नाम चतुर्विंशो ध्यायः, आदितश्चतुश्चत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कृषि-विभाग के अध्यक्ष (सीताध्यक्ष) को यह आवश्यक है कि वह कृषिशास्त्र, शुल्बशास्त्र (पैमाइश) और व क्ष-विज्ञान की पूरी जानकारी हासिल करे, अथवा इन सभी विद्याओं को अपना सहायक बनाकर यथासमय अन्न, फूल, फल, शाक, कंद, मूल, सन, जूट और कपास आदि के बीजों का संग्रह करे।

(२) उन संग्रह किए हुए बीजों को वह क्रीतदासों, नौकरों और सपरिश्रम सजायाफ्ता कैदियों के द्वारा ऐसी भूमि में बुवाये, जो कई बार जोती गई हो।

(३) खेत जोतने-बोने के साधन हल-बैल आदि से उनका कोई स्थायी सम्बन्ध न रखा जाये। इसी प्रकार कारीगरों, बढ़इयों, खाई खोदने वालों, रस्सी बटने वालों और सपेरों से उन कर्मचारियों का कोई स्थायी संसर्ग न होने दिया जाये।

(४) यदि इन कारीगरों तथा बढ़ई आदि कर्मचारियों से खेती आदि में कोई नुकसान हो तो उसकी हानि उन्हीं से पूरी की जाये।

(५) वर्षा-जल को मापने के लिए बनाये हुए एक हाथ मुंह वाले कुण्ड में यदि सोलह द्रोण पानी भर जाये तो समझना चाहिये कि रेतीली जमीन फसल बोने के योग्य हो गई है। इसी प्रकार जल बरसने वाले प्रदेशों के लिए चौबीस द्रोण पानी, दक्षिणी प्रदेशों के लिए साढ़े तेरह द्रोण पानी, मालव प्रदेश के लिए तेइस द्रोण पानी, पश्चिमी प्रदेशों के लिए अधिक-से-अधिक और हिमालय प्रदेशों तथा नहरी प्रांतों के लिए समय-समय का पानी, फसल बोने के लिए उचित है।

(६) वर्षा के अनुपात से यदि एक हिस्सा श्रावण-कार्तिक में और दो हिस्से भाद्रपद-आश्विन में पानी बरसे तो वह वर्ष फसल के लिए लाभदायी समझना चाहिये।

(७) अच्छे वर्षा के आसार इन बातों पर निर्भर है : जब ब हस्पति मेष राशि से व ष राशि पर संक्रमण करें, जब गर्भाधान अर्थात् मार्गशीर्ष आदि छह महीनों में कोहरा, वर्षा, बादल आदि देखे जायें, जब शुक्र ग्रह की उदयास्त गति आषाढ़ की पंचमी आदि नौ तिथियों में संचारित हो, और जब सूर्य के चारों और मंगल दिखाई दे, ये सभी अच्छी वर्षा के लक्षण हैं।

(८) यदि सूर्य के चारों और मंडल पड़ा हो तो अनाज के अच्छे दाने का अनुमान करना चाहिये। यदि ब हस्पति व ष राशि का हो तो अच्छी फसल का अनुमान करना चाहिये। यदि शुक्र उदयास्त गति कारण हो तो अच्छी व ष्टि का अनुमान करना चाहिये।

(६) लगातार सात दिन में तीन बार वर्षा उत्तम है, सारी वर्षा ऋतु में अस्सी बार बूंदों की वर्षा भी उत्तम है, यदि साठ बार धूप खिल कर फिर बार-बार वर्षा होती रहे तो वह वर्षा अति उत्तम मानी गई है।

(१०) बीचों-बीच में हवा के चलने और धूप के खिलने का अन्तर छोड़कर यदि वर्षा हो और तीन-तीन दिन हल चलाने का अवसर देकर यदि वर्षा हो तो उत्तम फसल होने का अनुमान करना चाहिये।

(११) वर्षा के अनुपात से ही बीज बोना चाहिये।

(१२) साठी या धान, गेहूँ-जौ-ज्वार, कोदो, तिल, कांगनी और लोभिया आदि को वर्षा शुरु होने के पहले ही बो देना चाहिये। मूँग, उड़द और छीमी आदि वर्षा के मध्य में बोना चाहिये। कुसुंबी, मसूर, कुल्थी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों आदि अन्नों की वर्षा के अन्त में बोना चाहिये।

(१३) अथवा इन सभी अन्नों को ऋतु के अनुसार, जैसा उचित हो बोना चाहिये।

(१४) जो खेत बोये न गये हों, उन्हें सीताध्यक्ष आधी कटाई पर दूसरे किसानों को बाने के लिए दे दें। अथवा जो लोग शारीरिक श्रम पर ही जीवित हैं, उनको यह जमीन दे दी जाये और उस जमीन की पैदावार का चौथा या पाँचवाँ भाग उन्हें दिया जाये या स्वामी की इच्छानुसार ही उनको दिया जाये, किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि उन्हें उस प्रदत्त भाग को स्वीकार करने में कोई कष्ट न हो।

(१५) अपने धन और बाहुबल से बनाये गये तालाबों से यदि सिंचाई की जाये तो उस उपज का पाँचवाँ हिस्सा राजा को देने चाहिये। अपने कन्धों पर जल लाकर यदि वह खेतों की सिंचाई करता है तो उसे चौथाई हिस्सा राजा को देना चाहिये। यदि वह नहर या नालियां बनाकर खेतों को सींचता है तो उसे पैदावार का तीसरा ही हिस्सा देनो चाहिये।

(१६) अपने धन और श्रम से यदि नदी, झील और कुओं पर रहट लगाकर खेत की सिंचाई की जाये तो पैदावार का चौथा भाग राजा को देना चाहिये।

(१७) ऋतु के अनुसार तथा पानी की सुविधा देखकर ही खेतों में बीज बोना चाहिये।

(१८) धान, गेहूँ आदि की फसल उत्तम मानी गई है। कंदली आदि की फसल मध्यम कोटि की है। ईख की फसल ओछी मानी गई है, क्योंकि इसके बोने में बड़ा श्रम करना पड़ता है और अनेक बाधाओं से उसकी रक्षा करनी पड़ती है।

(१६) नदी के कछारों एवं किनारों की जमीन पेठा, कद्दू, ककड़ी तथा तरबूज आदि बोने के लिए उपयुक्त है, पीपल और ईख आदि बोने के लिए वह जमीन उपयुक्त है, जहाँ पर नदी का जल एक बार घूम गया हो, साग-सब्जी बोने के लिए कुए के आस-पास की जमीन उपयुक्त

है, जई आदि बोने के लिए झील तथा तालाबों के किनारे की गीली जमीन उपयुक्त है, धनिया, जीरा, खस, नेत्रवाला तथा कचालू आदि बोने के लिए ऐसे खेत उपयुक्त हैं जिनके बीच में तालाब बने हों, सूखी और गीली जमीन में जिन-जिन अनाजों की अधिक उपज हो उनको समझ कर बोना चाहिये।

(२०) धान के बीजों को सात दिन तक रात की ओस और दिन की धूप में रखना चाहिय। मूंग, उड़द आदि के बीजों को इसी प्रकार तीन दिन-रात या पाँच दिन-रात ओस और धूप में रखना चाहिये, बोये जाने वाले ईख के पोरों की कटी हुई जगहों में शहद, घी या सूअर की चर्बी के साथ गोबर मिला कर लगा देना चाहिये, सूरन, शकरकन्द आदि कन्दफलों के कटे हुए स्थानों पर गोबर-शहद का लेप अथवा घी का लेप करना चाहिये, कपास आदि के बीजों को गोबर आदि से लपेट कर बोना चाहिये, आम, कटहल आदि व क्षों के बीजों को किसी गढ़ढे में डाल कर कुछ गर्मी दी जाने के बाद उन्हें गाय की हड्डी और गोबर के साथ मिलाकर रखा जाना चाहिये। निष्कर्ष यह है कि इन सब प्रकार के बीजों का यथाविधि संस्कार करके फिर इनको खेत में बोना चाहिये।

(२१) बीज बोने के बाद जब उनमें अंकुर निकल जायें तब उनमें छोटी मछलियों की खाद छुड़वा देनी चाहिये और उन्हें सेहुड़ के दूध से सींचना चाहिये।

(२२) सांप की केंचुली और बिनौलों को एक साथ मिलाकर जला दिया जाये, जहाँ तक उसका धुआँ फैलेगा वहाँ तक कोई भी साँप नहीं ठहर सकता।

(२३) बोने से पहले हरेक बीज को सुवर्ण से स्पर्श हुए जल में भिगोना चाहिये और तब बोते समय बीज की पहली मुट्ठी भरकर यह मन्त्र पढ़ना चाहिये - 'प्रजापति, सूर्यूपुत्र और मेघ, तुम्हारी सदैव हम वन्दना करते हैं, हे धरती माता, हमारे बीजों और अनाजों में सदा व द्धि होती रहे।'

(२४) खेतों की रखवाली करने वाले ग्वाले, दास और नौकर आदि प्रत्येक को उसकी मेहनत के अनुसार भोजन-वस्त्र आदि दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन्हें प्रतिमास सवा पण नियत वेतन मिलना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे कारीगरों को भी उनके परिश्रम के अनुसार भोजन, वस्त्र और वेतन आदि दिया जाना चाहिये।

(२५) पेड़ों से अपने आप गिरे हुए फल-फूलों को देवकार्य के लिए तथा गेहूँ, जौ आदि अन्नों को इष्ट देवता का भोग लगाने के लिए श्रोत्रिय और तपस्वी लोग उठा लें। खलिहान उठ जाने पर जो अन्न के दाने पड़े रह जायें उन्हें सीता बीनकर गुजर करने वाले लोग उठा लें।

(२६) ठीक समय पर तैयार हुई फसल को सुरक्षित स्थान में रखवा देना चाहिये, पुआल और भूसा आदि असार वस्तुओं को भी उठाकर ले जाना चाहिये।

(२७) अनाज रखने का स्थान कुछ ऊँची जगह में बनवाना चाहिये, उसी प्रकार के मजबूत तथा घिरे हुए अन्नागारों को बनवाना चाहिये, उनके ऊपरी हिस्से न तो आपस में मिले हुए हों और न वे खाली हों।

(२८) कटे हुए अनाज को रखने की जगह और दाँई लेने की जगह दोनों आस-पास होने चाहिये। खलिहान में काम करने वाले व्यक्ति अपने पास आग न रखे किन्तु उनके पास जल का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २५

सुराध्यक्षः

(१) सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान् दुर्गे जनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेदेकमुखमनेकमुखं वा, विक्रयक्रयवशेन वा। षट्छतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थापयेत्। ग्रामादनिर्णयनमसम्पातं च सुरायाः, प्रमादभयात् कर्मसु निर्दिष्टानां मर्यादातिक्रमभयादार्याणाम्। उत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम्।

(२) लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धकुडुवं कुडुबमर्धप्रस्थं प्रस्थं वेति ज्ञतशौचा निर्हरेयुः।

(३) पानागारेषु वा पिबेयुरस चारिणः।

(४) निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादीनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत्। अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च।

(५) न चानर्घेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः। तामन्यत्र विक्रापयेत्। दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात्। वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात्।

(६) पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्ति ऋतुसुखानि कारयेत्।

(७) तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्युरागन्तूँश्च।

(८) क्रेतृणां मत्तसुप्तानामलङ्काराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः। तन्नाशे वणिजस्तच्च तावच्च दण्डं दद्युः।

(९) वणिजस्तु संव तेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनां वास्तव्यानां च आर्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः।

(१०) मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनाम्।

(११) उदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः।

(१२) द्वादशाढकं पिष्टस्य प च प्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसम्भारः प्रसन्नायोगः।

(१३) कपित्थतुला फाणितं प चतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासवयोगः। पादाधिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्ठः।

(१४) चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकशो विकाराणामरिष्टाः।

(१५) मेषश ङ्गीत्वक्क्वाथाभिषुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसम्भारस्त्रिफलयुक्तो वा मैरेयः। गुडयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासम्भारः।

(१६) म द्वीकारसो मधु। तस्य स्वदेशे व्याख्यानं कापिशायनं हारहूरकमिति।

(१७) माषकलनीद्रोणमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकतण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभागयुक्तः किण्वबन्धः।

(१८) पाठालोध्रतेजोवत्येलाबालुकमधुमधुसाप्रियङ्गुदारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च प चकर्षिकः सम्भारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च। मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादनी च।

(१९) चोचचित्रकविडङ्गजपिप्पलीनां च कर्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसम्भारः दशभागश्चैषां बीजबन्धः।

(२०) प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः।

(२१) सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा सम्भारिकी वा।

(२२) तासां मोरटापलाशपत्तूरमेषश्‍ङ्गीकर जक्षीरव क्षकषायभावितं दग्धकटशर्कराचूर्णं लोध्रचित्रकबिडङ्गपाठामुस्ताकलिङ्गयवदारुहरिद्रेन्दीवरशतपुष्पापामार्गसप्तपर्ण-निम्बास्फोतकल्कार्धयुक्तमन्तर्नखो मुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति। फाणितः प चपलिकश्चात्र रसव द्विर्देयः।

(२३) कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं लभेरन्।

(२४) उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहः सौरिको देयः। तेष्वननुज्ञातानां प्रवहणान्तं दैवसिकमत्ययं ग ह्णीयात्।

(२५) सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः।

(२६) अराजपण्याः प चकं शतं शुल्कं दद्युः। सुरकामेदकारिष्टमधुफलाम्लशीधूनां च।

(२७) अह्नश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः।

तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे सुराध्यक्षो नाम प चविंशो ध्यायः, आदितः प चचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) आबकारी विभाग के अध्यक्ष (सुराध्यक्ष) को चाहिये कि वह दुर्ग, जनपद अथवा छावनी आदि में सुरा के व्यापार का प्रबन्ध, शराब के बनाने वाले तथा बेचने वाले निपुण व्यक्तियों के द्वारा करवाये, शराब का ठेका एक बड़े व्यापारी को दिया जाये या अनेक छोटे-छोटे व्यापारियों को, अथवा क्रय-विक्रय की जैसी व्यवस्था उचित जंचे, तदनुसार ही उसकी बिक्री का प्रबन्ध किया जाये। ठेकों के अलावा अन्यत्र शराब बनाने, बेचने और खरीदने वालों पर ६०० पण जुर्माना किया जाये। शराब तथा शराबी को गाँव से बाहर, एक घर से दूसरे घर अथवा भीड़ में न जाने दिया जाये, क्योंकि ऐसा करने से एक तो राजकीय कर्मचारी कार्यों की हानि करने लगेंगे, दूसरे में आर्य लोग अपनी मर्यादा को भंग कर सकते हैं और तीसरे में तेज मिजाज सैनिक हथियारों का भी प्रयोग कर सकते हैं।

(२) सुविदित आचार-व्यवहार वाले लोग चौथाई कुडव, आधा कुडव, एक कुडव, आध प्रस्थ या एक प्रस्थ मुहरबन्द शराब साथ भी ले जा सकते हैं।

(३) जिन लोगों को शराब साथ ले जाने की आज्ञा न हो वे मदिरालय में ही बैठकर शराब पीयें।

(४) यदि कोई व्यक्ति धरोहर, गिरवी, चोरी-डाका आदि के धन और सोना-चांदी आदि वस्तुओं को शराबखाने में गिरवी रखकर पीयें तो उसको वहाँ से बाहर कर किसी दूसरे बहाने से नगराध्यक्ष के हवाले करा देना चाहिये। इसी प्रकार जो व्यक्ति आमदनी से अधिक या बिना आमदनी के ही फिजूल खर्च करे उसे भी गिरफ्तार करा देना चाहिये।

(५) थोड़ी कीमत पर, उधार या ब्याज सहित अदा होने के मूल्य पर बढ़िया शराब न बेचनी चाहिये, बल्कि ऐसे खरीददारों को घटिया शराब देनी चाहिये। घटिया शराब को बढ़िया शराब की दुकानों से न बेचना चाहिये। घटिया शराब या तो दास जैसे छोटे कर्मचारियों को वेतन के रूप में दे देनी चाहिये, अथवा बैल-ऊँट की सवारी हाँकने वालों तथा सूअर का पालन-पोषण करने वालों को दे देनी चाहियें

(६) शराबखानों में अनेक ड्योढियाँ होनी चाहिये, लेटने तथा बैठने के लिए अलग-अलग कमरे

होने चाहिए, शराब पीने के लिए अलग स्थान होने चाहिएं, उनमें सुगन्धित द्रव्यों एवं पानी आदि का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये, ये सभी स्थान ऐसे बने हों, जो मौसम में सुखद हों।

(७) सरकारी गुप्तचर को चाहिये कि वह प्रतिदिन शराब की खपत तथा खर्च का हिसाब रखे और यह भी निगरानी रखे कि बाहर से कौन-कौन व्यक्ति वहां आते हैं।

(८) शराब के नशे में बेहोश हो जाने वाले लोगों के जेवर, वस्त्र और नकदी का भी गुप्तचर ध्यान रखे। यदि बेहोश हालत में शराबियों की कोई चीज चोरी हो जाये तो उसको ठेकेदार ही अदा करे, वरन्, वह उतनी ही लागत का जुर्माना राजा को भी अदा करे।

(९) ठेकेदार को चाहिये कि वह चतुर एवं सुन्दरी दासियों के द्वारा, अलग-अलग कमरों में बेहोश उन बाहर से आये या नगर के रहने वाले, ऊपर से आर्य लगने वाले, शराबियों को भीतरी भावों का पता लगाये।

(१०) शराब कई प्रकार की होंती है १. मेदक, २. प्रसन्ना, ३. आसव, ४. अरिष्ट, ५. मैरेय और ६. मधु।

(११) एक द्रोण जल, आधा आढक चावल और तीन प्रस्थ सुराबीज (किण्व), इनके मेल से जो शराब बनाई जाती है उसका नाम मेदक है।

(१२) बारह आढक चावल की पिट्ठी, पाँच प्रस्थ सुराबीज अथवा उसी जगह पुत्रक (व क्ष) की छाल तथा फलों सहित जाति-संभार मिलाकर प्रसन्ना शराब तैयार की जाती है।

(१३) सौ पल कैथफल का सार, पाँच सौ पल राब और एक प्रस्थ शहद को एक साथ मिलाकर आसव शराब बनाई जाती है। उक्त वस्तुओं के योग को यदि सवापण कर दिया जाये तो उत्तम आसव और पौना कर दिया जाये तो घटिया आसव कहा जाता है।

(१४) प्रत्येक रोग का अरिष्ट उसी प्रकार तैयार किया जाना चाहिये, जैसा कि रोग के अनुसार वैद्य बतलाये।

(१५) मेढासिंगी की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें गुड़, पीपल और मिर्च का चूर्ण या पीपल, मिर्च की जगह त्रिफला का पूर्ण किलाया जाये तो मैरेय शराब तैयार हो जाती है। गुड़ वाली सभी शराबों में त्रिफला का चूर्ण मिलाना आवश्यक है।

(१६) दाख या अंगूर के रस से जो शराब बनाई जाती है उसी का नाम मधु है। अपने देश में उसके दो नाम हैं : कापिशायन और हारहूरक।

(१७) एक द्रोण उड़द का कल्क, उसका तीसरा भाग चावल और एक-एक कर्ष मोरटा आदि वस्तुएं एक साथ मिलाकर किण्व सुरा बनती है, उसी को मद्यबीज या सुराबीज भी कहते हैं।

(१८) पाठा, लोध, गजपीपल, इलाइची, इत्र, मुलहटी, दूध, केशर, दारुहल्दी, मिर्च और पीपल, इन सब चीजों का पाँच-पाँच कर्ष मिला देने से सम्भारयोग तैयार होता है, जो मेदक और प्रसन्ना सुरा में मिलाया जाता है। मुलहटी के काढ़े में रबादार शक्कर मिलाकर यदि मेदक तथा प्रसन्ना में छोड़ दिया जाये तो उनका रंग निखर आता है।

(१९) दालचीनी, चीता, बायविडंग और गजपीपल का एक-एक कर्ष, सुपारी, मुलहटी मोथा तथा लोध का दो-दो कर्ष लेकर इन सब को आपस में मिला दिया जाये तो आसव सुरा का मसाला बन जाता है। दालचीनी आदि उक्त वस्तुओं का दसवां भाग बीजबन्ध कहलाता है।

(२०) प्रसन्ना नामक सुरा का जो योग बताया गया है वही श्वेतसुरा का भी समझना चाहिये।

(२१) सुरा के चार भेद हैं : १. सहकारसुरा, २. रसोत्तरा, ३. बीजोत्तरा, इसी को महासुरा भी कहते हैं और ४. संभारिकी।

(२२) इन सभी शराबों की सफाई एवं निखार का तरीका इस प्रकार है : मरोरफली, पलाश, लोहमारक, मेढ़ासिंगी, कर जवा तथा क्षीर व क्ष के काढ़े में भावना दिया गया गर्म रवादार शक्कर का चूरा, उसका आधार लोध, चीता, बायविड्ग, पाठा, मोथा कलिंगज जौ, दारु-हल्दी, कमल, सौंफ, चिरचिड़ा, सप्तपर्ण, नींव और आखे का फूल, इन सबका पिसा हुआ चूर्ण एकत्र करके यदि उसकी एक मुट्ठी, एक खारी परिमाण शराब में डाल दी जाये तो शराब का रंग इतना निखर उठता है कि वह राजाओं तक को मोहित कर लेती है। स्वाद बढ़ाने के लिए उसमें पांच पल राब अधिक मिला देनी चाहिये।

(२३) नगर तथा जनपद के निवासी विवाह आदि उत्सवों में श्वेतसुरा और दवाई के लिए आसव अथवा मेदक आदि सुरा अपने घर में बना सकते हैं।

(२४) उत्सवों में, मित्र-बन्धुओं के समाज में और तीर्थयात्रा के अवसर पर, सुरा के अध्यक्ष को चार दिन तक सुरा पीने की इजाजत दे देनी चाहिये। यदि इन उत्सवों में कोई भी व्यक्ति बिना आज्ञा प्राप्त किये शराब पिये पकड़ा जाये तो उत्सव समाप्त होने पर उसको यथोचित दण्ड दिया जाना चाहिये।

(२५) सुरा को बनाने एवं उसका मसाला तैयार करने के लिए स्त्रियों और बालकों को नियुक्त करना चाहिये।

(२६) बिना राजाज्ञा के जो व्यक्ति उत्सवों के अवसर पर शराब बेचें वे साधारण शराब, मेदक, अरिष्ट, मधु, ताड़ी और रसोत्तरा आदि सुराओं का पाँच प्रतिशत शुल्क अदा करें।

(२७) इस शुल्क की अदायगी के अतिरिक्त सुराध्यक्ष दैनिक बिक्री और तोल-माप की उचित जानकारी प्राप्त कर नाप-तौल पर सोलहवाँ हिस्सा और नकद आमदनी पर बीसवाँ हिस्सा टैक्स वसूल करे, किन्तु उनके साथ सदा ही उचित व्यवहार बर्ताव बनाये रखे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में सुराध्यक्ष नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २६

सूनाध्यक्षः

(१) सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च म गपशुपक्षिमत्स्यानां बन्धवधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत्। कुटुम्बिनामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम्।

(२) अप्रव त्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्तविंशतिपणमत्ययं कुर्यात्, म गपशूनां द्विगुणम्।

(३) प्रव त्तहिंसानामपरिग हीतानां षड्भागं ग ह्णीयात्। मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं, म गपशूनां शुल्कं वाधिकम्।

(४) पक्षिम गाणां जीवत्षड्भागमभयवनेषु प्रमु चेत्।

(५) सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषव षगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेयास्तटाककुल्योद्भवा वा, क्रौ चोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीव जीवकभ ङ्गराजचकोरमत्तकोकिलमयूरशुक-मदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चा न्ये पि प्राणिनः पक्षिम गा हिंसाबाधेभ्यो रक्ष्याः। रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः।

(६) म गपशूनामनस्थिमांसं सद्योहतं विक्रीणीरन्। अस्थितः प्रतिपातं दद्युः। तुलाहीने हीनाष्टगुणम्।

(७) वत्सो व षो धेनुश्चैषामवध्याः। घ्नतः प चाशत्को दण्डः। क्लिष्टघातं घातयतश्च।

(८) परिसूनमशिरःपादास्थि विगन्धं स्वयंम तं च न विक्रीणीरन्। अन्यथा द्वादशपणो दण्डः।

(९) दुष्टाः पशुम गव्याला मत्स्याश्चाभयचारिणः।
अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवाप्नुयुः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे सुनाध्यक्षो नाम षड्विंशो ध्यायः, आदितोः षट्चत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) सरकारी जंगलों या ऋषियों के आश्रमों में रहने वाले ऐसे म ग, गैंडा, भैंसा, मोर तथा मछलियाँ, जिनको मारने-पकड़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, कोई भी व्यक्ति उनको मारे, पकड़े या क्षति पहुँचाये तो सून (वधस्थान) का अध्यक्ष उसे उत्तम साहस दण्ड दिलवाये। कोई राजपरिवार के व्यक्ति इस आज्ञा का उल्लंघन करें तो उन्हें मध्यम साहस दण्ड देना चाहिये।

(२) पक्षी और मछली जैसे अहिंसक प्राणियों को पकड़ने, प्रहार करने या मारनेवाले व्यक्ति को पौने सत्ताईस पण का दण्ड दिया जाये। जो व्यक्ति म ग और पशुओं का वध करे उसको दुगुना दण्ड दिया जाये।

(३) जो हिंसक जानवर हों, जिनका कोई मालिक न हो, जो सरकारी जंगलों या ऋषि-आश्रमों के न हों, उनका जो शिकार करे उससे सूनाध्यक्ष छठा हिस्सा सरकारी टैक्स के रूप में ले ले। इसी प्रकार मछली तथा पक्षियों का दसवाँ हिस्सा या उससे कुछ अधिक और म ग आदि, पशुओं का भी दसवाँ हिस्सा या कुछ अधिक राजभाग ले लेना चाहिये।

(४) अरक्षित जंगलों से पकड़े हुए पक्षी और म ग आदि का छठा भाग लेकर उन्हें सरकारी जंगलों में छोड़ देना चाहिये।

(५) समुद्र में पैदा होने वाले; हाथी, घोड़े, पुरुष, बैल, गधा आदि की आकृति वाले मत्स्य, सारस आदि जलचर प्राणी; तालाबों, झीलों, नदियों एवं नहरों में पैदा होने वाली मछलियाँ, क्रोंच, टिटहरी, जलकौवा, हंस, चक्रवाक, जीवंजीवक, भ ृंगराज, चकोर, मत्तकोकिल, मोर, तोता, मदन मैना और बुलबुल, तीतर, बटेर तथा मुर्गा आदि क्रीड़ायोग्य पक्षियों की रक्षा करनी चाहिये। इनको कोई मारे, पकड़े तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(६) म ग और पशुओं का हड्डी-रहित ताजा मांस बाजार में बेचना चाहिये। मांस यदि हड्डी सहित हो तो हड्डी के वजन का अधिक मांस दिया जाना चाहिये। यदि मांस तोलने में कपट किया जाये तो तौलने वाले से आठ गुना मांस दण्डरूप में वसूल करना चाहिये, जिसमें आठवाँ हिस्सा खरीददार का और बाकी सात हिस्से सूनाध्यक्ष के हैं।

(७) पशुओं में म ग, बछड़ा, साँड और गाय, इन्हें कभी न मारना चाहिये। जो व्यक्ति उनमें से किसी एक को भी मारे वह पचास पण का दण्डभागी है। दूसरे पशुओं को यातना देकर मारने वाले व्यक्तियों पर भी पचास पण जुर्माना करना चाहिये।

(८) कसाईखाने से बाहर मारे हुए जानवरों का मांस, शिर, पैर तथा हड्डी-रहित मांस, बदबू वाला मांस, रोग आदि के कारण स्वयं मरे हुए जानवर का मांस बाजारों में न बेचा जाये। जो इस नियम का उल्लंघन करता हुआ पकड़ा जाये उस पर बारह पण जुर्माना कर दिया जाये।

(९) राज-रक्षित जंगलों के हमलावर जानवर, नीलगाय, पशु, म ग और मछली आदि वनचर-जलचर प्राणी यदि सुरक्षित जंगलों से बाहर चले जायें तो उनको मारा या पकड़ा जा सकता है।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २७

गणिकाध्यक्षः

(१) गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत्। कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम्।

(२) निष्पतिताप्रेतयोर्दुहिता भगिनी वा कुटुम्बं भरेत। तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत्। तासामभावे राजा हरेत्।

(३) सौभाग्यालङ्कारव द्ध्या सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत्। छत्रभ ङ्गारव्यजनशिबिकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम्

(४) सौभाग्यभङ्गे मात कां कुर्यात्।

(५) निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः। द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य। अष्टवर्षात्प्रभ ति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात्।

(६) गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात्। अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात्।

(७) भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकाया निबन्धयेत्। अतिव्ययकर्म च वारयेत्।

(८) मात हस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः। स्वापतेयं विक्रयमाधानं नयन्त्याः सपादप चाशत्पणो दण्डः।

(९) चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये। द्विगुणो दण्डपारुष्ये। सपादप चाशत्पणः प्रणो र्धपणश्च कर्णच्छेदने।

(१०) अकामायाः कुमार्या वा साहसे उत्तमो दण्डः। सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः।

(११) गणिकामकामां रुन्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुपघ्नतः सहस्रदण्डः। स्थानविशेषेण वा दण्डव द्धिरानिष्क्रयद्विगुणात् पणसहस्रं वा दण्डः।

(१२) प्राप्तधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयात्त्रिगुणो दण्डः। मात कादुहित कारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः।

(१३) सर्वत्र। प्रथमे पराधे प्रथमः, द्वितीये द्विगुणः, त तीये त्रिगुणः, चतुर्थे यथाकामी स्यात्।

(१४) राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत, प चसहस्रं वा दण्डः।

(१५) भोगं ग हीत्वा द्विषत्या भोगद्विगुणो दण्डः। वसतिभोगापहारे भोगमष्टगुणं दद्यात्, अन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः।

(१६) पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापो प्सु प्रवेशनं वा।

(१७) गणिकाभरणमर्थं भोगं वा पहरतो ष्टगुणो दण्डः। गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत्।

(१८) एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणस्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढ़ाजीवाश्च व्याख्याताः।

(१९) तेषां तूर्यमागन्तुकं प चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात्।

(२०) रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः।

(२१) गीतवाद्यपाठ्यन त्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुम दङ्गपरचितज्ञानगन्धमाल्यसंयूहनसम्पादन-संवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात्।

(२२) गणिकापुत्रान् रंगोपजीविनश्च मुख्यान् निष्पादयेयुः सर्वतालावचराणां च।

(२३) संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु।

चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे गणिकाध्यक्षो नाम सप्तविंशो ध्यायः, आदितः सप्तचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) वेश्यालयों की व्यवस्था करने वाले राजकीय अधिकारी को चाहिये कि रूप, यौवन से सम्पन्न एवं गायन-वादन में निपुण स्त्री को, चाहे वह वेश्याकुल से सम्बद्ध हो या न हो, एक हजार पण देकर गणिका (वेश्या) के कार्य पर नियुक्त करे। इसी प्रकार दूसरी गणिकाओं को नियुक्त किया जाये और एक सहस्त्र पण में से आधा उन्हें तथा आधा उनके परिवार को दे दिया जाये।

(२) यदि कोई गणिका दूसरी जगह चली जाये या मर जाये तो उसकी जगह उसकी लड़की या बहिन नियुक्त होकर परिवार का पोषण करे अथवा उसकी माता उसकी जगह किसी दूसरी गणिका को नियुक्त करे। यदि ऐसा भी सम्भव न हो सके तो उसकी सम्पति को राजा ले ले।

(३) वेश्याओं की तीन श्रेणियां हैं : १. कनिष्ठ, २. मध्यम और ३. उत्तम। सौन्दर्य तथा सजावट में सबसे कनिष्ठ वेश्या का वेतन एक हजार पण, सौन्दर्य तथा सजावट में उससे अच्छी मध्यम वेश्या का वेतन दो हजार पण, और हर एक बात में चतुर उत्तम वेश्या का वेतन तीन हजार पण होता है। कनिष्ठ वेश्या छत्र तथा इत्रदान लेकर राजा की सेवा करे, मध्यम वेश्या पालकी के साथ रहकर राजा को व्यजन करे और उत्तम वेश्या राजसिंहासन तथा रथ आदि के निकट रहकर राजा की परिचर्या करे।

(४) जब गणिकाओं का सौन्दर्य जाता रहे और उनकी जवानी ढल जाये, तब उन्हें खाला (मात का) के स्थान पर नियुक्त कर देना चाहिये।

(५) जो गणिकाएं राजव त्ति से अपने को मुक्त करना चाहें, वे राजा को चौबीस हजार पण देकर स्वतन्त्र हो सकती हैं। यदि वेश्यापुत्र राजसेवा से निव त्त होना चाहे तो वह बारह हजार पण अदा करे। यदि वह मुक्त होने का मूल्य अदा करने में असमर्थ हो तो आठ वर्ष तक राजा के यहाँ चारण का कार्य कर अपने आपको मुक्त कर सकता है।

(६) वेश्या की दासी जब बूढ़ी हो जाये तो उसे कोष्ठागार या रसोई के कार्य में नियुक्त कर देना चाहिये। यदि वह काम न करना चाहे और किसी पुरुष की स्त्री बन कर रहना चाहे, वह प्रतिमास उस गणिका को सवा पण वेतन दे।

(७) गणिकाध्यक्ष को चाहिये कि वह वेश्याओं के भोगधन, माता से मिला धन, संभोग के अतिरिक्त आमदनी और भावी-प्रभाव आदि को रजिस्टर में दर्ज करता रहे, और उन्हें अधिक खर्च करने से रोकता रहे।

(८) यदि गणिका अपने आभूषणों को अपनी माता के सिवा किसी दूसरे के हाथ सौंपे तो उसे सवा चार पण दण्ड दिया जाये। यदि वह अपने गहने, कपड़े, बर्तन आदि को बेचे या गिरवी रखे तो उस पर सवा पचास पण का दण्ड किया जाये।

(६) यदि वह किसी के साथ कठोरता का बर्ताव करे तो उसे चौबीस पण का दण्ड दिया जाये। यदि वह हाथ, पैर, लाठी आदि से प्रहार करे तो दुगुना दण्ड दिया जाये। यदि वह किसी का कान, हाथ काट ले तो उसे पौने बावन पण का दण्ड दिया जाये।

(१०) यदि कोई पुरुष कामनारहित कुमारी पर बलात्कार करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड देना चाहिये। जो इच्छा करने वाली कुमारी के साथ संभोग करे उसे भी प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(११) जो पुरुष किसी कामनारहित वेश्या को जबरदस्ती अपने घर में रोक कर रखे या कोई चोट तथा घाव कर उसके रूप को क्षति पहुंचाये उस पुरुष को एक हजार पण से दण्डित करना चाहिये। शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों को चोट पहुंचाने पर, उन-उन स्थानों की विशेषताओं के अनुसार अधिक दण्ड दिया जा सकता है, यह दण्ड-राशि अड़तालीस हजार पण तक ली जा सकती है।

(१२) राजा की सेवा में नियुक्त वेश्याओं को मारने वाले व्यक्ति पर बहत्तर हजार पण दण्ड किया जाये। खाला, वेश्यापुत्री और वेश्या को मारने-पीटने वाले को उत्तम साहस दण्ड दिया जाये।

(१३) पूर्वोक्त सारी दण्ड-व्यवस्था एक बार अपराध करने वालों के लिए निर्दिष्ट है। यह कोई अपराधी उसी अपराध को दुहराये तो दुगुना दण्ड, तिहराये तो तिगुना दण्ड, और चौथी बार भी उसी अपराध को करे तो चौगुना दण्ड अथवा सर्वस्वहरण, देश निकाला आदि जो भी उचित हो, उसे दण्ड दिया जाये।

(१४) राजा की आज्ञा होने पर यदि कोई वेश्या किसी विशिष्ट व्यक्ति के पास जाने से इन्कार कर दे तो उस पर एक हजार कोड़े लगवाये जायें अथवा उस पर पाँच हजार पण जुर्माना किया जाये।

(१५) यदि कोई वेश्या संभोग-शुल्क लेकर धोखा कर दे तो उस पर संभोग-शुल्क से दुगुना जुर्माना करना चाहिये। यदि पूरी रात का शुल्क लेकर गणिका किस्सा-कहानियों या दूसरे बहानों में ही सारी रात टाल दे तो उस पर शुल्क का आठ गुना दण्ड किया जाना चाहिये, किसी संक्रामक रोग या किसी दोष के कारण गणिका यदि संभोग कराने को तैयार न हो तो उसे अपराधिनी न समझा जाये।

(१६) यदि कोई गणिका संभोग-शुल्क लेकर किसी पुरुष को मरवा डाले तो गणिका को उस पुरुष के साथ जीवित ही चिता में जला देना चाहिये, अथवा उसके गले में पत्थर बाँधकर उसको पानी में डुबो देना चाहिये।

(१७) यदि कोई पुरुष किसी गणिका के वस्त्र, आभरण या संभोग से प्राप्त धन को चुरा ले तो उसे उस धन का आठ गुना दण्ड दिया जाये। गणिका को चाहिये कि वह अपने संभोग, अपनी आमदनी और अपने साथ रहने वाले पुरुष की सूचना गणिकाध्यक्ष को बराबर देती रहे।

(१८) यही दण्ड-विधान और यही व्यवस्था उन लोगों के लिये भी है जो नट, नर्तक, गायक, वादक, कथावाचक, कुशीलव, प्लवक, जादूगर, चारण हैं तथा जो कोई भी स्त्रियों द्वारा जीविका-निर्वाह करते हैं, और वे स्त्रियां जो छिपकर व्यभिचार करती हैं।

(१६) बाहर से आई हुई नट-मण्डली प्रत्येक खेल पर पाँच पण राजकर के रूप में अदा करे।

(२०) रूप से जीविका कमाने वाली वेश्या अपनी मासिक आमदनी के हिसाब से दो दिन की कमाई कर रूप में राजा को दे।

(२१) गाना, बजाना, नाचना, नाटक करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणावेणु-म दंग बजाना,

दूसरे के मन को पहचानना, सुगन्धित द्रव्यों को बनाना, माला गूँथना, पैर दबाना, शरीर सजाना आदि कार्यों में निपुण लोगों की और गणिका, दासी तथा नर्तकियों को कलाओं का ज्ञान देने वाले आचार्यों की आजीविका का प्रबन्ध नगरों तथा गांवों से आने वाली आय द्वारा किया जाना चाहिये।

(२२) वेश्यापुत्रों, नाचने-गाने वालों और इसी प्रकार के अन्य लोगों को वेश्याओं का शिक्षक नियुक्त करना चाहिये।

(२३) नट-नर्तक आदि पुरुषों को धन का लालच देकर राजा अपने वश में कर ले और तब, अनेक भाषायें बोलने वाली तथा अनेक प्रकार के वेश बनाने वाली उनकी स्त्रियों को शुत्र के गुप्तचरों का वध करने अथवा उनको विषयवासनाओं में फँसाने के लिये नियुक्त कर दे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में गणिकाध्यक्ष नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २८

नावध्यक्षः

(१) नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान् देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेत।

(२) तद्वेलाकूलग्रामाः क्ल प्तं दद्युः।

(३) मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः। पत्तनानुव त्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः। यात्रावेतनं राजनौभिः सम्पतन्तः शंखमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः, स्वनौभिर्वा तरेयुः।

(४) अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः।

(५) पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत्।

(६) मूढवाताहतां तां पितेवान ग ह्णीयात्। उदकप्राप्तं पण्यशुल्कमर्धशुल्कं वा कुर्यात्।

(७) यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेषयेत्। संयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत। हिंस्रिका निर्घातयेद्, अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च।

(८) शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो हेमन्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रयोजयेत्। क्षुद्रिकाः क्षुद्रिकासु वर्षास्राविणीषु।

(९) बद्धतीर्थाश्चैताः कार्याः राजद्विष्टकारिणां तरणभयात्। अकाले तीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः।

(१०) अकाले तीर्थे चानिस ष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणस्तरात्ययः।

(११) कैवर्त काष्ठत णभारपुष्पफलवाटषण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां च सेनाभाण्डप्रचारप्रयोगाणां च। स्वतरणैस्तरताम्। बीजभक्तद्रव्योपस्करांश्चानूपग्रामाणां तारयताम्।

(१२) ब्राह्मणप्रव्रजितबालव द्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः।

(१३) कृतप्रवेशाः पारविषयिकाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः।

(१४) परस्य भार्या कन्यां वित्तं वापहरन्तं शंकितमाविग्नमुद्भाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योग हीतलिङ्गिनमलिङ्गिनं वा प्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणं गूढसारभाण्डशासनशस्त्राग्नियोगं विषहस्तं दीर्घपथिकमुद्रं चोपग्राहयेत्।

(१५) क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो माषकं दद्यात्। शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ। उष्ट्रमहिषं चतुरः। प च लघुयानम्। षड् गोलिङ्गम्। सप्त शकटम्। पण्यभारः पादम्।

(१६) तेन भाण्डभारो व्याख्यातः। द्विगुणो महानदीषु तरः।

(१७) क्ल प्तमानूपग्रामा भक्तवेतनं दद्युः।

(१८) प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च ग ह्णीयुः। निर्गच्छतश्चामुद्रस्य भाण्डं हरेयुः। अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च।

(१९) पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वाभ्यावहेत्।

(२०) सप्ताहव त्तामाषाढीं कार्तिकीं चान्तरा तरः।

कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे नावध्यक्षो नाम अष्टाविंशो ध्यायः, आदितो ष्टचत्वारिंशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) नौका-परिवहन के अधिकारी को चाहिये कि वह समुद्र तट की समीपवर्ती नदी को, समुद्र के नौका-मार्गों को, झीलों, तालाबों और गाँव के छोटे-छोटे जलीय मार्गों को भली-भाँति देखता रहे।

(२) समुद्र, झील तथा नदियों के किनारों पर बसे हुए ग्रामीणों को चाहिये कि वे राजा को नियत कर दें।

(३) मछुआरों को चाहिये कि वे अपनी आमदनी का छठा हिस्सा कर रूप में राजा को दें। समुद्र तट के व्यापारी, बन्दरगाहों के नियमानुसार माल के मूल्य का पांचवां या छठा भाग टैक्स दें। सरकारी नौकाओं द्वारा माल लाने-ले जाने का भाड़ा वे अलग से दें। इसी प्रकार शंख और मोती ले जाने वाले व्यापारी नाव का भाड़ा अलग से दें, अथवा सरकारी नौकाओं का उपयोग न कर वे निजी नौकाओं से पार उतरें।

(४) मछली, मोती और शंख आदि सामुद्रिक वस्तुओं के सम्बन्ध में खानों के अध्यक्ष की ही भाँति, नाव का अध्यक्ष भी प्रबन्ध करे या उसी व्यवस्था को लागू करे।

(५) नगराध्यक्ष द्वारा नियत किये गये बन्दरगाह-सम्बन्धी नियमों को नावध्यक्ष भली-भाँति पालन करे।

(६) दिशाओं का अन्दाज न रह जाने के कारण या तूफान में फँस जाने के कारण डूबती हुई नौका को अध्यक्ष, पिता के समान अनुग्रह करके बचाये। पानी लग जाने के कारण नुकसान हुए माल का टैक्स माफ कर देना चाहिये या नुकसान को देखते हुए आ धा ही टैक्स लेना चाहिये।

(७) निःशुल्क या आधे शुल्क वाली नौकाओं को बन्दरगाहों की ओर यात्रा करने के समय में भेज दिया जाये या छोड़ दिया जाये। चलती हुई नौकाएं जब चुंगी पर पहुंच जायें तब उनकी चुंगी वसूल की जाये। चोर-डाकुओं की नौकाओं को नष्ट कर दिया जाये। जो नौकाएँ शत्रुदेश की ओर जाती हों या तो व्यापार-नियमों का उल्लंघन करती हों, उन्हें भी तहस-नहस कर दिया जाये।

(८) नाव का कप्तान, नावचालक, लंगड़ डालने वाला, रस्सी या पतवार पकड़ने वाला और नौका में भरे हुए पानी को उलीचने वाला, इन पाँच कर्मचारियों के रहने पर ही बड़ी-बड़ी नौकाओं को गर्मी तथा सर्दी में समान रूप से बहने वाली बड़ी-बड़ी नदियों में चलाने की आज्ञा देनी चाहिये। बरसाती नदियों में चलाने के लिए अलग नौकायें होनी चाहियें।

(९) इन बड़ी नौकाओं के ठहरने के लिए नियत बन्दरगाह होने चाहिये और उन पर पूरी निगरानी रखी जानी चाहिये, जिससे किसी शत्रु राजा के गुप्तचर उनमें प्रवेश न कर सकें।

(१०) कोई भी नाव वाला यदि अनिश्चित समय में ही अनियमित मार्ग से घाट के आर-पार जाये तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त ठीक समय पर और नियत घाट से बिना आज्ञा नाव पार करने वाले व्यक्ति पर पौने सत्ताईस पण दण्ड निर्धारित किया जाये।

(११) धीवर, लकड़हारे, घसियारे, माली, कुंजड़े, खेतों के रखवाले, चोर के डर से पीछे जाने वाले, राजदूत के पीछे शेष कार्य को पूरा करने के लिए जाने वाली सेना, सैनिक सामग्री और गुप्तपुरुषों को बिना समय एवं बिना आज्ञा ही नदी पार करने पर कोई दण्ड न दिया जाना चाहिये। अपनी नाव से नदी पा करने वाले व्यक्तियों पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये। बीज, कर्मचारियों को भोजन-सामग्री, फल, फूल, शाक और मसाला आदि सामान को पार ले जाने वाले व्यक्ति भी दण्ड से मुक्त समझे जायें।

(१२) ब्राह्मण, संन्यासी, बालक, बीमार, राजदूत या हलकारा और गर्भवती स्त्री को नौकाध्यक्ष की मुहर देखकर ही, बिना भाड़ा के पार कर देना चाहिये।

(१३) जिन परदेशियों को पासपोर्ट मिल गया हो अथवा पासपोर्ट प्राप्त व्यापारियों के साथ जिन-जिन व्यक्तियों को आने की अनुमति मिल गई हो, वे ही देश में प्रवेश कर सकते हैं।

(१४) किसी की स्त्री, कन्या या किसी का धन चुरा कर भागने वाले व्यक्ति को आगे बताते हुये लक्षणों से पहचान कर फौरन गिरफ्तार करवा देना चाहिये। वे लक्षण इस प्रकार हैं : यदि वह चौकन्ना-सा नजर आये, ताकत से अधिक बोझा उठाये हो, सिर पर इस प्रकार घास-फूस फैलाये हो कि शक्ल न दिखाई दे, नकली संन्यासी का वेश बनाये हो, संन्यासी वेश बदल कर सादा वेश धारण कर ले, बिमारी का कोई चिह्न न होने पर भी अपने को बीमार जैसा लगाये, डर से मुख की रौनक उतरी हुई हो, बहुमूल्य वस्तुओं को छिपाये हो, गुप्त कागजातों को रखे हो, हथियार छिपाकर रखे हो, जहर आदि को रखे हो, अग्नियोग को छिपाये हो, दूर का सफर करता हो और पासपोर्ट प्राप्त किये बिना ही यात्रा करता हो।

(१५) भेड़, बकरी आदि छोटे जानवरों का और जिस मनुष्य के पास हाथ मे उठाने भर का बोझा हो, एक माषक भाड़ा दे। जिस पुरुष के पास सिर अथवा पीठ से उठाने योग्य बोझा हो और गाय, घोड़ा आदि पशुओं का, दो माषक भाड़ा दिया जाये। ऊँट और भैंस का चार माषक भाड़ा दिया जाना चाहिये। इसी प्रकार छोटी गाड़ी का पांच माषक, मझौली गाड़ी छह माषक और बड़ी बैलगाड़ी का सात माषक भाड़ा देना चाहिये। बीस तुला बोझ का एक चौथाई पण भाड़ा निर्धारित है।

(१६) इसी हिसाब से भैंस या ऊँट आदि पर ढोये जाने वाले भार का भाड़ा समझ लेना चाहिये। बड़ी-बड़ी नदियों की उतराई इससे दुगुनी होनी चाहिये।

(१७) नदियों के किनारे बसे हुए लोग सहकारी टैक्स के अतिरिक्त कुछ निर्धारित भत्ता या वेतन भी मल्लाहों को दें।

(१८) पार उतारने वाले राजकीय मल्लाह सीमाप्रदेशों में व्यापारियों से मार्ग का टैक्स और अन्तपाल को दिया जाने वाला शुल्क भी अदा करें। जो व्यापारी बिना मुहर के माल को निकालते समय पकड़ा जाये उसका सारा माल जब्त कर लिया जाये। जो व्यक्ति, अनियमित भार असमय और बिना घाट के ही पार उतारने की कोशिश करे उसका भी सारा माल जब्त कर लिया जाये।

(१९) मल्लाहों की असावधानी, अन्य आवश्यक साधनों से हीन और बिना मरम्मत की सरकारी नौका यदि डूब जाये तो यात्रियों का सारा हर्जाना नौकाध्यक्ष पूरा करे।

(२०) आषाढ़ी पूर्णिमा से लेकर कार्तिकी पूर्णिमा के एक सप्ताह बाद तक की अवधि के बीच बरसाती नदियों में नौका-कर लिया जाना चाहिये। प्रत्येक मल्लाह को चाहिये कि वह प्रतिदिन के कार्य का विवरण और दैनिक भाग नौकाध्यक्ष के सुपुर्द कर दे।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में नौकाध्यक्ष नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय २६

गो ध्यक्षः

---

(१) गो ध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्स ष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघ तस जातं चोपलभेत।

(२) गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतं शतं धेनूनां हिरण्यभ ताः पालयेयुः। क्षीरघ तभ ता हि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम्।

(३) जरद्गुधेनुगर्भिणीप्रष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत्। घ तस्याष्टौ वारकान् पणिकं पुच्छं अङ्कचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः।

(४) व्याधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नोत्स ष्टकम्।

(५) परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्युरिति भागानुप्रविष्टकम्।

(६) वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो व षा उक्षाणश्चपुंगवाः।

(७) युगवाहनशकटवहा व षभाः सूनामहिषाः प ष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः।

(८) वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता बन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च। मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च। मासद्विमासजातानङ्कयेत्। मासद्विमासपर्युषितङ्कयेत्। अङ्कं चिह्नं वर्णं श ङ्गान्तरं च लक्षणम्, एवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम्।

(९) चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम्।

(१०) पङ्कविषमव्याधिजरातोयाधरावसन्नं व क्षतटकाष्ठशिलाभिहतमीशानव्यालसर्पग्राहदावाग्निविपन्नं विनष्टम्। प्रमादादभ्यावहेयुः।

(११) एवं रूपाग्रं विद्यात्।

(१२) स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः। परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्डं दद्यात्।

(१३) स्वदेशीयानां चोरहृतं प्रत्यानीय पणिकं रूपं हरेत्। परदेशीयानां मोक्षयितार्धं हरेत्।

(१४) बालव द्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः।

(१५) लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरबाधभयम तुविभक्तमरण्यं चारयेयुः।

(१६) सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः।

(१७) समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकमवतारयेयुः पालयेयुश्च। स्तेनव्यालसर्पग्राहग हीतं व्याधिजरावसन्नं च आवेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन्।

(१८) कारणम तस्याङ्कचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्कचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां बालचर्मबस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरश ङ्गास्थीनि चाहरेयुः।

(१९) मांसमाममार्द्रं शुष्कं वा विक्रीणीयुः। उदश्वित् श्ववराहेभ्यो दद्युः। कूर्चिकां सेनाभक्तरर्थमाहरेयुः। किलाटो घाणपिण्याकक्लेदार्थः।

(२०) पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात्।

(२१) वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः। शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम्। द्वितीयकाले दोग्धुरङ्गुष्ठच्छेदो दण्डः।

(२२) दोहनकालमतिक्रामतस्तत्फलहानं दण्डः।

(२३) एतेन नस्यदम्ययुगपिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः।

(२४) क्षीरद्रोणे गवां घ तप्रस्थः। प चभागाधिको महिषीणाम्। द्विभागाधिको जावीनाम्। मन्थो वा सर्वेषां प्रमाणं, भूमित णोदक- विशेषाद्धि क्षीरघ तव द्विर्भवति।

(२५) यूथव षं व षेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः, घातयत उत्तमः।

(२६) वर्णावरोधेन दशतीरक्षाः। उपनिवेशदिग्विभागो गोप्रचाराद् बलान्वयतो वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च। अजावीनां षाण्मासिकीमूर्णां ग्राहयेत्। तेनाश्वखरोष्ट्रवराहव्रजा व्याख्याता।

(२७) बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारः, त णस्य द्विगुणं, तुला घाणपिण्याकस्य, दशाढकं कणकुण्डकस्य, प चपलिकं मुखलवणं, तैलकुडुबो नस्यं, प्रस्थः पानम्। मांसतुला, दध्नश्चाढकं, यवद्रोणं, माषाणां वा पुलाकः। क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः, स्नेहप्रस्थः क्षारदशपलं श ङ्गिबेरपलं च प्रतिपानम्।

(२८) पादोनमश्वतरगोखराणां, द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबलीवर्दानाम्। पायनार्थं च धेनूनाम्। कर्मकालतः फलतश्च विधानम्। सर्वेषां त णोदकप्राकाम्यम्। इति गोमण्डलं व्याख्यातम्।

(२९) प चर्षभं खराश्वानामजावीनां दर्शषभम्।
शक्यं गोमहिषोष्ट्राणां यूथं कुर्याच्चतुर्व षम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे गो घ्यक्षो नाम एकोनत्रिंशो ध्यायः, आदित एकोनप चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) गो, भैंस आदि पालतू पशुओं की देख-रेख में नियुक्त अधिकारी (गो ध्यक्ष) को चाहिये कि वह १. वेतनीपग्राहिक, २. करप्रतिकर, ३. भग्नोत्स ष्टक, ४. भागानुप्रविष्टक, ५. व्रजपर्यग्र, ६. नष्ट, ७. विनष्ट और ८. क्षीरघ तस जात, इन आठों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करें।

(२) गायों को पालने वाले, भैंसों को पालने वाले, गाय, भैंस को दुहने वाले, दही को मथने वाले और हिंसक पशुओं से गाय, भैंस की रक्षा करने वाले, ये पांच-पांच व्यक्ति मिलकर सौ-सौ गाय, भैंसों का पालन करें। वेतन के रूप में इनको या तो नगद रुपया दिया जाये अथवा अन्न-वस्त्र दिये जायें; दूध, दही आदि में इनका कोई हिस्सा नहीं होना चाहिये, क्योंकि दूध, दही में इनका हिस्सा होने के कारण ये लोग बछड़ों को मार देते हैं गाय, भैंस आदि की रक्षा के इस उपाय का नाम वेतनोपग्राहिक है।

(३) बूढ़ी, दूध देने वाली, गाभिन, पठोरी और बछिया, इन पाँच प्रकार की गायों को बीस-बीस के क्रम से सौ बनाकर उन्हें किसी चरवाहे को ठेके पर दिया जाये। इसके बदले में चरवाहा गौओं के मालिक को आठ वारक घी, एक-एक पशु के पीछे एक-एक पण, और सरकारी मुहर से युक्त मरे हुए पशु का एक अदद चमड़ा प्रतिवर्ष दिया करे; रक्षा के इस उपाय को करप्रतिकर कहते हैं।

(४) बीमार, कानी, लंगड़ी, एकहथी, मुश्किल से दुही जाने योग्य और बच्चों को खाने वाली, इन पाँच प्रकार की गायों को भी पूर्ववत्, सौ बनाकर, किसी व्यक्ति को ठेके पर पालने के लिए दिया जाये। गोपालक को चाहिये कि वह स्थिति के अनुसार घी आदि का आधा या तिहाई हिस्सा मालिक को दे दिया करे; इस उपाय का नाम भग्नोत्स ष्टक है।

(५) शत्रुओं अथवा चोरों के डर से जो गोपालक अपनी गायों को सरकारी चरागाह में ही बन्द करके रखें, उसको चाहिये कि वह, गायों की आमदनी का दसवाँ भाग राजा को अदा करे; गाय आदि की रक्षा के इस तौर-तरीके को भागनुप्रविष्टक कहते हैं।

(६) दूध पीने वाला बछड़ा, बड़ा बछड़ा, कृषियोग्य बछड़ा, बोझा ढोने योग्य साँड, बिना बधिया किया हुआ साँड और हल जोतने योग्य बैल, ये छह प्रकार के बैल होते हैं।

(७) जुवा, हल, गाड़ी आदि में जोते जाने योग्य भैंसा, साँड, मांस के उपयोग में आने वाले और बोझा ढोने योग्य, ये चार प्रकार के भैंसे होते हैं।

(८) दूध पीने वाली बछिया, पठोरी, गाभिन, दूध देने वाली, अधेड़ और बाँझ, ये सात प्रकार की गाय-भैंसे हैं। उनके दो महीने या एक महीने के पैदा हुये बछड़ों को उपजा कहते हैं। उन लयेरू बछड़ों को लोहे के गर्म छल्लों से दाग देना चाहिये। दो मास तक सरकारी चरागाह में रहने वाली गाय-भैंसों को भी दाग देना चाहिये, उनके स्वामियों का पता लगे या न लगे। राजकीय मुहर अथवा छल्ले आदि से अंकित गाय-भैसों तथा लयेरू बछड़ों के रंग, सींग आदि विशेष चिह्नों का उल्लेख रजिस्टर में किया जाये। गायों की रक्षा के इस उपाय को व्रजपर्यग्र कहते हैं।

(९) नष्ट गोधन तीन प्रकार का होता है : १. चोरों द्वारा अपहृत, २. दूसरे गोष्ठों में विलयित और ३. अपने गोष्ठ से भ्रष्ट; इसी अवस्था को नष्ट कहते हैं।

(१०) दल-दल में फँसी, गढ़े में गिरी, बीमार, बूढ़ी पानी तथा आहार के अभाव में नष्ट, व क्ष तले दबी, चट्टान या शिलाओं से जख्मी, बिजली गिर जाने से नष्ट, हिंसक जानवरों से आक्रान्त, साँप, नाक्व या जंगली आग से नष्ट, गायों को विनष्ठ कहते हैं। यदि इस प्रकार गाय आदि का विनाश गायों की असावधानी के कारण होवे तो उस हानि को वे स्वयं पूरा करें।

(११) अध्यक्ष को चाहिये कि वह इन सभी बातों की पूरी जानकारी रखे।

(१२) यदि कोई ग्वाला गाय को मारे, या किसी से मरवाये; उसकी चोरी करे या करवाये;तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये। जो गाय भैंस सरकारी नहीं हैं उन पर राजकीय चिह्न कर उनके रूप को बदल देने वाले व्यक्ति को प्रथम साहस दण्ड दिया जाये।

(१३) चोरों से चुराये गये अपने देश के पशुओं को जो व्यक्ति उनके वास्तविक स्वामियों को वापिस कर दे, मालिक से वह प्रति पशु के पीछे एक पण वसूल कर ले। चोरों से छुड़ाये गये परदेश के पशुओं का आधा हिस्सा मालिक का और आधा हिस्सा छुड़ाने वाले का होता है।

(१४) गोपालकों को चाहिये कि वे, बछड़ों, बीमार और बूढ़े पशुओं की उचित परिचर्या करे।

(१५) गोपालकों को चाहिये कि वे शिकारियों, बहेलियों, चोरों, हिंसकों और शत्रु की बाधाओं आदि से सावधान रह कर ऋतु के अनुसार सुरक्षित जंगलों में गायों को चरायें।

(१६) सर्प एवं हिंसक पशुओं को डराने के लिए, चरागाह में गाय की पहचान के लिए और घबराने वाले पशुओं की गर्दन में लोहे की घंटी बाँध देनी चाहिये।

(१७) पशुओं को पानी पिलाने एवं नहलाने के लिये ऐसे स्थान में उतारना चाहिये, जहाँ चोरस घाट बने हों और दलदल एवं हिंसक जलचर जन्तु दोनों न हों; गोपालक पूरी सावधानी से उनकी रक्षा करता रहे। गोपालकों का कर्त्तव्य है कि वे चोर, व्याघ्र, सांप एवं नाक्व आदि से आक्रान्त और बीमारी तथा बुढ़ापे से मरे हुए पशुओं की सूचना अध्यक्ष को दें, अन्यथा म तपशु के नुकसान का दायित्व उन पर समझा जायेगा।

(१८) यदि भैंस मर गई हो तो उसका दगा हुआ चमड़ा; बकरी तथा भेड़ के चिह्नित कान, और घोड़ा, गधा एवं ऊँट की पूंछ लाकर ग्वाला, अध्यक्ष के सामने पेश करे; साथ ही वह मरे हुए

पशु के बाल, चमड़ा, मूत्राशय, पित्ता, आँत, दाँत, खुर, सींग और हड्डी, इन सब चीजों को संग्रह करके रख ले।

(१६) गीले या सूखे मांस को बेच देना चाहिये। मठा को कुत्तों और सूअरों में वितरित कर देना चाहिये। का जी को सैनिकों के लिए देना चाहिये। फटे हुए दूध को गाय भैंसों की सानी में डाल देना चाहिये।

(२०) पशुओं का व्यापारी प्रत्येक पशु के पीछे, उसकी लागत का चतुर्थांश अध्यक्ष को दे।

(२१) ग्वालों को चाहिये कि वे सावन, भादों, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष महीनों में गाय-भैंसों को दो समय दुहें। माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ में केवल सायंकाल ही दुहें।

(२२) इन छह महीनों में गाय-भैंसों को दोनों समय दुहने वाले व्यक्ति का अंगूठा काट देना चाहिये। जो ग्वाला ठीक समय पर न दुहे, उसे उन दिन का वेतन न दिया जाये।

(२३) इसी प्रकार जो व्यक्ति ठीक समय पर बैलों को न नाथे, ठीक समय पर नये बैलों को बाण पर न लगाये, नौसिखिये तथा पूरे बैल को एक साथ जोते, और बैलों को ठीक समय पर न सिखाये, उन्हें भी उस दिन का वेतन नहीं देना चाहिये।

(२४) एक द्रोण गाय के दूध में एक प्रस्थ घी निकलता है। यदि एक द्रोण भैंस का दूध हो तो उसमें पांच प्रस्थ घी निकलता है। बकरी और भेड़ के एक द्रोण दूध में २/५ घी निकलता है। किसी भी पशु के दही को मथकर ही उसमें निकलने वाले घी का ठीक परिमाण निर्धारित किया जा सकता है। भूमि, घास, पानी आदि की अधिक सुविधा के ऊपर ही दूध-घी की व द्धि निर्भर है।

(२५) यदि कोई व्यक्ति गोष्ठ के सांड को किसी दूसरे सांड से लड़ाये तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये, उसको मारे तब भी उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाये।

(२६) एक रंग की दस गाएं, इस प्रकार की दस वर्णों की सौ गायें करके किसी ग्वाले को रक्षा के लिए दे देनी चाहियें। गायों के रहने और चरने की नियमित व्यवस्था, उनकी तादाद को एवं उनकी सुरक्षा को देखकर ही करनी चाहिये। बकरी और भेड़ की ऊन छह मास बाद उतार लेनी चाहिये। गाय, भैंसों के अनुसार ही घोड़े, गधे, ऊँट और सूअरों की भी यथोचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

(२७) नथे हुए बैलों और घोड़ों के रथ पर जुते जाने वाले श्रेष्ठ बैलों को आधा भार हरी घास, उससे दुगुनी भूसी, दस आढक सानी, पांच पल नमक, एक कुडव तेल नाक में, एक प्रस्थ तेल पीने के लिये देना चाहिये, इसके अतिरिक्त सौ पल मांस एक आढक दही, एक द्रोण जौ या उड़द, इन सब चीजों का साँदा बनाकर भी दिया जाना चाहिये, एक द्रोण दूध या आधा आढक सुरा, एक प्रस्थ तेल या घी, दस पल गुड़ और एक पल सोठ, इन सबको एकत्र करके बैलों को देना चाहिये।

(२८) बैलों की इस खुराक का चतुर्थांश कम खुराक खच्चरों तथा गधों को, बैलों की दुगुनी खुराक भैंसों, ऊँटों एवं खेतों में काम करने वाले बैलों को, दूध देने वाली गायों को, देनी चाहिये। काम करने वाले बैलों और दूध देने वाली गायों की खुराक उनके कार्य एवं दूध के औसत के अनुसार ही दी जानी चाहिये। सभी पशुओं को उनकी इच्छानुसार भरपेट घास-पानी देना चाहिये। यहां तक गो आदि पशुओं की आहार-व्यवस्था बताई गई।

(२६) एक सौ गधही तथा घोड़ियों के झुण्ड में पांच घोड़े, सौ भेड़-बकरियों में दस बकरे, सौ-सौ गाय, भैंस तथा ऊँटों के झुण्ड़ों में चार-चार साँड, छोड़ने चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में गो ध्यक्ष नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ३०

अश्वाध्यक्षः

(१) अश्वाध्यक्षः पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यागतं पणस्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्णचिह्नकर्मवर्गागमैर्लखयेत्।

(२) अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्चावेदयेत्।

(३) कोशकोष्ठागाराभ्यां च ग हीत्वा मासलाभमश्ववाहश्चिन्तयेत्।

(४) अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरप षतनकुल- चकोरशुकशारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत्।

(५) अश्वायामचतुरश्रश्लक्ष्णफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समूत्रपुरीषोत्सर्गमेकैकशः प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा स्थानं निवेशयेत्। शालावशेन वा दिग्विभागं कल्पयेत्। बडवाव षकिशोराणाम् एकान्तेषु।

(६) बडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घ तप्रस्थपानम्। अत ऊर्ध्वं सक्तुप्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपानं दशरात्रं, ततः पुलाको यवसमार्तवश्चाहारः।

(७) दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घ तचतुर्भागः सक्तुकुडवः क्षीरप्रस्थश्चाहार आ षण्मासादिति। ततः परं मासोत्तरमर्धव द्धिर्यवप्रस्थ आत्रिवर्षाद्, द्रोण आ चतुर्वषादिति। अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पंचवर्षो वा कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः।

(८) द्वात्रिंशदङ्गुलं मुखमुत्तमाश्वस्य, पश्चमुखान्यायामः, विंशत्यङ्गुला जङ्घां, चतुर्जङ्घ उत्सेधः। त्र्यङ्गुलावरं मध्यमावरयोः। शताङ्गुलः परिणाहः। प चभागावरं मध्यमावरयोः।

(९) उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालिव्रीहियवप्रियङ्गूणामर्धशुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः। स्नेहप्रस्थश्च। प चपलं लवणस्य। मांसं प चाशत्पलिकम्। रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थम्। क्षारप चपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम्। दीर्घपथभारक्लान्तानां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थो नुवासनम्। कुडुबो नस्यकर्मणः। यवसस्यार्धभारः, त णस्य द्विगुणः, षडरत्निपरिक्षेपः, पु जीलग्राहो वा।

(१०) पादावरमेतन्मध्यमावरयोः। उत्तमसमो रथ्यो व षश्च मध्यमः। मध्यमसमश्चावरः पादहीनं वडवानां पारशमानां च। अतो र्धं किशोराणां च। इति विधायोगः।

(११) विधापाचकसूत्रग्राहकचिकित्साः प्रतिस्वादभाजः।

(१२) युद्धव्याधिजराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः। असमरप्रयोज्याः पौरजानपदानामर्थेन व षा बडवास्वायोज्याः।

(१३) प्रयोज्यानामुत्तमाः काम्बोजकसैन्धवारट्टजवानायुजाः। मध्यमा बाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतलाः। शेषाः प्रत्यवराः।

(१४) तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सान्नाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत्। चतुरस्त्रं कर्माश्वस्य सान्नाह्यम्।

(१५) वल्गनो नीचैर्गतो लंघनो धोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः।

(१६) तत्रौपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः पूर्वगस्त्रिकचाली च वल्गनः।

(१७) स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः, षोडशमार्गो वा। प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निषण्णः

पार्श्वानुव त्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुव त्तः। प चपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिङ्गितो ब ंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गतमार्गाः।

(१८) कपिप्लुतो भेकप्लुत एणप्लुत एकपादप्लुतः कोकिलस चार्युरस्यो बकचारी च लङ्घनः।

(१६) काङ्कोबारिकाङ्क्षो मायूरो र्धमायूरो नाकुलो र्धनाकुलो वाराहो र्धवाराहश्चेति धोरणः।

(२०) संज्ञाप्रतिकारो नारोष्ट्र इति।

(२१) षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानाम्। प चयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति प ष्ठबाह्यानामश्वानामध्वा।

(२२) विक्रमो भद्राश्वासो भारवाह्य इति मार्गाः।

(२३) विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः।

(२४) तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः। साङ्ग्रामिकं रथावालङ्कारं च सूताः। अश्वानां चिकित्सकाः शरीरहासव द्धिप्रतीकारम तुविभक्तं चाहारम्।

(२५) सूत्रग्राहकाश्वबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकारजाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः।

(२६) कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात्। नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः।

(२७) क्रियाभैषज्यसङ्गेन व्याधिव द्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः। तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः।

(२८) तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम्।

(२६) द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत्।
कृष्णसन्धिषु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम्।

(३०) नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमे हनि।
यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे श्वाध्यक्षो नाम त्रिंशो ध्यायः, आदितः प चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) अश्वशाला के अध्यक्ष को चाहिये कि वह, भेंटस्वरूप प्राप्त, खरीदे हुए, युद्ध में मिले हुए, अपने यहाँ पैदा हुए, बदले में प्राप्त, रेहन रखे हुए और कुछ समय के लिए सहायतार्थ प्राप्त, इन सभी प्रकार के घोड़ों को उनकी नस्ल, उम्र, रंग, चिह्न, समूह, कर्म और कहां से वे मिले हैं, इस सभी बातों का विवरण अपने रजिस्टर में दर्ज करे।

(२) बुरी नस्ल वाले, लंगड़े-लूले और बीमार घोड़ों को बदल देना चाहिये या उनका उचित इलाज करना चाहिये।

(३) कोष और कोष्ठागार से एक महीने का पूरा खर्च लेकर साईस को चाहिये कि वह सावधानीपूर्वक घोड़ों की टहल-सेवा करे।

(४) घोड़ों को रखने के लिये ऐसी घुड़साल बनवाई जाये, जो घोड़ों की संख्या के अनुसार लम्बी और घोड़ों की लम्बाई से दुगुनी चौड़ी हो, उसमें चार दरवाजे, काफी फैलाव, बड़ा बरामदा, दरवाजों के दोनों ओर चबूतरे हों और जो बन्दर, मोर, नेवला, चकोर, तोता तथा मैना आदि से घिरी हुई हो।

(५) घोड़े की लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार एक समतल चौकोर तख्ता बिछा होना चाहिये। इसके अतिरिक्त घास-भूसा खाने के लिए लकड़ी की मांद, पेशाब तथा लीद रखने का उचित प्रबन्ध होना चाहिये, घुड़सालों के दरवाजे पूरब तथा उत्तर की ओर होने चाहियें, घोड़ों को बांधने के लिए अलग-अलग खूंटे होने चाहिये। घुड़साल, या तो राजमहल के उत्तर-पूर्व में होनी चाहिये; यदि ऐसा सम्भव न हो तो सुविधानुसार उचित दिशाओं की ओर उनके दरवाजे बना दिये जायें। प्रसवा घोड़ियों, सांड, घोड़ों और छह मास से तीन वर्ष तक के बछेड़ों को बाँधने के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहियें।

(६) जब घोड़ी ब्याये तो उसे तीन दिन तक एक प्रस्थ घी पीने के लिए दिया जाना चाहिये। तदनन्तर दस दिन तक उसे एक प्रस्थ सत्तू और चिकनाई में मिली दवा पीने के लिए दी जानी चाहिये। उसके बाद उसे अधपके जौ का साँदा, घास और ऋतु के अनुसार आहार देना चाहिये।

(७) नये पैदा हुए घोड़ों के बछड़े को दस दिन बाद एक कुडव सत्तू में चौथाई घी मिला कर देना चाहिये। छह महीने तक उसे एक प्रस्थ दूध प्रतिदिन दिया जाना चाहिये। तदनन्तर उसको जौ का एक प्रस्थ और उसमें उत्तरोत्तर प्रतिमास आधा प्रस्थ बढ़ाकर तीन वर्ष तक यही आहार देना चाहिये। उसके बाद पूरे एक वर्ष तक प्रतिदिन उसे एक द्रोण आहार मिलना चाहिये। तब जाकर चार या पांच वर्ष में वह पूरी तरह काम लेने लायक होता है।

(८) जिस घोड़े की खाब बत्तीस अंगुल, लम्बाई एक-सौ-आठ अंगुल, जंघा बीस अंगुल और ऊँचाई अस्सी अंगुल हो वह उत्तम होता है। उससे तीन अंगुल कम परिमाण का घोड़ा मध्यम और उससे भी तीन अंगुल कम परिमाण का घोड़ा अधम कोटि का समझना चाहिये। उत्तम घोड़े की मोटाई सौ अंगुल, मध्यम घोड़े की मोटाई अस्सी अंगुल और अधम घोड़े की मोटाई चौंसठ अंगुल होती है।

(९) उत्तम घोड़ों को साठी, चावल, गेहूं, जौ, काकुन आदि में से कोई भी दो द्रोण धान्य अधपका या अधसूखा, खुराक में देना चाहिये; अथवा इतना ही मूंग या उड़द का साँदा बनाकर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक प्रस्थ घी या तेल; पाँच पल नमक पचास पल मांस एक आढक शोरवा या दो आढ़क दही में भीगी हुई सानी, पांच पल गुड़ के साथ एक प्रस्थ शराब अथवा दो प्रस्थ दूध, प्रतिदिन तीसरे पहर पीने के लिये दिया जाना चाहिये। लम्बा सफर और अधिक बोझा उठाने के कारण थके हुए घोड़ों को एक प्रस्थ घी या तेल और साथ ही उतने ही परिमाण की थकावट को दूर करने वाली दवाइयों का मिश्रण पिलाना चाहिये। एक कुडव घी या तेल उसके नाक में छोड़ना चाहिये, खाने के लिए उसको दस तुला भूसा, बीस तुला हरी घास या जई आदि देना चाहिये।

(१०) उत्तम घोड़े की उक्त खुराक का चौथाई हिस्सा कम मध्यम घोड़े की और उसमें से भी चौथाई हिस्सा कम अधम घोड़े की खुराक है। जो मध्यम घोड़ा रथ में जोता जाये तथा जो सांड घोड़ी पर छोड़ा गया हो उनको भी उत्तम घोड़े का आहार देना चाहिये। इसी प्रकार जो अधम घोड़े रथ में जोते जायें या सांड छोड़े जायें उनको मध्यम घोड़े का आहार देना चाहिये। इस आहार से चौथा हिस्सा कम घोड़ी और खच्चरों का आहार है। उसका आधा आहार बछड़ों को देना चाहिये। यह घोड़ों के आहार का विधान है।

(११) घोड़ों की परिचर्या करने वाले साईसों और उनकी चिकित्सा करने वाले वैद्यों को भी घोड़े के आहार में से कुछ हिस्सा दिया जाना चाहिये।

(१२) जो घोड़े युद्ध के कारण, बीमारी, बुढ़ापे और भार ढोने के कारण, अशक्त तथा बेकार हो चुके हैं, उन्हें उतना ही आहार दिया जाये कि वे भूखे न मर सकें। जो घोड़े हृष्ट-पुष्ट होकर भी

युद्धोपयोगी न हो, उन्हें नगर तथा जनपद के निवासियों की घोड़ियों में नस्ल पैदा करने के लिए सांड बना दिया जाये।

(१३) चाल एवं कवायद में प्रवीण युद्धयोग्य घोड़ों में काबुल, सिंध, आरट्ट और अरब देशों के घोड़े उत्तम श्रेणी के हैं। व्यास, सतलुज के मध्यवर्ती प्रदेश, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, राजस्थान और तितल देशों में उत्पन्न घोड़े मध्यम कोटि के होते हैं। इनके अतिरिक्त सभी घोड़े अधम कोटि में आते हैं।

(१४) तेज, मध्यम और मन्द गति के अनुसार ही घोड़ों को युद्धकार्यों और साधारण सवारी आदि कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिये। विशेषज्ञों द्वारा युद्ध-सम्बन्धी हर प्रकार की चालों की शिक्षा दिलाना ही घोड़े का सन्नाह्य कर्म कहलाता है।

(१५) सवारी या खेलों में प्रयुक्त किये जाने वाले घोड़ों की चाल के पाँच भेद हैं : १. वल्गन, २. नीचैर्गत, ३. लंघन, ४. धोरण और ५. नारोष्ट्र।

(१६) मण्डलाकार चक्कर लगाने को बल्गन कहते हैं। वह छह प्रकार का होता है : १. औपवेणुक, २. वर्धमानक, ३. यमक, ४. आलीढप्लुत, ५. पूर्वग और ६. त्रिकचाली।

(१७) शिर और कान में किसी प्रकार के कंपन पैदा किये बिना ही गोल घेरे में चक्कर लगाना ही नीचैर्गत कहलाता है; उसके सोलह प्रकार हैं : १. प्रकीर्णक, २. प्रकीर्णोत्तर, ३. निषण्ण, ४. पार्श्वानुव त्त, ५. उर्मिमार्ग, ६. शरभक्रीडित, ७. शरभप्लुत, ८. त्रिताल, ६. बाह्यनुव त्त, १०. पंचवाणि, ११. सिंहायत, १२. स्वाधूतः, १३. क्लिष्ट, १४. श्लिंगित, १५. बंहित और १६. पुष्पाभिकीर्ण।

(१८) कूद कर चलने वाली चाल का नाम लंघन है : उसके सात प्रकार हैं : १. कपिप्लुत, २. भेकप्लुत, ३. एणप्लुत, ४. एकपादप्लुत, ५. कोकिलसंचारी, ६. उरस्य, और ७. बकचारी।

(१६) धीरे-धीरे चलकर सहसा सरपट चाल से चलना धोरण गति कहलाती है; उसके आठ प्रकार हैं : १. कांक, २. वारिकांक्ष, ३. मायूर, ४. अर्धमायूर, ५. नाकुल, ६. अर्धनाकुल, ७. वराह, ओर ८. अर्धवराह।

(२०) सिखाये हुये इशारों पर चलना नोराष्ट्र चाल कहलाती है।

(२१) रथ में जोते जाने योग्य अधम घोड़ों को छह योजन, मध्यम घोड़ों को नौ योजन और उत्तम घोड़ों को बारह योजन चलाये जाने के बाद विश्राम देना चाहिये; अधम, मध्यम और उत्तम किस्म के भार ढोने वाले घोड़ों को इसी क्रम से पांच, साढ़े सात और दस योजन चलाने के बाद विश्राम देना चाहिये।

(२२) उक्त तीनों कोटि के घोड़ों की गति तीन प्रकार की होती है, यथा; १. मन्दगति, २. मध्यगति, ३. तीव्रगति।

(२३) मन्छगति से चलना, मध्यम गति से चलना, तीव्र गति से चलना, चौकन्ना होकर चलना, कूद-फांदकर चलना, दायें-बायें होकर चलना, तेज-तेज चलना, इन सब तरह की चालों का नाम धारा है; धारा अर्थात् ढंग या क्रम।

(२४) घोड़ों के विभिन्न अवयवों को किस प्रकार के आभूषणों से सजाना चाहिये, इसकी विधि, योग्य आचार्य बतलायें। युद्धोपयोगी घोड़ों और रथों को सजाने की सारी क्रिया का निर्देश सारथी करे। ऋतु के अनुसार घोड़ों का क्या-क्या आहार होना चाहिये एवं उनके मोटा होने या तंग होने का तरीका क्या है, इसका निर्देश अश्व-चिकित्सक करें।

(२५) लगाम पहना कर घोड़ों को टहलाने वाला नौकर, लगाम तथा जीन आदि चढ़ाने वाला कर्मचारी, घास खिलाने वाला नौकर, उनके लिये उड़द भूषा एवं चावल पकाने वाला रसोइया, घुड़साल की सफाई करने वाला व्यक्ति, घोड़ों के बाल तथा खुरें ठीक करने वाला नौकर

और अश्वचिकित्सक; ये सभी नौकर-चाकर अपने-अपने कार्यों को नियम समय पर पूरा करते हुए घोड़ों की यथोचित परिचर्या करें।

(२६) इनमें से जो भी कर्मचारी अपने कार्य को उचित रीति से न करे उसका उसी दिन का वेतन काट लेना चाहिये। कुशल-क्षेम एवं बल-व द्धि के लिए और चिकित्सा के लिए रोके गये घोड़ों को काम पर लगाने वाले व्यक्ति से बारह पण दण्डरूप में वसूल किये जायें।

(२७) घोड़ों की यथासमय चिकित्सा न करने के कारण यदि उनकी बीमारी बढ़ जाये तो इलाज में जितना व्यय हो, उसका दुगुना दण्ड अश्वशाला के अध्यक्ष पर करना चाहिये। यदि चिकित्सा और दवाई के दोष के कारण घोड़ा मर जाये तो जितनी कीमत का घोड़ा हो उतना दण्ड अश्वशाला के अध्यक्ष पर किया जाये।

(२८) घोड़ों की परिचर्या और चिकित्सा के लिए ऊपर जो नियम बताये गये हैं, गाय, बैल, गधा, ऊँट, भैंस और भेड़-बकरियों की परिचर्या चिकित्सा के सम्बन्ध में भी वही नियम समझने चाहियें, इनके सम्बन्ध में भी वही दण्ड-व्यवस्था है।

(२६) शरद और ग्रीष्म, दोनो ऋतुओं में घोड़ों को दो-दो बार नहलाना चाहिये। गन्ध और मालायें उन्हें प्रतिदिन दी जानी चाहिये। अमावस्या को घोड़ों के निमित्त भूतों को बलि देनी चाहिये। और पूर्णमासी को उनके कुशल-क्षेम के लिए स्वस्तिवाचन पढ़ा जाना चाहिये।

(३०) आश्विन मास की नवमी को घोड़ों के स्वस्थ-नीरोग रहने के लिए नीराजना संस्कार करना चाहिये। यात्रा के आगे और यात्रा की समाप्ति पर और घोड़ों में कोई संक्रामक रोग फैलने पर भी नीराजना संस्कार करना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में अश्वाध्यक्ष नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ३१

हस्त्यध्यक्षः

(१) हस्तयध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शालास्थानशय्या-कर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं साङ्ग्रामिकमलङ्कारं चिकित्सकानीक-स्थोपस्थायुकवर्गं चानुतिष्ठेत्।

(२) हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्तिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमारीसङ्ग्रहां प्राङ्मुखीमुदङ्मुखीं वा शालां निवेशयेत्।

(३) हस्त्यायामचतुरश्रश्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं निवेशयेत्। स्थानसमशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सान्नाह्यौपवाह्यानां बहिर्दम्यव्यालानाम्।

(४) प्रथमसप्तमावष्टमभागावह्नः स्नानकालौ, तदनन्तरं विधायाः। पूर्वाह्णे व्यायामकालः, पश्चादह्नः प्रतिपानकालः। रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ, त्रिभागः संवेशनोत्थानिकः।

(५) ग्रीष्मे ग्रहणकालः। विंशतिवर्षो ग्राह्यः।

(६) विक्को मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः।

(७) सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दशपरिणाहः। प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः। त्रिंशद्वर्षो मध्यमः। पंचविंशतिवर्षो वरः।

(८) तयोः पादावरो विधाविधिः।

(६) अरत्नौ तण्डुलद्रोणः। अर्धाढकं तैलस्य। सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः। दशपलं लवणस्य। मांसं पश्चाशत्पलिकम्। रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थम्। क्षारं दशपलिकम्। मद्यस्य आढकं द्विगुणं वा पयसः प्रतिपानम् गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः शिरसो ष्टभागः प्रादीपिकश्च। यवसस्य द्वौ भारौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्यार्धत तीयो भारः। कडङ्कारस्यानियमः।

(१०) सप्तारत्निना तुल्यभोजनो ष्टारत्निरत्यरालः।

(११) यथाहस्तमवशेषः षडरत्निः प चारत्निश्चः।

(१२) क्षीरयावसिको विक्कः क्रीडार्थं ग्राह्यः।

(१३) स जातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्या व्यतिकीर्णमांसा समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः।

(१४) शोभावशेन व्यायामं भद्रं मन्दं च कारयेत्।

म गसङ्कीर्णलिङ्गं च कर्मस्व तुवशेन वा।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे हस्त्यध्यक्षो नामैकत्रिंशो ध्यायः, आदित एकप चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) गजशाला के अध्यक्ष को चाहिये कि वह हाथियों के जंगल की रक्षा करे; सिखाये जाने योग्य हाथी-हथिनी और उनके बच्चों के लिए वह गजशाला, बांधने, उठने-बैठने के यथोचित स्थान बनवाये, वही युद्ध-सम्बन्धी कार्य, पका हुआ भोजन और हरी घास-भूसा आदि के तौल का

निर्णय करे; हाथियों को हर तरह की चाल चलना सिखाये; हाथियों के अम्बारी, अंकुश आदि साजों और युद्धसम्बन्धी आभूषणों का प्रबन्ध करे; हाथियों के चिकित्सक और उनकी सेवा-टहल करने वाले कर्मचारियों पर भी अध्यक्ष नजर रखे।

(२) हाथी के लिए उसकी लम्बाई से दुगुनी ऊँची, दुगुनी चौडी और दुगुनी लम्बी गजशाला बनवानी चाहिये, हथिनी के रहने की गजशाला उससे छह हाथ अधिक लम्बी होनी चाहिए, गजशाला के आगे बरामदा, उसमें बाँधने के लिए तराजू के आकार के खूंटे और उसके दरवाजे पूर्व या उत्तर की ओर होने चाहियें।

(३) हाथी की लम्बाई जितना, चौकोर, चिकना एक खूंटा वहां गाड़ा जाये, खूंटा एक तख्ते के बीच में लगाकर गाड़ा जाये, जिससे ऊपर की जमीन ढकी रहे और खूंटे को उखाड़ा न जा सके; पाखाना और पेशाब के लिए पीछे की ओर ढलवाँ स्थान बनवाना चाहिये। हाथी के सोने-बैठने के लिए एक चबूतरा-सा बनवाया जाये, जिसकी ऊँचाई साढ़े चार हाथ होनी चाहिये। युद्ध तथा सवारी के उपयोगी हाथियों की शय्या किले के भीतर ही बनवाई जाये, जो हाथी अभी सिखवा या बनैले हों उन्हें किले से बाहर ही रखना चाहिये।

(४) एक दिन के बराबर आठ भागों में पहला तथा सातवां भाग हाथी के स्नान करने के लिए होना चाहिये। स्नान के बाद उन्हें पका खाना खिलाना चाहिये, दोपहर से पहले उन्हें कवायद सिखानी चाहिये, दोपहर के बाद पीने के लिए देना चाहिये। रात के बराबर तीन भागों में से दो भाग सोने के लिये और एक भाग उठने-बैठने क लिए होना चाहिये।

(५) गर्मी के मौसम में ही हाथियों को पकड़ना चाहिये। बीस वर्ष या उससे अधिक आयु का हाथी पकड़ने योग्य है।

(६) दूध पीने वाला हाथी, हथिनी के समान दांतों वाला, जिसके दांत न निकले हों, बीमार हाथी और गर्भिणी तथा दूध चुराने वाली हथिनी को नहीं पकड़ना चाहिये।

(७) सात हाथ ऊँचा, नौ हाथ लम्बा और दस हाथ मोटा, चालीस वर्ष उम्र वाला हाथी सर्वोत्तम समझा जाता है। तीस वर्ष का मध्यम, और पच्चीस वर्ष का अधम माना गया है।

(८) उत्तम हाथी को जितना आहार दिया जाये उससे चौथाई हिस्सा कम मध्यम को और उससे भी चौथाई हिस्सा कम अधम को दिया जाना चाहिये।

(९) सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथी को एक द्रोण चावल, आधा आढक तेल, तीन प्रस्थ घी, दस पल नमक, पचास पल मांस, एक आढक दही में सना हुआ दाना दस पल गुड़, दोपहर के बाद पीने के लिए एक आढक शराब या उससे दुगुना दूध, शरीर के मलने के लिए एक प्रस्थ तेल, शिर में लगाने के लिए आधा कुडव तेल, इतना ही तेल रात को लगाने के लिए, चालीस तुला त ण, पचास तुला हरी घास, साठ तुला रूखी घास और भूसा तथा पत्तियाँ जितना खा सके, खिलाना चाहिये।

(१०) आठ हाथ ऊँचे अत्यराल नामक हाथी को सात हाथ ऊँचे उत्तम हाथी के ही बराबर खाना दिया जाये।

(११) छह हाथ ऊँचे हाथी मध्यम कोटि के हैं; उनका आहार उत्तम हाथी के आहार से चौथाई हिस्सा कम होना चाहिये; इसी प्रकार पांच हाथ ऊँचे अधम श्रेणी के हाथियों के आहार मध्यम हाथियों के आहार से चौथाई हिस्सा कम होना चाहिये।

(१२) दूध पीने वाले बच्चों को केवल क्रीड़ाकौतुक के लिए पकड़ा जाये और दूध, हरी घास या जई आदि के छोटे-छोटे ग्रास देकर उनका पालन-पोषण किया जाये।

(१३) अवस्थानुसार हाथियों की सात प्रकार की शोभा मानी गई है : १. जब हाथियों के शरीर में

केवल हड्डी, चमड़ा ही रह जाये; फिर धीरे-धीरे खूब संचरने लगे; इस शोभा को संजातलोहिता कहते हैं, २. जब मांस बढ़ने लगे, उस अवस्था की शोभा को प्रतिच्छन्ना कहते हैं; ३. जब दोनों ओर मांस भरने लगे, उस अवस्था को संलिप्तपक्षा कहते हैं; ४. जब सारे अवयवों में मासं भरने लगे, उस समय की शोभा को समकक्ष्या कहते हैं; ६. जब रीढ़ की हड्डी के बराबर मांस चढ़ जाये, उस अवस्था की शोभा को समतल्पतला कहते हैं; और ७. जब मांस रीढ़ की हड्डी से ऊपर चढ़ जाये, उस शोभा का नाम जातिद्रोणिका है।

(१४) इस प्रकार अवस्थाओं को ध्यान में रखकर हाथियों को कवायद सिखायी जाये। जिन हाथियों में उत्तम, मध्यम आदि सांकर्य लक्षण प्रकट हों, उनको युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में लगाना चाहिये; अथवा ऋतुओं के अनुसार ही उन्हें युद्ध आदि कार्यों में लगाया जाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में एकतीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ३२

हस्त्यध्यक्षः हस्तिप्रचारश्च

---

(१) कर्मस्कन्धाः चत्वारः—दम्यः सान्नाह्य औपवाह्यो व्यालश्च।

(२) तत्र दम्यः प चविधः — स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतो वपातगतो यूथगतश्चेति। तस्योपचारो विक्ककर्म।

(३) सान्नाह्यः सप्तक्रियापथः — उपस्थानं संवर्तनं संयानं वधावधो हस्तियुद्धं नागरायणं साङ्ग्रामिकं च। तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च।

(४) औपवाह्यो ष्टविधः — आचरणः, कु जरौपवाह्यः, धोरणः, आधानगतिकः, यष्ट्युपवाह्यः, तोत्रोपवाह्यः, शुद्धोपवाह्यः, मार्गायुकश्चेति। तस्योपविचारः—शारदकर्म हीनकर्म नारोष्ट्रकर्म च।

(५) व्याल एकक्रियापथः। तस्योपविचार आयम्यैकरक्षः कर्मशङ्कितो वरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयः मदहेतुविनिश्चयश्च।

(६) क्रियाविपन्नो व्यालः। शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च।

(७) तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम्। आलानग्रैवेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम्। अंकुशवेणुयन्त्रादिकमुपकरणम्। वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम्। वर्मतोमरशरावापयन्त्रादिकः सांग्रामिकालङ्कारः।

(८) चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपकौचारिक विधापाचकयावसिकपादपाशिक-कुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थायिकवर्गः।

(९) चिकित्सकुटीरक्षविधापाचकाः प्रस्थौदनं स्नेहप्रस तिं क्षारलवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः। दशपलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः।

(१०) पथिव्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः।

(११) स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थे वतारणं तरुषण्ड इत्यत्ययस्थानानि। तमेषां भक्तवेतनादाददीत।

(१२) तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यर्तुसन्धिषु।
भूतानां कृष्णसन्धीज्याः सेनान्यः शुक्लसन्धिषु।।

(१३) दन्तमूलपरीणाहद्विगुणं प्रोज्झ्य कल्पयेत्।
अब्दे द्व्यर्धे नदीजानां प चाब्दे पर्वतौकसाम्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे हस्तिप्रचारो नाम द्वात्रिंशो ध्यायः, आदितः द्विप चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) कार्य-भेद से हाथियों की चार श्रेणियाँ होती हैं १. दम्य, २. सान्नाह्य, ३. औपवाह्य व ४.व्याल।

(२) उनमें दम्य हाथी पांच प्रकार का होता है : १. स्कंधगत, २. स्तम्भगत, ३. वारिगत, ४. अवपातगत, और ५. यूथगत। दम्य हाथी की परिचर्या हाथी के बच्चे के समान करनी चाहिये।

(३) सान्नाह्य हाथी कार्य-भेद से सात प्रकार के होते हैं : १. उपस्थान, २. संवर्त्तन, ३. संयान, ४. वधावध, ५. हस्तियुद्ध, ६. नगरायण, और ७. सांग्रामिक। सान्नाह्य हाथी को ऐसी शिक्षा दी

जानी चाहिये कि वह रस्सी बांधने, गले में फन्दा डालने और झुण्ड के अनुकूल कार्य करने में चतुर हो जाये।

(४) औपवाह्य हाथी आठ प्रकार के होते हैं : १. आचरण, २. कुंजरौपवाह्य, ३. धोरण ४. आधानगतिक, ५. यष्ट्युपवाह्य, ६. तोत्रोपवाह्य, ७. शुद्धोपवाह्य, और ८. मार्गायुक। उनको शिक्षा देते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जो हाथी अधिक मोटे हों उन्हें दुबला बनाया जाये, जो स्वस्थ हों उनकी रक्षा की जाये, जो मेहनत न करता हो उससे मेहनत करवाई जाये, इसी प्रकार प्रत्येक हाथी को हर प्रकार के इशारों की शिक्षा दी जाये।

(५) घातक (व्याल) हाथी से कार्य लेने का एक ही मार्ग है कि उसको बाँध कर रखा जाये या डण्डे के जोर पर उसे काबू रखा जाये। उसके उपद्रवों से सावधान रहा जाये। उसके उपद्रव हैं : कवायद के समय बिगड़ जाना, कार्य की लापरवाही कर देना, मनमानी करना, उन्मत्त हो जाना, मद तथा आहार के लिए बेचैन हो जाना और जिसके बिगड़ने का कारण पता ही न लगे।

(६) कार्य बिगाड़ देने वाले दुष्ट हाथी को व्याल कहते हैं। उसके चार भेद होते हैं : १. शुद्ध, २. सुव्रत, ३. विषम और ४. सर्वदोषप्रदुष्ट।

(७) हाथियों पर कसी जाने वाली सारी सामग्री की व्यवस्था, चतुर हस्ति-शिक्षकों की राय से करनी चाहिये। हाथियों पर कसने के लिए खूंटा गले की जंजीर, काँख में बाँधने की रस्यी, चढ़ते समय सहारा देने वाली रस्सी, हाथी के पैर में बांधने की जंजीर और उसके गले में बांधने की रस्सी। अंकुश, बांस का डंडा और अम्बारी आदि उसके लिए अन्य उपकरण हैं। इसके अतिरिक्त वैजयन्ती, क्षुरप्रमाला, आस्तरण और कुथ, यह सामग्री हाथियों को सजाने के लिए है। हाथियों के संग्राम-सम्बन्धी अलंकरण हैं : कवच, तोमर, तूणीर और भिन्न-भिन्न प्रकार के हथियार।

(८) गजवैद्य, गजशिक्षक, गजारोही, गजसंबंधी शास्त्रोक्त विधियों का ज्ञाता, गजरक्षक, नहलाने-धुलाने वाला, खाना बनाने वाला, चारा देने वाला, बांधने वाला, गजशाला का रक्षक और हाथी के सोने की जगह का प्रबन्ध करने वाला; ये सब हाथी की परिचर्या करने वाले कर्मचारी हैं।

(९) गजवैद्य, गजशाला का रक्षक और हाथियों का रसोइया, ये तीनों हाथी के आहार में से एक प्रस्थ अन्न, आधी अंजली तेल या घी तथा दो पल गुड़ एवं नमक ले लिया करें। गजवैद्य को छोड़कर बाकी दोनों सेवक दस-दस पल मांस भी ले लें।

(१०) रास्ता चलने से, बीमारी के कारण, अधिक कार्य करने से, मद के कारण तथा बुढ़ापे की वजह से हाथियों को कोई भी कष्ट हो जाये तो गजवैद्य सावधानी से उनकी चिकित्सा करें।

(११) हाथी के स्थान की सफाई न करना, उसे खान न देना, उसको खाली जगह सुला देना, उसके नाजुक स्थानों को चोट मारना, किसी अनधिकारी व्यक्ति को उस पर चढ़ाना, बेसमय हाथी को चलाना, बिना घाट के ही उतार देना, घने पेड़ों के बीच हाथी को ले जाना; हाथियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को दण्डित किया जाना चाहिये। यह दण्ड उनके भत्ते और वेतन में से काट लिया जाये।

(१२) हाथियों की बल-व द्धि और उनके कुशल क्षेम के लिए चार मास बाद ऋतु-संधि की तिथि पर वर्ष में तीन बार नीराजना कर्म कराया जाये; प्रत्येक अमावस्या पर भूतबलि और प्रत्येक पूर्णमासी पर स्कन्दपूजा भी करवाई जाये।

(१३) हाथी का दांत जड़ में जितना मोटा हो, उससे दुगुना हिस्सा छोड़कर, आगे का बाकी हिस्सा कटा देना चाहिये। जो हाथी नदीचर हों, उनके दांत ढाई वर्ष के बाद और जो हाथी पर्वतों के रैवासी हों उनके दांत पांच वर्ष के बाद और कटवाने चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में हस्तिप्रचार नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ३३

रथाध्यक्षपत्त्यध्यक्ष-सेनापतिप्रचार:

(१) अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः।

(२) स रथकर्मान्तान् कारयेत्।

(३) दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः। तस्मादेकान्तरावराआषडन्तरादिति सप्तरथाः।

(४) देवरथपुष्परथसाङ्ग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथान् कारयेत्।

(५) इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वायोगं विद्यात्। आ कर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भ तानामभ तानां च योग्यारक्षानुष्ठानमर्थमानकर्म च।

(६) एतेन पत्त्यध्यक्षो व्याख्यातः। स मौलभ तश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां सारफल्गुतां विद्यात्। निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात्। आयोगमयोगं च कर्मसु।,

(७) तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंपुष्टश्चतुरङ्गस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात्।

(८) स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसन्धानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत्।

(६) तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत्।

स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीया धिकरणे रथाध्यक्षपत्त्यध्यक्ष-सेनापतिप्रचारो नाम त्रयस्त्रिंशो ध्यायः, आदितस्त्रिप चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) रथसेना के अध्यक्ष के कार्य : पिछले प्रकरण में अश्वशाला के अध्यक्ष के जो-जो कार्य बताये गये हैं, उन्हीं के अनुसार रथ का अध्यक्ष भी अपनी जुम्मेदारी के कार्यों की व्यवस्था करे।

(२) उसको चाहिए कि वह नये-नये रथ बनवाये और जीर्ण हो जाने पर उनकी मरम्मत करवाये।

(३) एक सौ बीस अंगुल ऊँचा और उतना ही लम्बा रथ उत्तम कोटि का माना जाता है। सबसे बड़ा रथ बारह बित्ता लम्बा होता है, उसमें एक-एक बित्ता कम करके अन्त में सबसे छोटा रथ छह बित्ते का होता है। रथ सात प्रकार के होते हैं।

(४) रथाध्यक्ष को चाहिए कि वह विभिन्न कार्यों के उपयोगी देवरथ (यात्रा, उत्सव आदि के लिए), पुष्परथ, (विवाह आदि कार्यों के लिए), सांग्रामिक (युद्ध आदि कार्यों के लिए), पारियाणिक (सामान्य यात्रा के लिए), परपुराभियानिक (शत्रु के दुर्ग को ढाहने के लिए) और वैनयिक (घोड़े आदि को सिखाने के लिए) आदि अलग-अलग रथों का निर्माण करवाये।

(५) रथाध्यक्ष को चाहिये कि वह बाण, तूणीर, धनुष, अस्त्र, तोमर, गदा, रथ के झूलों, और लगाम आदि सामग्री के सम्बन्ध में तथा सारथि, रथ बनाने वाला, रथ के घोड़े आदि के कार्यों की पूरी जानकारी रखे। रथाध्यक्ष का यह भी कर्तव्य है कि वह नियमित रूप से कार्य करने वाले तथा अस्थायी रूप से कार्य करने वाले कारीगरों एवं कर्मचारियों के उचित वेतन-भत्ता तथा

निर्वाह योग्य धन की व्यवस्था करे एवं उनका आदर-सत्कार करे।

(६) पैदल सेना के अध्यक्ष के कार्य : रथ्याध्यक्ष के ही समान पत्त्यध्यक्ष की आरम्भिक कार्य-व्यवस्था को भी समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त वह राजधानी की रक्षा करने वाली सेना, वेतनभोगी सेना, विभिन्न प्रदेशों में रखी गई सेना, मित्रराजा की सेना, शत्रुराजा की सेना और जंगल की सुरक्षा के लिए नियुक्त सेना के सामर्थ्य-असामर्थ्य की पूरी जानकारी रखे। इसके अतिरिक्त वह, जंगल, तराई, मोर्चाबंदी, छल-कपट, खाई, हवाई, दिन और रात आदि सभी प्रकार के युद्धों की जानकारी प्राप्त करे। देश-काल की द ष्टि से सेनाओं की उपयोगिता और अनुपयोगिता का भी वह ज्ञान रखे।

(७) सेनापति के कार्य : सेनापति को चाहिये कि वह अश्वाध्यक्ष से लेकर पत्त्यध्यक्ष तक के सम्पूर्ण कार्य-व्यापार को भली-भांति समझे, सेनापति को हर प्रकार के युद्ध करने, हथियार चलाने और आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए, हाथी, घोड़े और रथ चलाने की भी पूरी योग्यता उसमें होनी चाहिए, चतुरंगिणी सेना के कार्य और स्थान की भी उसे पूरी जानकारी होनी चाहिए।

(८) इसके अतिरिक्त उसमें अपनी भूमि, युद्धकाल, शत्रुसेना, शत्रुव्यूह का तोड़ना, बिखरी हुई सेना को समेटना, बिखरी हुई शत्रुसेना का मर्दन करना, दुर्ग तोड़ना और उचित समय पर युद्ध के लिए प्रस्थान करना, इन सभी बातों को समझने-करने की पूरी क्षमता होनी चाहिए।

(६) सेनापति को चाहिये कि युद्धकाल में अपनी सेवा को संचालित करने के लिये वह चढ़ाई करने, कूच करने एवं धावा बोलने के लिए बाजे, ध्वजा तथा झण्डियों के द्वारा ऐसे इशारों का प्रयोग करे जिन्हें शत्रुसेना न समझ सके।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में रथाध्यक्ष पत्त्यध्यक्ष सेनापति-प्रचार नामक तैतीसवां अध्याय समाप्त।

अध्याय ३४

मुद्राध्यक्षः विवीताध्यक्षः

(१) मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात्।

(२) समुद्रो जनपदं प्रवेष्टुं निष्क्रमितुं वा लभेत्।

(३) द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात्। कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः। तिरोजनपदस्योत्तमः।

(४) विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत्।

(५) भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत्। चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत्।

(६) अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सान् स्थापयेत्, पुष्पफलवाटांश्च।

(७) लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि। तस्करामित्राभ्यागमे शंखदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः शैलव क्षाधिरूढा वा शीघ्रवाहना वा।

(८) अमित्राटवीसंचारं च राज्ञौ ग हकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुः धूमाग्निपरम्परया वा।

(९) द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तिनीं चोररक्षणम्।

सार्थातिवाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत्।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे मुद्राध्यक्ष-विवीताध्यक्षो नाम चतुस्त्रिंशो ध्यायः, आदितश्चतुष्प चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) **मुद्रा-विभाग का अध्यक्ष** : मुद्रा-विभाग के अध्यक्ष को चाहिये कि वह जनपद में आने वाले और नगर में जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय मुहर लगा हुआ पासपार्ट दे तथा बदले में एक माषक टैक्स वसूल करे।

(२) जिस व्यक्ति के पास पासपोर्ट हो वही जनपद में प्रवेश कर सकता है और वही जनपद के बाहर जा सकता है।

(३) अपने जनपद मे रहनेवाला कोई पुरुष बिना पासपोर्ट के यदि प्रवेश करे या बाहर जाये तो उस पर बारह पण दण्ड किया जाना चाहिये। अपने ही राज्य का कोई व्यक्ति यदि जाली पासपोर्ट लेकर आना-जाना चाहे तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये, यदि दूसरे देश का व्यक्ति ऐसा करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड देना चाहिये।

(४) **चारागाह-विभाग का अध्यक्ष** : विवीताध्यक्ष का कार्य है कि जो व्यक्ति बिना पासपोर्ट या जाली पासपोर्ट लेकर छिपे तौर पर जंगलों के रास्ते होकर सफर करते हुए पकड़ा जाये उसको गिरफ्तार कर ले।

(५) जिन स्थानों से चोर, शत्रु या शत्रु के गुप्तचर आदि के आने-जाने की संभावना हो, ऐसे स्थानों पर चारागाह स्थापित किये जायें। चोर और हिंसक जानवरों के संभावित घने जंगलों में भी खाइयां और गुफायें बनाकर निगरानी रखनी चाहिये।

(६) जिस जगह पानी का अभाव हो वहां पक्के कुएं, पक्के तालाब, फूल तथा फलों के बगीचे

और प्याऊ आदि की व्यवस्था की जाये।

(७) शिकारी और बहेलिये निरन्तर जंगलों में घूमते रहें। उन्हें चाहिये कि वे चोर या शत्रुओं के आने की सूचना पहाड़ पर या व क्ष पर चढ़कर अथवा शंखदुन्दुभी बजाकर अन्तपाल को पहुंचाये अथवा शीघ्रगामी घोड़ों पर चढ़कर वे इस सूचना को अन्तपाल तक पहुंचाये।

(८) यदि जंगल में शत्रु आ जायें तो मुहर लगे पालतू कबूतरों के द्वारा उसका समाचार राजा तक पहुंचाया जाये, यदि रात को शत्रु जंगल में प्रवेश करें तो आग जलाकर और दिन में धुआँ करके सूचित करें।

(६) विवीताध्यक्ष का कार्य है कि वह द्रव्यवनों और हस्तिवनों के पास, लकड़ी तथा कोयले आदि का भी प्रबन्ध करे, दुर्ग के रास्ते जाने का टैक्स, चोरों से की हुई रक्षा का टैक्स, गोरक्षा का टैक्स तथा इन सभी वस्तुओं के खरीद-फरोख्त का प्रबन्ध भी विवीताध्यक्ष ही करवाये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में मुद्राध्यक्ष-विवीताध्यक्ष नामक चौतीसवाँ अध्याय समाप्त।

अध्याय ३५

समाहर्त प्रचारः ग हपतिवैदेहकतापसव्य जनाः प्रणिधयः

---

(१) समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि- प्रतिकरमिदमेतारवदिति निबन्धयेत्।

(२) तत्प्रदिष्टः प चग्रामीं दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत्।

(३) सीमावरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषण्डवाटवनवास्तुचैत्यदेवग हसेतुबन्धश्मशानसत्र-प्रपापुण्यस्थानविवीत- पथिसंख्यानेनक्षेत्राग्रं, तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाण-सम्प्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान् कारयेत्। ग हाणां च करदाकरदसंख्यानेन।

(४) तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावन्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहकारुकर्मकरदासाश्चैतावच्चद्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदण्डं समुत्तिष्ठतीति।

(५) कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालव द्ध कर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात्।

(६) एव च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत्।

(७) गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः।

(८) समाहर्त प्रदिष्टाश्च ग हपतिकव्य जना येषु ग्रामेषु प्रणिहितास्तेषां ग्रामाणां क्षेत्रग हकुलाग्रं विद्युः। मानस जाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां ग हाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च। तेषां जङ्घाग्रमायव्ययौ च विद्युः। प्रस्थितागतानां च प्रवासावासकारणमनर्थ्यानां च स्त्रीपुरुषाणां चारप्रचारं च विद्युः।

(९) एवं वैदेहकव्य जनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेतुवनकर्मान्तक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः। परभूमिजातानां वारिस्थलपथोपयातानां सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च, शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः।

(१०) एवं समाहर्त प्रदिष्टस्तापसव्य जनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः। पुराणचोरव्य जनाश्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थायतनाश्रमारण्य-शैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन्।

(११) समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः।

चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे ग हपतितापसव्य जनप्रणिधिर्नाम पंचविंशो ध्याय, आदितः
प चप चाशः।

हिन्दी अनुवाद

(१) समाहृर्त्ता को चाहिये कि वह सारे जनपद को चार हिस्सों में बांटकर उन्हें श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ के क्रम से उनकी गणना, उपज, भौगोलिक परिस्थिति उनका नक्शा, खसरा एवं रकबा आदि को अपने रजिस्टर में दर्ज कर ले; जो गांव नियमित रूप से सैनिक जवानों को

दें तथा जो गांव अन्न, पशु, सोना, चांदी, नौकर-चाकर आदि को नियमित रूप से दें, उनका ब्यौरा भी रजिस्टर में दर्ज कर ले।

(२) समाहर्त्ता के आदेशानुसार पांच-पांच या दस-दस गांवों का एक-एक केन्द्र बनाकर उसका प्रबन्ध गोप नामक अधिकारी करे।

(३) नदी, पहाड़, जंगल, दीवाल आदि के द्वारा गांवों की सरहदबन्दी करके उसको रजिस्टर में चढ़ाया जाये, खेतों का ब्यौरा चढ़ाने वाले रजिस्टर में इतनी बातें दर्ज रहनी चाहिये; खेती योग्य जमीन, खेती के अयोग्य जमीन या पथरीली जमीन, ऊँची-नीची जमीन, साठी-गेहूं योग्य जमीन, बाग-बगीचे योग्य जमीर, केले के योग्य जमीन, ईख के योग्य जमीन, जंगल के योग्य जमीन, आबादी के योग्य जमीन, चैत्य, देवालय, तालाब, श्मशान, अन्नक्षेत्र, प्याऊ, तीर्थस्थान, चरागाह और रथगाड़ी तथा पैदल मार्ग के योग्य जमीन। इसी प्रकार नदी, पर्वत आदि सरहद और खेतों की लम्बाई-चौड़ाई का भी उल्लेख होना चाहिये। इन बातों के अलावा ऐसे जंगल, जो ग्रामवासियों के काम न आते हों, खेतों में जाने-आने के रास्ते, उनकी नाप, किस व्यक्ति ने किस व्यक्ति को कौन खेत जोतने को लिये दिया है, बिक्री का ब्यौरा, तकाबी, मुल्तवी और छूट आदि का भी उल्लेख होना चाहिये। साथ ही रजिस्टर में यह भी दर्ज होना चाहिये कि वहां कितने घर, जमीन की किस्त तथा मकानों का किराया देने वाले हैं और कितने नहीं हैं।

(४) रजिस्टर में इस बात का भी उल्लेख किया जाये कि उन घरों में इतने ब्राह्मण, इतने क्षत्रिय, इतने वैश्य और इतने शूद्र रहते हैं, इसी प्रकार वहां के किसान, ग्वाले, व्यापारी, कारीगर, मजदूर और दासों की संख्या भी रजिस्टर में दर्ज होनी चाहिये, फिर सारे मनुष्यों और सारे पशुओं का जोड़ अलग-अलग किया जाये, अन्त में इनसे इतना सोना, इतने नौकर, इतना टैक्स और इतना दण्ड राजा को प्राप्त हुआ, यह भी जोड़ देना चाहिये।

(५) गोप नामक अधिकारी को चाहिये कि वह प्रत्येक परिवार के स्त्री, पुरुष, बालक तथा व द्ध की गणना और उनके कार्य, चरित्र, आजीविका एवं व्यय आदि के सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखे।

(६) इसी प्रकार जनपद के चौथे हिस्से का प्रबन्ध स्थानिक नामक अधिकारी करे।

(७) गोप और स्थानिक के कार्यक्षेत्र में प्रदेष्टा नामक अधिकारी राज्य के शत्रुओं का दमन करें। गोप और स्थानिक टैक्स न देने वालों से टैक्स वसूल करें। राज्य के बलवान् व्यक्ति यदि शासन में विघ्न-बाधा उपस्थित करे तो उनका भी वे दमन करें।

(८) ग हस्थ के वेश में रहने वाले गुप्तचर; समाहर्त्ता की आज्ञानुसार अपने क्षेत्र के गांवों का रकवा, घर और परिवारों की तादाद को अच्छी तरह से जानें। वे गुप्तचर यह नोट रखें कि कौन खेत कितने बड़े हैं और उनकी उपज क्या है, किस घर से कर वसूल किया जाता है, और कौन घर छोड़ा जाता है, यह परिवार ब्राह्मणों का है या क्षत्रियों का और वे क्या-क्या कार्य करते हैं। वे गुप्तचर यह भी जानें कि उन परिवारों के प्राणियों की संख्या कितनी है और उनकी आमदनी खर्च के जरिये क्या हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने-आने वाले लोगों और अपने स्थान को छोड़कर दूसरी जगह बस जाने वाले लोगों के सम्बन्ध में, राजा से सम्बन्ध न रखने वाली नर्तकियों, जुआरियों, भांडों आदि के आवास-प्रवास पर भी वे गुप्तचर निगरानी रखें और यह भी जानें कि शत्रुओं के गुप्तचर कहां-कहां पर रहकर क्या-क्या कार्य कर रहे हैं।

(६) इसी प्रकार व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचर समाहर्ता के आदेशानुसार अपने अधिकार-क्षेत्र में उत्पन्न और बेची जाने वाली सरकारी वस्तुओं, खनिज पदार्थों, तालाबों, जंगलों तथा

कारखानों से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं की तौल एवं कीमत को अच्छी तरह से समझें। विदेशी व्यापारियों ने चुंगी, सीमाकर, मार्गरक्षा का कर, नाव कर, अन्तपाल का टैक्स, सांझेदारी का हिस्सा, भत्ता, भोजन-व्यय और बाजार आदि का टैक्स कितना दिया है, यह भी वे जानें।

(१०) इसी प्रकार तपस्वी के वेश में रहने वाले गुप्तचर, समाहर्त्ता की आज्ञानुसार, अपने क्षेत्र में रहने वाले किसान, ग्वाले, व्यापारी और अध्यक्षों की ईमानदारी तथा बेईमानी के रहस्यों को जाने। पुराने चोरों के वेश में रहने वाले उन तापस गुप्तचरों के शिष्य देवालय, चौराहा, निर्जन स्थान, तालाब, नदी, कुओं के समीपस्थ जलाशय, तीर्थस्थान, आश्रम, जंगल, पहाड़ और घना जंगल आदि स्थानों में ठहर कर चोरों, शत्रुओं, शत्रुओं के भेजे हुए तीक्ष्ण तथा रसद आदि गुप्तचरों का ठीक-ठीक पता लगायें।

(११) इस प्रकार अपने कार्यों में तत्पर समाहर्त्ता जनपद की रक्षा का प्रबन्ध करें और उसकी आज्ञा से कार्य करने वाले गुप्तचर एवं उनके विभिन्न संघ, संस्था आदि जनपद के प्रबन्ध में तत्पर रहें।

अध्याय ३६

नागरिकप्रणिधिः

(१) समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत्, दशकुलीं गोपो, विंशतिकुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा। स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्रनामकर्मभिः जङ्घाग्रमायव्ययौ च विद्यात्।

(२) एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्।

(३) धर्मावसथिनः पाषण्डिपथिकानावेद्य वासयेयुः। स्वप्रत्ययाश्च तपस्विनः श्रोत्रियांश्च।

(४) कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः। वैदेहकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थानेषु। पण्यानामदेशकालविक्रेतारमस्वकरणं च निवेदयेयुः।

(५) शौण्डिकपाक्वमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः। अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः।

(६) चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारयितारमपथ्यकारिणं च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्येत। अन्यथा तुल्यदोषः स्यात्।

(७) प्रस्थितागतौ च निवेदयेत्। अन्यथा रात्रिदोषं भजेत। क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात्।

(८) पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवनश्मशानेषु सव्रणमनिष्टोपकरण-मुद्भाण्डीकृतप्राविग्नमतिस्वप्नमध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः।

(९) एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावेशनशौण्डिकौदनिकपाक्वमांसिकद्यूतपाषण्डावासेषु विचयं कुर्युः।

(१०) अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः। अष्टभागोऽग्निदण्डः। बहिरधिश्रयणं वा कुर्युः।

(११) पादः पञ्चघटीनाम्। कुम्भद्रोणीनिःश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे।

(१२) तृणकटच्छन्नान्यपनयेत्। अग्निजीविनं एकस्थानं वासयेत्। स्वगृहद्वारेषु गृहस्वामिनो वसेयुरसम्पातिनो रात्रौ। रथ्यासु कटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः, चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च।

(१३) प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः। षट्पणो वक्रयिणः। प्रमादाद्दीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः।

(१४) प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः।

(१५) पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः। पङ्कोदकसन्निरोधे पादः। राजमार्गे द्विगुणः।

(१६) पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः। मूत्रेष्वर्धदण्डाः।

(१७) भैषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्ड्याः।

(१८) मार्जारश्वनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः। खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः। मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः।

(१९) मार्गविपर्यासे शवद्वारादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः। द्वाःस्थानां द्विशतम्। श्मशानादन्यत्र न्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः।

(२०) विषण्नालिकमुभयतोरात्रं यामतूर्यम्। तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम्। मध्यमयामिकं द्विगुणम्। बहिश्चतुर्गुणम्।

(२१) शङ्कनीये देशे लिङ्गे पूर्वापदाने च ग हीतमनुयु जीत।

(२२) राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः।

(२३) सूतिकाचिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यप्रेक्षाग्निनिमित्तं मुद्राभिश्चाग्राह्याः।

(२४) चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेषाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो दण्ड्याः।

(२५) रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यं चावारयतामक्षणद्विगुणो दण्डः। स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः, अदासीं मध्यमः, कृतावरोधामुत्तमः, कुलस्त्रियं वधः।

(२६) चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतो नागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः, प्रमादस्थाने च।

(२७) नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्राकाररक्षावेक्षणं नष्टप्रस्म तापस तानां च रक्षणम्।

(२८) बन्धनागारे च बालव द्धव्याधितानाथानां जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः। पुण्यशीलाः समयानुबद्धा वा दोषनिष्क्रयं दद्युः।

(२९) दिवसे प चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत्।
कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा।।

(३०) अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने।
पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते।।

इत्यध्यक्षप्रचारे द्वितीये धिकरणे नागरिकप्रणिधिर्नाम षड्त्रिंशो ध्यायः, आदितः षड्प चाशः।

समाप्तमिदमध्यक्षप्रचारो नाम द्वितीयमधिकरणम्।

हिन्दी अनुवाद

(१) समाहर्त्ता की तरह नागरिक अधिकारी भी नगर के प्रबन्ध की चिन्ता करे। उत्तम दस कुलों, मध्यम बीस कुलों और अधम चालीस कुलों का प्रबन्ध गोप नामक अधिकारी करे। उन कुलों के स्त्री-पुरुषों के वर्ण, गोत्र, नाम, कार्य, उनकी संख्या और उनके आय-व्यय के सम्बन्ध को वह भली-भाँति जाने।

(२) इसी प्रकार दुर्ग के चौथे हिस्से का प्रबन्ध, अर्थात् दुर्ग में रहने वाले स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में उक्त जानकारी स्थानिक नामक अधिकारी प्राप्त करे।

(३) धर्मशाला के प्रबन्धक को चाहिये कि वह, धूर्त-पाखण्डी मुसाफिरों को गोप की अनुमति से ही टिकाये, किन्तु जिन तपस्वियों या श्रोत्रियों को वह स्वयं जानता है, उन्हें अपनी जिम्मेदारी पर भी टिका सकता है।

(४) मोटे तथा महीन कार्य को करने वाले सुपरिचित एवं विश्वस्त कारीगर को अपने कार्य करने के स्थानों में ठहराया जा सकता है। व्यापारी लोग अपने जान-पहचान वाले व्यापारियों को अपनी-अपनी दुकानों में ठहरा सकते हैं, किन्तु देशकाल के विपरीत व्यापार करने वाले दूसरे के सामान को अपने व्यवहार में लाने वाले व्यक्ति की सूचना नागरिक अधिकारी को कर देनी चाहिये।

(५) मद्य-मांस बेचने वाले, होटल वाले और वेश्यायें अपने-अपने परिचितों को अपने घर ठहरा सकते हैं। जो व्यक्ति अधिक खर्चीला दीखे या अधिक शराब पीता हो, उसकी सूचना गोप अथवा स्थानिक के पास भेज देनी चाहिये।

(६) जो व्यक्ति हथियार लगे अपने घावों का इलाज छिपा कर कराता है और रोग या महामारी आदि फैलाने वाले द्रव्यों का छिपे तौर से उपयोग करता है, उसका इलाज करने वाला वैद्य

यदि उसके इन कार्यों की सूचना गोप या स्थानिक को दे देता है तो वह अदण्ड्य है, किन्तु यदि वह सूचना न दे तो अपराधी के समान ही उसको भी दण्ड दिया जाना चाहिये, जिस घर में ऐसे कार्य किये जाते हों उस घर का मालिक यदि गोप या स्थानिक को सूचित कर देता है तो वह क्षम्य है, अन्यथा उसको भी अपराधी के समान दण्ड दिया जाना चाहिये।

(७) घर के मालिक को चाहिये कि वह घर से जाने वाले या घर में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सूचना गोप को दे। अन्यथा वे लोग रात्रि में यदि किसी की चोरी आदि करें तो ग हस्वामी उसके लिए उत्तरदायी समझा जायेगा। वे लोग भले ही कुछ भी अपराध न करें, किन्तु सूचना न देने के अपराध में ग हस्वामी प्रतिरात्रि तीन पण दण्ड का भागी है।

(८) व्यापारियों के वेश में बड़े-बड़े मार्गों पर घूमने वाले, ग्वाले तथा लकड़हारे के वेश में रास्ता छोड़कर जंगलों में घूमने वाले, नगर के भीतर या बाहर बने हुए मन्दिरों, तीर्थों, जंगलों या श्मशानों, कहीं भी, हथियार से घायल, हथियार तथा विष को लिये हुए, सामर्थ्य से अधिक भार उठाये हुये, डरे हुए, घबराये हुए,घोर निद्रा में सोये हुये, थके हुए या इसी प्रकार का कोई अजनबीपन किये हुये, इस प्रकार के संदिग्ध व्यक्ति को पकड़कर नागरिक के सुपर्द कर देना चाहिये।

(६) इसी प्रकार नगर के खंडहरों में, कल-कारखानों में, शराब की दुकानों में, होटलों में, मांस बेचने वाली दुकानों में, जुआघरों में, पाखंडियों के अड्डों में कोई संदिग्ध व्यक्ति दिखाई दे तो, गुप्तचर उसको पकड़कर नागरिक को सौंप दें।

(१०) गर्मी की ऋतु में मध्याह्न के चार भागों में आग जलाने की मनाही कर देनी चाहिये। जो भी इस आज्ञा का उल्लंघन करे उसे एक पण का आठवां हिस्सा दण्ड दिया जाये। अथवा घास-फूस के मकानों के बाहर खुली जगह में आग जलाई जाये।

(११) यदि कोई व्यक्ति निषिद्ध समय में पांच घड़ी तक आग जलावे तो उसे चौथाई पण दण्ड दिया जाये और उस व्यक्ति को भी यही दण्ड दिया जाये, जो गर्मी के मौसम में अपने घर के सामने पानी से भरे घड़े, पानी से भरी नांद, सीढ़ी, कुल्हाड़ा, सूप, छाज, कौंचा, फूल आदि को निकालने के लिए लम्बा लट्ठ और चमड़े की मशक आदि वस्तुओं का इन्तजाम करके न रखें।

(१२) गर्मी के मौसम में फूल और चटाई के बने मकानों को एकदम उठा देना चाहिये। बढ़ई और लुहार आदि को किसी एक जगह में ही बसाया जाना चाहिये। घरों के स्वामियों को रात को अपने ही दरवाजों पर सोना चाहिये। गलियों तथा बाजारों में पानी से भरे हुए एक हजार घड़ों का हर समय प्रबन्ध रहना चाहिये। इसी प्रकार चौराहों, नगर के प्रधान द्वारों, खजानों, कोष्ठागारों, गजशालाओं और अश्वशालाओं में भी पानी के भरे हजार-हजार घड़ों का हर समय इंतजाम रहना चाहिये।

(१३) यदि ग हस्वामी घर में लगी हुई आग को बुझाने का प्रबन्ध न करे तो उस पर बारह पण दण्ड कर देना चाहिये। उस घरमें रहने वाला किरायेदार भी यदि ऐसा ही करे तो उसे छह पण दण्ड दिया जाना चाहिये। यदि धोखे से अपने घर में ही आग लग जाये तो ग हस्वामी को चौवन पण दण्ड देना चाहिये।

(१४) मकान में आग लगाने वाला व्यक्ति यदि पकड़ लिया जाये तो उसे प्राण दण्ड की सजा देनी चाहिये।

(१५) सड़क पर मिट्टी या कूड़ा-करकट डालने वाले व्यक्ति को पण का आठवाँ हिस्सा दण्ड दिया जाना चाहिये। जो व्यक्ति गाड़ी, कीचड़ या पानी से सड़क को रोके उसे पण का चौथाई हिस्सा दण्ड दिया जाना चाहिये। जो व्यक्ति राजमार्ग को इस प्रकार गन्दा करे या रोके उसे दुगुना दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१६) राजमार्ग पर मल-त्याग करने वालों को एक पण, पवित्र तीर्थस्थानों पर मल-त्याग करने वालों को दो पण, जलाशयों पर मल त्याग करने वालों पर तीन पण, देवालय में मल त्याग करने वालों पर चार पण और खजाना, कोष्ठागार आदि स्थानों पर मलत्याग करने वाले व्यक्तियों पर पांच पण दण्ड किया जाना चाहिये।

(१७) यदि जुलाब लेने के कारण या अतिसार, प्रमेह आदि बीमारियों के कारण अथवा किसी डर से, उक्त स्थानों में कोई व्यक्ति मल-मूत्र त्याग करे तो उसे दण्ड नहीं देना चाहिये।

(१८) मरे हुये बिल्ली, कुत्ता, नेवला और सांप को यदि कोई व्यक्ति नगर के पास या नगर के बीच में डाल आवे तो उस पर तीन पण दण्ड दिया जाना चाहिये। यदि गधा, ऊँट, खच्चर तथा घोड़ा आदि को इस प्रकार छोड़ दिया जाये तो छोड़ने वाले को छह पण दण्ड दिया जाये। मनुष्य की लाश इस प्रकार छोड़ी जाने पर पचास पण दण्ड दिया जाना चाहिये।

(१९) मुर्दों को ले जाने के लिए जो रास्ता नियत है उसको छोड़ कर और जो द्वार नियत है, उसको छोड़कर दूसरी ही ओर से मुर्दा ले जाने वालों को प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। द्वार का रक्षक पुरुष यदि उन मुर्दा ले जाने वालों को न रोके तो उसे सौ-सौ पण दण्ड दिया जाना चाहिये। श्मशान भूमि के अन्यत्र मुर्दा जलाने और गाड़ने पर बारह पण दण्ड करना चाहिये।

(२०) रात की पहली छह घड़ी बीत जाने पर और रात के अन्तिम छह घड़ी बाकी रह जाने पर, दोनों समय भोंपू देना चाहिये। उस रात्रि-घोष के बीच यदि कोई व्यक्ति राजमहल के पास गुजरता दिखाई दे तो उसे सवा पण दण्ड दिया जाना चाहिये। जो व्यक्ति रात्रिघोष के ठीक मध्यकाल में आता-जाता पकड़ा जाये, उसे ढाई पण दण्ड देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति नगर के बाहर इस प्रकार आता-जाता पकड़ा जाये तो उस पर पांच पण दण्ड कर देना चाहिये।

(२१) उक्त रोक लगे समय में यदि कोई व्यक्ति बगीचों में छिपे हुये पाये जायें, या जिनके पास ऐसा सामान पाया जाये कि उन पर चोर-डाकू होने का शक किया जा सके, अथवा जो पहले से ही बदनाम हो और इस प्रकार घूमते हुए मिल जाये तो उनसे पूछा जाना चाहिये 'तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? कहाँ जाओगे ? क्या कार्य करते हो ? यहाँ तुम क्यों आये हो ?' यदि वे सन्तोषजनक उत्तर दें तो उनके साथ उचित व्यवहार किया जाना चाहिये।

(२२) यदि इस प्रकार का कोई शंकित व्यक्ति सरकारी इमारतों या नगर-रक्षा के लिये बने सफीलों अथवा दुर्गों के ऊपर चढ़ता हुआ पकड़ा जाये तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।

(२३) यदि उक्त रोक लगे समय में प्रसूता स्त्री, वैद्य हकीम, मुर्दाफरोश, उजाला लिए, सूचनार्थ आवाज करते हुए, नाटक-सिनेमा देखने, आग बुझाने आदि के लिए और जिनके पास राजकीय अनुमतिपत्र हो, आते-जाते पकड़ लिये जायें तो उन्हें गिरफ्तार नहीं करना चाहिये।

(२४) विशेष उत्सवों के समय रात्रि में रोक हटा दी जाने पर जो व्यक्ति मुंह ढककर अथवा वेष बदलकर तथा संन्यासी के वेष में दण्ड या हथियार लिये पकड़े जाये, उन्हें अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिये।

(२५) जो पहरेदार रोके जाने योग्य व्यक्तियों को न रोक लें तो उन्हें, रोक लगे समय के अपराध से दुगुना अर्थात् ढाई पण दण्ड देना चाहिये। जो पुरुष दूसरे की स्त्री तथा दासी के साथ बलात्कार करे, उसे प्रथम साहस दण्ड देना चाहिये। दासी आदि के अलावा किसी वेश्या के साथ बलात्कार करने पर मध्यम साहस दण्ड देना चाहिये। यदि कोई दासी या वेश्या किसी की पत्नी बन चुकी हो और तब उसके साथ कोई बलात्कार करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। जो पुरुष कुलीन स्त्रियों के साथ ऐसा दुव्यर्वहार करे उसको प्राणदण्ड की सजा देनी चाहिये।

(२६) जान-बूझकर या अनजाने में, रात को किये गये अपराधों की सूचना यदि कोई नगरवासी अध्यक्ष को न पहुंचाये तो अपराध के अनुसार उसके लिए दण्ड नियत होना चाहिये। उन पहरेदारों को भी उनके अपराध के अनुसार यथोचित दण्ड दिया जाना चाहिये, जिन्होंने पहरा देने में किसी प्रकार का प्रमाद किया हो।

(२७) नगर-अधिकारी को चाहिये कि वह जल-स्थल मार्ग, सुरंग मार्ग, सफील, परकोटा, खाई तथा बुर्ज आदि की अच्छी तरह देखभाल करें और उन सभी खोये हुये, भूले हुए, छूटे हुए, आभूषण, सामान या प्राणियों को तब तक अपने संरक्षण में रखे, जब तक कि उनके असली मालिक का पता न लग जाये।

(२८) जेल में बन्द हुए बूढ़े, बच्चे बीमार और अनाथ कैदियों को राजा की वर्षगांठ आदि अच्छे उत्सवों या पूर्णिमा आदि पर्वों पर छोड़ दिया जाना चाहिये। धोखे में यदि कोई धर्मात्मा पुरुष अपराधी बनाकर कैद में डाला गया हो तथा ऐसे व्यक्ति, जो भविष्य में अपराध न करने की प्रतिज्ञा करते हों, उन्हें अपराध के बदले में धन लेकर छोड़ देना चाहिये, उन्हें फिर जेल में न रखा जाना चाहिये।

(२९) प्रतिदिन या प्रति पांचवें दिन, ऐसा नियम बना दिया जाये कि उस दिन धन लेकर, शारीरिक दण्ड देकर या कार्य कराकर कुछ कैदी छोड़ दिये जायें। धनदण्ड, शारीरिक दण्ड या कार्यदण्ड, इन तीनों में से जो कैदी आसानी से जिस दण्ड को भुगत सके वही दण्ड उसको दिया जाये।

(३०) किसी नये देश को जीतने पर, युवराज का राज्याभिषेक होने पर और राजपुत्र के जन्मोत्सव पर कैदियों को छोड़ देना चाहिये।

अध्यक्षप्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में नागरिकप्रणिधि नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

--- o ---